CERTIFICATE

This is certified :-

(a) That the thesis embodies the work of the candidate herself.

(b) That the candidate worked under me for the period required under ordinance 7 and

(c) That she has put in the required attendance in my department during that period.

Dated: -

(DWARKA PRASAD MITAL)
M.A. P.H.D.D.Litt.
Head of Hindi Department
Bundelkhand College
Jhansi.

द्वारका प्रसाद मीतल
एम.ए., पी.एच.डी., डी. लिट
रीडर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड कालिज, झाँसी

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

की

पी-एच. डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

सन् १९८१
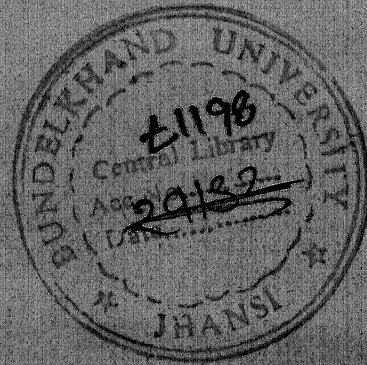
卐

निर्देशक-

द्वारकाप्रसाद् मीतल
एम. ए. पी-एच. डी., डी. लिट्.
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलिज, झांसी

शोध छात्रा-

कुमारी वायला मधुबाला नेथन
एम. ए (हिन्दी-समाज शास्त्र), बी. एड.
हिन्दी-विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलिज, झांसी

रीति कालीन कवि करन के

काव्य का

समीक्षात्मक अध्ययन

सन् १९८१

卐

निर्देशक-
द्वारकाप्रसाद मीतल
एम. ए. पी-एच. डी., डी. लिट्.
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलिज, झांसी

शोध छात्रा-
कुमारी वायला मधुबाला नेथन
एम. ए (हिन्दी-समाज शास्त्र), बी. एड.
हिन्दी-विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलिज, झांसी

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को लिखने में जिन संस्थानों, विद्वानों, सज्जनों, आत्मीयजनों, आलोचकों एवं कवियों की कृतियों से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सहायता मिली है, उन सबके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं।

मेरे इस शोध-प्रबन्ध को मूर्तरूप देने एवं प्रत्येक स्तर पर निर्देशित करने का सम्पूर्ण श्रेय बुन्देलखण्ड कालेज के हिन्दी-विभाग के रीडर एवं अध्यक्ष डा०द्वारका प्रसाद-मीतल को है, जिनके पांडित्यपूर्ण पथ-प्रदर्शन, सौहार्द एवं प्रोत्साहन से यह कार्य अपने इस रूप में सामने आ सका है। शोध-कार्य करने की जो प्रेरणा मुझे डा०द्वारका प्रसाद-मीतल, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, बुन्देलखण्ड कालेज, झांसी से प्राप्त हुई उसके लिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूं। नेहरू महाविद्यालय, बांदा के डा०चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित ने 'करन कृत' 'रस-कल्लोल' एवं 'साहित्य-चन्द्रिका' हस्त लिखित ग्रन्थ उपलब्ध कराने में जो मेरी सहायता की उनकी मैं हृदय से आभारी हूं।

पन्ना के दरबारी कवि कृष्णादास के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना न भूलूंगी जिनके शुभकार्यों से लाभान्वित होने का मुझे पूरा सुयोग मिला है। मैं अपने हृदय की श्रद्धा इस रीतिकाव्य के प्रतिभाशाली कवि के प्रति अर्पित करते हुये सौभाग्य और आनन्द का अनुभव करती हूं।

मेरी पूज्य माता जी ने मेरे भ्रमण-कार्य में सहायता कर मेरे शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में जो हाथ बंटाया है, यह उन्हीं की महती कृपा का फल है कि जिसके कारण यह शोध-प्रबन्ध पूर्ण हो सका है। इस शोध-प्रबन्ध के प्रेरणा के स्रोत मेरे माता-पिता दोनों ही रहे हैं। इनके अतिरिक्त मेरे श्रद्धेय बड़े भाई सुनील नेपन ने हस्तलिखित ग्रन्थों को उपलब्ध कराने में तथा भ्रमण-कार्य में जो सहायता की उनकी मैं हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं

—---- कु०मायका मंजुबाला नेपन.

-- भूमिका --

मध्ययुग के महाकवि एवं आचार्य करन पर लिखा कोई भी आलोचनात्मक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। डा० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन (हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास), मिश्रबन्धु विनोद (हिन्दी साहित्य का इतिहास), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी-साहित्य के इतिहास), ठाकुर शिवसिंह सरोज (हिन्दी साहित्य का इतिहास), कैलाशनारायण अवस्थी (काव्य शास्त्र युग और प्रवृत्तियां), डा० नगेन्द्र (हिन्दी-साहित्य के इतिहास), कवि मणि पं० कृष्णादास (बुन्देलखण्ड के कवि), डा० सत्येन्द्र (ब्रज साहित्य का इतिहास) ने करन कृत ग्रन्थों का केवल नामोल्लेख मात्र किया है तथा जन्म-मृत्यु सम्बन्धी विभिन्न मतों को अभिव्यक्त किया है, किन्तु आचार्य करन की कृतियों का महत्व और उनके व्यक्तित्व की गरिमा इतनी विशाल है कि उपर्युक्त विचार उनके विषय में अत्यन्त न्यून जान पड़ते हैं। इस बात को दृष्टि में रखते हुये मैंने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में करन के जीवन, व्यक्तित्व तथा उनके काव्य-विशेषतया रीतिकाव्य के मूल्यांकन का प्रयास किया है। करन विषयक सम्यक् उपलब्ध सामग्री का ध्यान रखकर यह प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस प्रबन्ध रचना का एक और भी कारण है कि काव्यशास्त्र के विविध अंगों का विस्तृत विवेचन कर उसे साहित्य प्रेमियों के सम्मुख रखा जाय तथा करन के हस्तलिखित ग्रन्थ-रस-कल्लोल, साहित्य रस तथा बिहारी सतसई की टीका को प्रकाश में लाया जाय।

करन का अध्ययन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। करन आचार्य हैं, और महाकवि हैं। आचार्य रूप में करन हिन्दी के सर्वप्रमुख आचार्य हैं जिन्होंने संस्कृत रीतिशास्त्र को हिन्दी में अवतरित करते हुए अलंकार और रस दोनों सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा की और इस प्रकार काव्यशास्त्र के विविध अंगों का विस्तृत विवेचन कर हिन्दी साहित्य में रीति-परम्परा का निर्बाध मार्ग खोल दिया। यद्यपि करन द्वारा निर्दिष्ट रीति-पद्धति का हिन्दी के परवर्ती आचार्यों ने अनुसरण नहीं किया, फिर भी उन्होंने कवियों का ध्यान एक विशिष्ट दिशा की ओर अवश्य आकृष्ट कर दिया। कवित्व में करन को रीतिकाव्य ग्रन्थों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त इतिहासकार की दृष्टि से भी करन का विशेष महत्व है। उनके ग्रन्थों में

उल्लिखित सामग्री द्वारा पन्ना-राज्य का सच्चा और विस्तृत इतिहास जाना जा सकता है । अतः मध्यकालीन साहित्य एवं इतिहासके विद्यार्थीके लिये करनके ग्रन्थोंका अध्ययन आवश्यक है । करनके ग्रन्थोंमें भौगोलिक ज्ञानका अभाव नहीं है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध नौ अध्यायोंमें विभक्त है । प्रथम अध्यायमें करनकी समकालीन राजनैतिक,ऐतिहासिक,सामाजिक,आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियोंका दिग्दर्शन कराते हुये यह दिखलानेका प्रयत्न किया गया है कि विभिन्न परिस्थितियोंका आलोच्य कविके काव्यपर कैसा और कितना प्रभाव पड़ा है ।

द्वितीय अध्यायमें करनके जीवन-चरित्रपर विस्तारसे विचार किया गया है और उनके जीवनसे सम्बद्ध सभी उपलब्ध सामग्रीके आधारपर निष्कर्ष निकाले गये हैं । रचनाओंका संक्षिप्त परिचय देते हुये उनमें आचार्यत्व झलक देखनेका प्रयत्न किया है । करन सम्बन्धी खोज रिपोर्टोंका भी उल्लेख किया गया है ।

तृतीय अध्यायमें काव्यके लक्षणों तथा काव्यके प्रयोजनोंपर प्रकाश डाला गया है ।

चतुर्थ अध्यायमें पूर्ववर्ती आचार्योंको अपना आधार बनाकर करन कृत नवरसोंको उदाहरण सहित समझानेका प्रयत्न किया गया है । शृंगार रस तथा उसके दोनों भेद संयोग-वियोगको बतलाते हुये विप्रलम्भ शृंगारका नूतन वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है । हास्य रस,करुणा रस,रौद्र रस एवं वीर रस,भयानक रस,वीभत्सरस,अद्भुत रस तथा शान्त रसको अत्यन्त मौलिक रूपमें उदाहरण सहित प्रकाशमें लाया गया है । रसोंके रंगोंका भेद एवं वर्गीकरण,रसोंके देवताओंका निरूपण कर संचारी भाव,सात्त्विक भाव तथा हाव-लक्षणको सभेद उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है ।

पंचम अध्याय में करन के ध्वनि भेदों का लक्षण निरूपण करते हुये रूढ़ि-यौगिक, योग के लक्षण एवं वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है । अभिधा वर्गीकरण (जाति, क्रिया, गुण, वस्तु, संज्ञा विविध), अभिधा मूलव्यंग (संयोग-वियोग, प्रकरण, विरोध बहु चिन्ह समूह) लक्षण लक्षणा का निरूपण कर उसका वर्गीकरण किया गया है । व्यंजना लक्षण और उसके भेद बताते हुये ध्वनि लक्षण तथा उसके भेद भी प्रस्तुत किये हैं तथा करन के अन्य ध्वनि के नूतन प्रयोग भी प्रस्तुत किये हैं ।

षष्ठ अध्याय में करन के गुण, रीति तथा वृत्ति का निरूपण किया गया है। गुण लक्षण (ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि गुणों का लक्षण एवं निरूपण), गुण विषयक विवेचन, गुणों का वर्गीकरण, गुणों के लक्षण निर्धारण, गुणों का रीति से सम्बन्ध आदि का वर्णन पूर्ववर्ती आचार्यों को आधार बनाकर करन के मन्तव्य को सामने लाया गया है तथा उनकी मौलिकता पर प्रकाश डाला गया है। वृत्ति विवेचन (परुषा, कोमला, उप नागरिका आदि वृत्तियों का विवेचन), रीति विवेचन (गौड़ी, लाटी, पान्चाली-वैदर्भी रीतियों का विश्लेषण) में विभिन्न प्राचीन आचार्यों के मतों का दिग्दर्शन कराते हुये करन के मौलिक, पाण्डित्य-पूर्ण एवं नवीन मत को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

सप्तम् अध्याय करन के अलंकार विवेचन को समर्पित है। इस अध्याय में पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट अलंकार के लक्षण तथा उनके भेदों को प्रस्तुत किया गया है तत्पश्चात् करन के अलंकार लक्षण तथा अलंकार विवेचन के विशिष्ट प्रसंग को प्रस्तुत कर नवीन अलंकारों की उद्भावना की गयी है तथा करन द्वारा निर्दिष्ट प्रमुख अलंकार को प्रस्तुत किया गया है।

अष्टम् अध्याय में करन का नायक-नायिका भेद निरूपण किया गया है। सर्वप्रथम विभिन्न पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट नायक-नायिका भेद निरूपित करने का प्रयत्न किया गया है, तत्पश्चात् आचार्य करन कवि का नायक-नायिका भेद निरूपण, आचार्य करन कृत नायिका भेद, आचार्य करन कृत नायक भेद तथा नायक-नायिका भेद का नूतन वर्गीकरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

नवम् अध्याय में आचार्य करन तथा हिन्दी के अन्य प्रमुख परवर्ती आचार्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अलंकार विवेचन के क्षेत्र में चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति मिश्र, देव, भिखारीदास और पद्माकर से करन के आचार्यत्व की तुलना की गई है और रस विवेचन के क्षेत्र में चिन्तामणि, मतिराम, देव, दास, केशव और पद्माकर से तुलना की गई है। ध्वनि विवेचन के क्षेत्र में प्रमुख परवर्ती आचार्य से करन के आचार्यत्व की तुलना की गई है। अन्त में आचार्य करन का विशिष्ट प्रदेय प्रस्तुत किया गया है।

"रीतिकालीन कवि करन के काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन"

विषय- अनुक्रमणिका

तीसरा अध्याय

काव्य-<s>परिचय</s> चिन्तन

चौथा अध्याय

रस-विवेचन

पांचवा अध्याय

ध्वनि- वर्गीकरण

पृष्ठ संख्या

छठा अध्याय

गुण, रीति, वृत्ति-निरूपण

सातवां अध्याय

अलंकार विवेचन

आठवां अध्याय

नायक-नायिका भेद निरूपण

नवां अध्याय

आचार्य करन कवि का मूल्यांकन

-- ग्रन्थ-सूची --

प्रथम अध्याय

समकालीन परिस्थितियां

पृष्ठ भूमि :-

करन कवि पन्ना के राज्याश्रित कवि थे। विभिन्न इतिहासकारों के अनुसार इनके समस्त ग्रन्थों की रचना पन्ना राज्य की छत्रछायामें ही हुई। मध्य-भारतकी रियासतोंमें पन्ना राज्यका प्रमुख स्थान है। जिस प्रकार जीवनमें कविता महान है जिसके लिए विद्वानोंको स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषित करना पड़ा कि "संगीत-साहित्य कला विहीन, साक्षात् पशु:पुच्छ विषाण हीन:" उसी प्रकार भारतीय इतिहासमें बुन्देलखण्डका इतिहास अत्यन्त गौरवमय है। इस देशकी चप्पा-चप्पा भूमि वीरोंके रक्तसे सींची जाकर गौरवान्वित हो चुकी है। इसका महत्व और गौरव राजस्थानसे किसी अंशमें कम नहीं प्रत्युत ,उससे भी अधिक गौरवशाली एवं महान् है। चम्पतराय जैसे दूरदर्शी,देश रक्षक, हरदौल जैसे त्यागी, छत्रसाल जैसे वीर, महारानी लक्ष्मीबाई, रानी दुर्गावती,महारानी अहिल्या बाई आदि वीरांगनाएं,तुलसी,केशव-लाल जैसे विख्यात युगान्तकारी कवि ,चन्द और जगनिक जैसे साहित्य निर्माता, आल्हा-ऊदल, मलखान जैसे मरदानी योद्धाओं की यह लीला-भूमि रह चुकी है। किसी कविने ठीक ही कहा है कि--

> क्यों न रहे इस देश का चिह्न जीव अतीत ।
> प्रगटे जिस प्रिय भूमि में, छत्रसाल हरदौल ।।

रणबांकुरे वीरोंकी तलवारोंकी झनझनाहट से रंजित यह भूमि जितनी गौरवशालिनी और वीर प्रसविनी है उतनी ही भावुक भक्तोंकी जन्मदात्री तथा कवियोंकी भी उर्वरा भूमि है। यहांके प्राकृतिक मनोरम दृश्योंको देखकर हृदयमें स्वतः कविताकी स्वाभाविक अनुभूतियां जागृत हो उठती हैं। विन्ध्याचल की पर्वत मालाओं,मनोरम घाटियों, केन , धसान, बेतवा, चम्बल,पहुज, यमुना आदि नदियों से परिवेष्टित इस पावन प्रदेश में प्रकारान्तर से जगन्नाथपुरी के रूप में पन्ना रामेश्वर के रूप में, कालिंजर बद्रीनारायण के रूप में, खजुराहो के मतंगेश्वर महादेव और नारायण, द्वारका के रूप में, ओरछा इस प्रकार गुप्त रूप में चार धाम तथा अयोध्या के रूप में, ओरछा, मथुरा के रूप में, पन्ना

हरिद्वार के रूप में, कालिंजर काशी के रूप में, जटाशंकर उज्जैन के रूप में, चित्रकूट गोपनीय रूप से बुन्देलखण्ड की पावन भूमि में सदैव निवास करते हैं। आध्यात्मिक तथा ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से बुन्देलखण्ड की महिमा महान् है। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश के उत्तर में झांसी, हमीरपुर, जालौन और बांदा तथा मध्य प्रदेश - सागर, जबलपुर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद मंडला जिले। यह लगभग बीस हजार वर्ग मील भूमि का भाग था वर्तमान समय में केवल तीन हजार पांच-सौ नौ वर्ग मील है। रामायण काल में इसका नाम दण्डक वन था जो दण्डकारण्य का भाग था। महाभारत काल में चेदि और दशार्ण चंदेल खण्ड और दक्षिणी भाग में स्थित हैं।[१]

१- विंध्य भूमि सिंध सत्य, विंध्य गिरि सुरन सुहावन।
यह थल बड़ा स्वरूप अहै भारत कौ पावन ॥ २७ ॥
वामदि श्रेणी तीन भाग यह होहि विभाजित।
सिन्धु नदी तट प्रथम अंग चिड़ुहा सौं राजित ॥ २८ ॥
पश्चिम नगर निकट ग्वालियर दक्षिण जाई।
जिला ललितपुर पूर्व सुभूमि सिगरी सुखदाई ॥ २९ ॥
दौरि विदित मराट ओरछा राज्य महाई।
उतसौं झांसी जिला भक्त विस्तृत यह गाई ॥ ३० ॥
मध्य प्रांत भूमि विदित जिला सागर समीप यह।
ओरछें दीचि आरम्भ पूर्व उत्तर समीप यह ॥ ३१ ॥
विदित विजावर छतपुर चान्दू चरखारी।
पूरन पन्ना वास अजयगढ़ लव सुखकारी ॥ ३२ ॥

-+- -+- -+- -+-

परबत मालाकार सदा सुखमां सुख दायक।
विविध रत्न की खान हीरा नर मणि सब लायक ॥ ३६ ॥

—बालमुकुन्द शास्त्री कृत बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास-भूगोल। पन्ना गजेटियर।

छत्रसाल के समय में पन्ना राज्य का विस्तार बहुत अधिक था। महाराज छत्रसाल के समय में पन्ना राज्य के विस्तार का वर्णन करन ने स्वयं इस प्रकार किया है। [1] केशव के समय में सम्भवतः पन्ना राज्य की यही सीमा थी। बुन्देलखण्ड में मौखिक रूप से प्रसिद्ध है कि इस सीमा के अन्तर्गत सब लोग महाराज छत्रसाल की सौंह मानते थे।

नामकरण :-

पन्ना राज्य के नामकरण के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है— पन्ना , शुद्ध शब्द "परना" का, अपभ्रंश है। वर्तमान पन्ना नगर के पश्चिम अंचल में किलकिला नदी दक्षिण से उत्तर मुख प्रवाहित है। इसके बांयें तट पर श्री पद्मावती का एक छोटा-सा मठ है।

१- इत यमुना उत नर्मदा इत चम्बल उत टौंस ।
छत्रसाल सौं लरन की रही न काहू हौंस ॥
दच्छिन के और के मरोर बादशाहन कौं ।
तोर तुरकान कीन्हीं आन खान की ॥
घेर कर जालिम खान के नरेशन कौ ।
शेर पर साहिबी सम्हारी कुल मान की ॥
छत्ता नरनाह त्यौं सपूत हृदयशाह वीर ।
जात कहाई कवि "करन" बखान की ॥
नर्मदा कालिंदी टौंस चम्बल महाघट है ।
विरचि बुन्देला बड़ बांधी हिन्दुवानकी ॥
--- । करन कवि विरचित ।

-- बुन्देलखण्ड के कवि, कवि कृष्णदास, पृष्ठ संख्या- ६-७.

इसी मठ के बांयें यानी उत्तर में १५-२० झोंपड़ियों की एक ऊजड़ बस्ती है, जो पुराना पन्ना कहलाती है। पुराने पन्ना से करीब एक फर्लांग पूर्व किलकिला नदी का जल प्रपात है। इसी प्रपात के कारण इसी तट की बस्ती (प-पतन-वरन = जल, परना नाम से प्रसिद्ध हुई। उक्त भगवती के पुजारी के पास करीब सात-सौ वर्ष पूर्व की जो सनद है तब से लेकर सम्वत् १८७८ ई० तक कागजातों में परना लिखा पाया जाता है।

(पन्ना इतिहास)

पन्ना :- पन्ना :-

इस नगर का नाम पद्मावती देवी से पड़ा है, यह सतयुग का प्राचीन स्थान है। यह नगर कुड़िया नदी के ऊपर पन्ना में है। पुरानी बस्ती के कुछ चिन्ह भी नहीं हैं।[१]

पन्ना इसमें परिणामी धर्म का प्रधान तीर्थ स्थान व तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। परिणामी धर्मावलम्बी इसी धर्म के अधिष्ठाता प्राणनाथ जी परमधाम की इन्द्रावती सखी का और महाराज छत्रसाल जी शाकुम्भला सखी का अवतार मानते हैं। इनकी धर्म पुस्तकों में पन्ना की बड़ी प्रशंसा की गई है। ये लोग किसी पुराण का एक श्लोक भी पन्ना के सम्बन्ध में देते हैं। वह श्लोक निम्नलिखित है --

पद्मावती वैन शते, विंध्य पृष्ठ विराजते ।
इन्द्रावती नाम साध्वी, भविष्यति कलौ युगे ।। १ ।।

--पुराण:

पन्ना राज्य के विस्तार के अन्तर्गत तीन प्रकार की भूमि पायी जाती है। एक तो विंध्य पर्वत के ऊपर नर्मदा-किनारे पश्चिम में सागर तथा पूर्व में नर्मदा के उद्गम से लेकर उत्तर में कालिंजर तक जिसमें मनिकपुर जंक्शन के आसपास की भूमि बरमढ़ [illegible]

१- पश्चिम जंगल बांध, किलकिला सरित सुहावन ।
उत्तर कुंवरि प्रपात, बांध पद्मा छवि पावन ।। ६२ ।।
जल प्रपात प:पतन, वरन जल जानत सोई ।
तटवस्ती परनाम, भयत परना पुनि सोई ।। ६३ ।।
--बुन्देलखण्ड के कवि- कृष्णादास, पृष्ठ०- १२.

अंतरंग भी आ जाते हैं। इस भाग को पठार कहते हैं।

समकालीन परिस्थितियां

साहित्यकार अपने युग का ज्ञापक होता है और उसकी कृतियां भी एक विशिष्ट परिस्थिति की क्रिया तथा प्रतिक्रिया का फल होती है। एच.ए. टेन महोदय अपने अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि कोई साहित्यिक रचना केवल व्यक्तिगत कल्पना का खेल ही नहीं होती और न उत्तेजित मन का एकान्त विलास ही होती है, वरन् समसामयिक आचारादि का अनुलेख एवं एक विशेष मानसिक अवस्था का प्रतिरूप होती है।[१] टेन महोदय की उक्ति यथार्थ है और इसको दृष्टि में रखते हुए ही हमें आचार्य करन का अध्ययन करना चाहिए। साहित्यकार पर समकालीन युग ही का नहीं, अपितु पूर्ववर्ती युग का भी प्रभाव पड़ता है। अतएव करन के काव्य का विवेचन करने के पूर्व उनकी पूर्ववर्ती तथा समकालीन राजनैतिक,सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराना आवश्यक है।

१- राजनीतिक परिस्थितियां :-

साहित्य के अनुप्रेरक तत्वों में राजनीतिक पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारतीय साहित्य का अध्ययन इस तथ्य की सूचना देता है कि प्रशासन और साहित्य का कितना व्यापक सम्बन्ध था। वेदों से लेकर ब्राह्मणयुग तक जितने साहित्य का अनुशीलन हुआ, उस पर ब्राह्मणों की सत्ता की पूर्ण छाप है, किन्तु अन्त में जब क्षत्रिय वर्ग ने सभी क्षेत्रों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तो साहित्य के नायक राम और कृष्ण जैसे क्षत्रिय बनने लगे। रीतिकाल में भी राजवर्ग साहित्य की प्रेरणा का स्रोत रहा है।

1* A work of literature is not a mere individual play of imagination , a solitary caprice of a heated brain, but a transcript of contemporary manners, a type of a certain kind of mind,

Introduction, Vol. I page 1; Translated by H. Van Laun Chatto and windus piccadilly, London, 1871 A.D.

राजनीतिक दृष्टि से करन का समय मुगलों के शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष और तत्पश्चात् उत्तरोत्तर ह्रास, पतन तथा विनाश का समय कहा जा सकता है । शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल-वैभव अपनी चरम सीमा पर रहा । जहाँगीर के राज्य-विस्तार में शाहजहाँ का बहुत बड़ा योगदान रहा, उसने उत्तर भारत के अतिरिक्त दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा राज्य तथा उत्तर-पश्चिम में सिन्ध के लहरी बन्दरगाह से लेकर आसाम और अफगान प्रदेश के बिल्व के किले से लेकर दक्षिण के सीमा तक एक छत्र साम्राज्य की स्थापना की । राजपूतों ने भी स्वामीभक्त एवं विश्वासपात्र सेवक की भांति दिल्ली शासन की आधीनता स्वीकार करली । देश में शांति का साम्राज्य था । राजकोष धन-धान्य से पूर्ण था । ताजमहल और मयूर सिंहासन की भी स्थापना हो चुकी थी । किन्तु इसके उपरान्त शाहजहाँ के अस्वस्थ होने, तत्पश्चात् उसकी मृत्यु का समाचार फैलने के कारण १६५८ ई० में उसके पुत्रों में सत्ता के लिये संघर्ष आरम्भ होते ही यह वैभवमान साम्राज्य क्षणभर में ह्रासोन्मुख हो गया । उसका ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह अपनी धार्मिक सहिष्णुता और उदारता के लिये जितना लोकप्रिय था, उससे छोटा औरंगजेब अपनी धार्मिक असहिष्णुता और अहम्मन्यता के कारण उतना ही अप्रिय था । औरंगजेब ने दारा की हत्या कर जैसे ही शासन आरम्भ किया वैसे ही जागीरदारों, राजाओं और हिन्दुओं के धार्मिक उपद्रव आरम्भ होने लगे । परिणाम यह हुआ कि उसका अधिकांश शासन-काल इन उपद्रवों के दमन में ही बीता । वह शासन को शक्ति सम्पन्न एवं अपने साम्राज्य का विस्तार करने में असमर्थ ही रहा । उसकी अंधवादी प्रवृत्ति के कारण उसकी आज्ञा का उल्लंघन किया जाता था । यही कारण था कि उसके पुत्रों में भी कोई ऐसा प्रतिभावान न था जो कि पुनः हिन्दुओं के प्रति विश्वास उत्पन्न कर साम्राज्य का सूत्रपात कर सके ।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् १७०७ ई० में उसके पुत्रों के मध्य भी संघर्ष हुआ और उसका दूसरा पुत्र मुअज्जम ।शाह आलम प्रथम। सिंहासनारूढ़ हुआ । वह अत्यन्त उदार प्रकृति का था, किन्तु वह अधिक समय जीवित न रह सका । उसके पश्चात् १७१२ ई० से इस साम्राज्य का विनाश आरम्भ हुआ । लगभग ५० वर्ष तक शासन पूर्णरूपेण स्थिर न हो सका । राजगद्दी पर अल्प समय के लिये ही राजा आते थे, जो कुछ दीर्घ समय के लिये आये । वे विलासी होने के कारण राज्य की बागडोर न सम्भाल

सके । इसका परिणाम यह हुआ कि शासन की अव्यवस्था और अशांति के कारण छोटे-छोटे जागीरदार भी अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर बैठे और शनैः-शनैः शासन की पकड़ इतनी ढीली हो गयी कि साम्राज्य की सीमा अब दिल्ली और आगरा के क्षेत्र तक सीमित रह गयी । इसी बीच १७३९ ई० में नादिरशाह ने आक्रमण किया । जिससे इस शासन की नींव हिल गयी । राजनीतिक दृष्टिकोण से यह समय करन की कविता का समय था । जो कुछ अवशेष रह गया था, उसकी पादपूर्ति अहमदशाह अब्दाली के १७६१ ई० के आक्रमण ने करदी । इधर विदेशी व्यापारियों ने इस स्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाया और अन्दर ही अन्दर शक्ति का संचय कर १८०३ ई० तक समस्त उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य कर लिया । मुगल सम्राट नाममात्र के लिये शासक रह गये ।

करन के समय में केन्द्रीय शासन की यही स्थिति थी । अवध, राजस्थान और बुन्देलखण्ड प्रदेशों के शासकों की दशा भी कुछ ऐसी ही थी । बुन्देलों ने मराठों के साथ लाभ उठाने का प्रयत्न किया, किन्तु राजपूतों के मिथ्या अहंकार एवं पारस्परिक विद्वेष के कारण पूर्ण सफलता प्राप्त करने में असमर्थ रहे । इस प्रकार मुगल साम्राज्य के समान ही हिन्दू रजवाड़ों और अवध के नवाबों को अन्ततः अपना कारुणिक अन्त देखना पड़ा ।

२- ऐतिहासिक परिस्थिति :-

"डा०ग्रियर्सन जार्ज ग्रियर्सन" ने कवि करन का जन्मकाल १७३७ ई० बताया है । इनके साहित्य चन्द्रिका की तिथि सं० १७९४ । १७३७ ई० । दी गयी है जिसको शिवसिंह इनके जन्म संवत् के रूप में देते हैं ।[1]

—— सर्वेक्षण ४६,

"मिश्रबन्धु विनोद" कवि करन का जन्मकाल १७९४ मा बताते हैं ।[2]

१- डा०ग्रियर्सन जार्ज ग्रियर्सन, हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ०सं० २०३ ।

२- 'हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन'—— मिश्रबन्धु विनोद ।

—— पृ० सं० ७७२.

"ठाकुर शिवसिंह सरोज" ने अपने "हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि-कीर्तन" में इनका कविता काल खोज-रिपोर्ट के अनुसार सं० १७५७ दिया है और यह भी लिखा है कि ये हिन्दूपति पन्ना नरेश के यहां थे।[1]

विभिन्न आचार्यों के द्वारा बताये गये जन्म-काल एवं कविता-काल के आधार पर कवि करन की ऐतिहासिक परिस्थिति का दिग्दर्शन कराया जायेगा।

१७३७ ई० तक केन्द्रीय सरकार इतनी कमजोर हो गई थी कि एक ईरानी साहसी योद्धा नादिरशाह ने देश पर हमला कर दिया जो एक विख्यात तुर्की सिपाही था। अफगानी आक्रमणकारियों से अपने देश को स्वतन्त्र करने के बाद वह उन अफगानियों को दण्ड देने के लिये अफगानिस्तान गया जो भाग कर भारत में आ रहे थे।[2]

नादिरशाह ने २४ मार्च १७३८ ई० को कन्धार पर अधिकार कर लिया और ११ जून को गजनी में प्रवेश किया। -------- नादिरशाह ने २६ जून को काबुल का घेरा डालकर उसपर अधिकार कर लिया और फिर जमरूद [illegible] पेशावर पर नियुक्त मुगल सेना का विनाश करता हुआ पंजाब पर हमला करने के लिये आगे बढ़ चला। २७ दिसम्बर को उसने अटक के पास सिन्धु को पार कर लाहौर के सूबेदार को हराया। जब वह दक्षिण की ओर बढ़ रहा था तब उसे मालूम हुआ कि मुहम्मदशाह उसका विरोध करने के लिये आ रहा है। अतः उसने करनाल के पास अपना शिविर डाल दिया।[3] नादिरशाह कुछ दिन बाद करनाल के पास आया और उसने नगर के पश्चिम में ६ मील दूर अपना शिविर डाल दिया। अवध का सूबेदार सआदत खाँ बुरहान-उल-मुल्क २४ फरवरी को सम्राट की सहायता के लिये करनाल आया, किन्तु उसके पीछे आने वाली सामान की गाड़ी पर ईरानियों ने हमला कर दिया जिसकी खोज-खबर के लिए उसे पीछे लौटना पड़ा।

१- पृष्ठ संख्या ८४०.
२- "मुगल कालीन भारत" -डा०आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ०सं० ५८८.
३- मुगल कालीन भारत -डा०आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ०सं० ५८९.

परिणाम स्वरूप २४ फरवरी १७३९ ई० को करनाल की लड़ाई हुई । - - -नादिरशाह की विजय हुई और दोनों सेनाएं सन्ध्या के समय अपने-अपने शिविरों को लौट गईं ।[१]

बुरहान-उल-मुल्क ने आक्रमणकारी नादिरशाह से सम्राट की शक्ति की बड़ी डींग मारी और उसे दो करोड़ की क्षति-पूर्ति स्वीकार कर फारस लौट जाने की सलाह दी । निजाम-उल-मुल्क ने नादिरशाह से दो बार भेंट की और सम्राट उसके द्वारा नादिरशाह को दो करोड़ की भेंट देने को तैयार हो गया ।[२]

१७४८ ई० के आरम्भ में अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब पर हमला किया और १७४७ ई० के अन्त में नादिरशाह के कत्ल होने पर अफगानिस्तान का बादशाह बन बैठा था । - - - - अब्दाली लाहौर पर अधिकार कर दिल्ली की ओर बढ़ा, किन्तु सम्राट मुहम्मदशाह के पुत्र शाहजादे अहमद ने उसे मच्छीवाड़ा के पास मनूपुर में हराकर काबुल लौट जाने के लिये विवश कर दिया । (मार्च १७४८ ई०) २६ अप्रैल, १७४८ ई० को मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र अहमद सम्राट अहमदशाह के नाम से सिंहासन पर बैठा ।[३] अफगानों ने विद्रोह कर १३ अगस्त १७५० ई० को नवलराय को मार दिया । वजीर बड़ी शीघ्रता से नवलराय की सहायता के लिये गया, किन्तु अहमद खां बंगश ने सहावर और पटियाली के बीच रामचतौनी में २३ सितम्बर १७५० ई० को उसे हरा कर घायल कर दिया । - - - - मराठों की सहायता से उसने मार्च १७५१ ई० के अन्तिम सप्ताह में कायमगंज के निकट अहमद खां बंगश को हरा दिया । इसके बाद वजीर ने फर्रुखाबाद किले का घेरा डाल दिया और २८ अप्रैल १७५१ को उस पर अधिकार कर लिया ।[४] ४ मई से २९ नवम्बर, १७५३ ई० तक दिल्ली की गलियों में लम्बी और भीषण लड़ाई होती रही । गाजीउद्दीन खां का पुत्र इमाद-उल-मुल्क अमीर-उल-उमरा के पद पर नियुक्त हुआ ।[५]

१- मुगल कालीन भारत-डा०आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ०सं० ३८६.
२- मुगल कालीन भारत-डा०आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ० सं० ३८८.
३- मुगल कालीन भारत-डा०आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ०सं० ४६३.
४- " " " " " " , पृ०सं० ४६२–४६३.
५- " " " " " " , पृ०सं० ४६३.

१७५७ ई० में अब्दाली के चले जाने के बाद सम्राट ने राजधानी के आसपास के सारे जिलों को नजीबुद्दौला के अधिकार में दे दिया ।[1] सम्राट शाहआलम के बिहार में रहने के कारण दिल्ली का सिंहासन १७६० ई० से १७७१ ई० तक खाली पड़ा रहा । १७६१ से १७७१ ई० तक के समय में दिल्ली तथा लड़खड़ाते हुए साम्राज्य का शासन ज्यादा-तर नजीबुद्दौला के अधिकार में ही रहा । - - - - १७६७ ई० के आरम्भ में अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब पर अन्तिम बार आक्रमण किया और नजीबुद्दौला को अपने पास बुलाया । - - - - अब नजीबुद्दौला वृद्ध तथा दुर्बल हो गया था, अतः मार्च १७६८ ई० में दिल्ली-सरकार का भार अपने पुत्र जाबिता खां को सौंपकर वह नजीबाबाद चला गया । मराठे पानीपत में हारने के बाद १७७० ई० में उत्तरी भारत में फिर आये और उन्होंने यहां आकर नजीबुद्दौला को तंग करना शुरू कर दिया ।[2]

मराठों तथा मिर्जा नजफ खां के नेतृत्व में सम्राट शाह आलम की सेना में युद्ध हुआ जिसमें मिर्जा हार गया (जनवरी १७७३ ई०) । - - - -शाह आलम अपने मंत्रियों तथा मराठों के हाथ की कठपुतली बना रहा । मिर्जा नजफ खां नवम्बर १७७९ ई० से अपने सारे जीवन के अन्ततक (६ अप्रैल १७८२ ई०) मंत्री रहा । उसने जाटों का प्रभाव तो कम कर दिया, किन्तु पतित साम्राज्य को उन्नत करने तथा उसकी आर्थिक दशा सुधारने में असफल रहा ।[3] मिर्जा नजफ खां के उत्तराधिकारी मिर्जा शफी और अफरा-सियाब (१७८२-१७८४ ई०) तो उससे भी अधिक निकम्मे निकले और सर्वथा असफल रहे । नवम्बर १७८४ ई० में महादाजी सिन्धिया वकील मुतलक (संरक्षक) नियुक्त हुआ । उसने जाटों से डीग और आगरा तथा अफरा सियाब से अलीगढ़ छीना । - - - उसकी अनुपस्थिति में दिल्ली में उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जाने लगे, जिसके परिणाम स्वरूप वह दरबार से हटा दिया गया । जाबिता खां का पुत्र तथा नजीबुद्दौला का प्रपौत्र गुलाम कादिर रुहेला उसका उत्तराधिकारी हुआ, जो सितम्बर १७८७ ई० में मीरबख्शी के पद पर नियुक्त हुआ । वह सम्राट के विरुद्ध हो गया और उसने राजमहल पर अधिकार

१- मुगल कालीन भारत, डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ०सं० ४ ६७.
२- " " " " " " , पृ०सं० ५०२.
३- " " " " " " , पृ०सं० ५०४- ५०५.

कर उसे गद्दी से उतार दिया ।३० जुलाई, १७८८ ई० । । अन्त में सम्राट ने महादाजी सिन्धिया से दिल्ली आकर गुलाम कादिर को उचित दण्ड देने की बड़ी भारी विनती की । सिन्धिया ने अक्टूबर में दिल्ली पर अधिकार कर लिया । गुलाम कादिर भाग गया, किन्तु ३१ दिसम्बर, १७८८ ई० को पकड़ लिया गया । सम्राट ने सिन्धिया को लिखा कि कैदी की हत्या करदी जाय अन्यथा वह राज्य छोड़कर मक्का भाग जायगा । अतः महादाजी सिन्धिया की आज्ञा से गुलाम कादिर तथा उसके साथी पूर्व मंसूरअली ख्वाजा जिसके द्वारा रुहेला ने महल में घुसने का प्रयत्न किया था, मरवा दिये गये ।२-४ मार्च, १७८९ ई० । । इस प्रकार शाहआलम ने अपना बदला लिया ।

१७९२ ई० के आरम्भ में महादाजी सिन्धिया उत्तरी भारत को छोड़कर पेशवा से मिलने के लिए पूना गया । वहां १२ फरवरी, १७९४ ई० को उसकी मृत्यु हो गई । अब दिल्ली दरबार में फिर निराशा छा गई और षड्यन्त्र रचे जाने लगे । सितम्बर, १८०३ ई० में लार्डलेक ने महादाजी सिन्धिया के उत्तराधिकारी दौलत राव सिन्धिया से दिल्ली छीन ली । शाहआलम को अब अंग्रेजों से पेंशन मिलने लगी और १८०६ में उसकी मृत्यु हो गई ।[1]

शाह आलम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अकबर द्वितीय गद्दी पर बैठा । वह शाही वंश का प्रधान बना और नाममात्र का राजधानी सम्राट रहा । पिता के समान इसे भी अंग्रेजों से पेंशन मिलती रही । १८३७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई । उसका पुत्र बहादुरशाह भी नाममात्र का सम्राट बना रह सका । उसने १८५७ ई० के विद्रोह में भाग लिया, अतः अंग्रेजों ने उसपर मुकदमा चला कर रंगून भेज दिया, जहां कुछ वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई ।[2]

२- सामाजिक परिस्थिति :-

सामाजिक दृष्टि से करन का समय अतः पतन का समय कहा जा सकता है । अकबर के पूर्व सुल्तान राजाओं के शासन-काल में हिन्दुओं पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध थे । मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं के सामाजिक अधिकार में न्यूनता थी । सामाजिक रीति-नीति आदि के व्यवहार की भी उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता न थी । उनकी स्थिति

१- मुगल कालीन भारत, डा०आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृष्ठांक ५०५.
२- " " " " " " , पृष्ठांक ५०६.

अनिश्चित और अस्थायी थी ।[1] डा० ईश्वरीप्रसाद ने हिन्दुओं की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक दशा का अत्यन्त विशद वर्णन किया है । भारतवर्ष में इस्लाम की अभिवृद्धि उसके सरल सिद्धान्तों के कारण नहीं, बल्कि इसलिए हुई कि वह एक ऐसी राजशक्ति का धर्म था जो कि कभी-कभी खड्ग द्वारा बलपूर्वक विजित प्रजा को अपना धर्म अंगीकार करने के लिये विवश करता था । स्वार्थसिद्धि तथा राज्य में उच्च पद प्राप्त करने के लालच से भी कभी-कभी लोग अपने धर्म को त्याग देते थे । सिद्धान्तों से आकृष्ट हो अपनी इच्छा से तो इस्लाम को विरले ही अंगीकार करते थे । क्योंकि न तो पद प्राप्ति का लालच हो और न राज्य की ओर से आर्थिक पुरस्कार हो,[2] उस धर्म के प्रति जिसने उनकी स्वाधीनता छीनी थी और जो उन्हें अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता था, हिन्दुओं की प्रबल विरोध भावना पर काबू पाने में सफल हो सका । लगभग ५०० वर्षों तक हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग रहे । इधर असंख्य हिन्दुओं ने भी डटकर विरोध किया । धार्मिक एवं राजनैतिक दोनों दृष्टियों से हिन्दुओं को पीड़ित किया जाता था ।[3] मूर्तियों का खण्डन करना, स्वीकृत सिद्धान्तों के प्रति हर प्रकार की विरोध-भावना को दूर करना तथा काफिरों को मुसलमान बनाना ये कार्य एक आदर्श मुसलमान राज्य के कर्तव्य समझे जाते थे ।[4] हिन्दू जिम्मी कहे जाते थे । उन्हें अपनी रक्षा के लिए सरकार को जजिया देना पड़ता था ।[5] बर्नी लिखता है कि अलाउद्दीन के शासन काल में कोई हिन्दू अपना मस्तक ऊंचा करके नहीं चल सकता था । उनके घरों में सोना-चांदी देखने में न आता था । लगान, मालगुजारी से सम्बन्ध रखने वाले हिन्दुओं की तो बहुत ही दुर्दशा थी । चौधरी आदि ऐसे दरिद्र हो गये थे कि न अच्छे वस्त्र पहन सकते थे, न घोड़े पर चढ़ सकते थे, न शस्त्र खरीद सकते थे और न पान खा सकते थे । वह यह भी लिखता है कि उनकी स्त्रियां मुसलमानों के घरों में सेवा-शुश्रूषा के लिए जाया करती थीं ।[6] हिन्दू निर्धनता, हीनता

१- मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, पृ० ४३.
२- हिस्टोरी आफ मेडिवल इंडिया, पृ० ५२५.
३- ,, ,, ,, ,, , पृ० ५२६.
४- आयबिद, पेज ५२७.
५- भारत का इतिहास, भाग-२, नवम अध्याय, पृ० १६३.
६- भारत का इतिहास, भाग-२, नवम अध्याय, पृ० १६४.

और कठिनता का जीवन व्यतीत करते थे । उनकी आय उनके अपने लिए और कुटुम्ब के लिए बड़ी कठिनता से ही पर्याप्त होती थी । विजित प्रजा में रहन-सहन की व्यवस्था बहुत ही भिन्न कोटि की थी और राज्य-कर का भार विशेषत: उन्हीं पर होता था । ऐसी अविश्वास और दीनता की दशा में उन्हें अपनी राजनैतिक प्रतिभा पूर्णत: विकसित करने का अवसर न मिल सका ।[1] अपने इन संकुचित अधिकारों के रहते हुये भी हिन्दुओं में आत्माभिमान का लोप नहीं हो गया था, साथ ही विलासिता का भी अभाव न था । उच्च घरानों की स्त्रियों में आभूषण और बनाव शृंगार का खूब प्रचलन था[2]। वर्ण-व्यवस्था विशृंखल रूप में थी । समाज में अछूतों की संख्या अधिक थी, जो चारों प्रामाणिक वर्णों से भी नीचे थे, ये आठ भागों में विभक्त थे — बाजीगर, धोबी, मोची, जुलाहे, टोकरे और ढाल बनाने वाले, धीवर, भौरे और व्याध । इन आठों जातियों को नगरों और ग्रामों के भीतर रहने की आज्ञा न थी । इन पेशे वाली जातियों से भी नीचे हाड़ी, डोम, चाण्डाल और बिधातु थे । इन्हें अत्यन्त घृणित जाति का अछूत समझा जाता था[3]। इस्लामी राज्य में शाही लोगों में विलासिता को काफी प्रोत्साहन मिला । राज्य के उच्च पद मुसलमानों को ही मिलते थे । किसी भी सम्मानित पदोन्नति का निर्णय साधारणत: बादशाह की ही इच्छा पर निर्भर रहता था । योग्यता की कोई पूछ न थी । सुख-साध्य, धन-सम्पत्ति और दरबारी उत्सवों में भाग लेना - ये दुर्व्यसन का कारण हुए । इसका परिणाम यह हुआ कि ईसा की चौदहवीं शताब्दी के अन्त में मुसलमानों में पहले के से बल और शौर्य का ह्रास होने लगा[4]। सामाजिक व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बादशाह था और उसके आधीन थे मनसबदार अथवा अमीर-उमराव । इनके बाद ओहदों के अनुसार दूसरे कर्मचारी आते थे और सबका कर्तव्य-कर्म अपने से ऊपरवालों को प्रसन्न करना था[5]। जनसाधारण की चिकित्सा, शिक्षा, सम्पत्ति-रक्षा आदि का भी उस काल में कोई प्रबन्ध न था । ऐसी शोचनीय अवस्था में यदि भाग्यवादी नैतिक मूल्यों से रहित थे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । कार्य सिद्धि के लिए उत्कोच लेना-देना तो साधारण बात थी ही, विलासिता भी इसी कारण बढ़ गयी थी ।

१- हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ५२१.
२- मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, पृ० ४३.
३- ,, ,, ,, ,, ,, , पृ० ४७- ४८.
४- ए शॉर्ट हिस्टोरी आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, चैप्टर-११, पृ०८८२.
५- हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० नगेन्द्र, पृ० २६७.

नारी को अपनी सम्पत्ति मानकर ही उसका भोग इनके जीवन का मूल मन्त्र हो गया था। विलास के उपकरणों की खोज और उनका संग्रह तथा सुरा-सुन्दरी की आराधना अभिजात वर्ग का धर्म था और मध्यम और निम्न वर्ग के लोगों में उसका लोलुपता उनके अनुकरण के कारण था। किसी की कन्या का अपहरण अभिजात वर्ग के लोगों के लिए साधारण बात थी[1]। मुगलों के पूर्व शासन-सत्ता खिलजी, तुगलक, सैयद, लोदी आदि वंशों के हाथ में रही। अलाउद्दीन खिलजी ने तो हिन्दुओं को पीसने तथा उनकी धन-सम्पत्ति हड़प कर उन्हें कंगाल बनाने के लिये नियम ही बनाये थे। उदाहरण स्वरूप उसके राज्य में हिन्दुओं से आय का आधा भाग ले लिया जाता था[2]। फीरोजशाह तुगलक के प्रजाहित के कार्य इतिहास में प्रसिद्ध हैं, किन्तु हिन्दुओं के प्रति उसकी क्रूरता तथा धर्मान्धता इस सीमा को पहुँची हुई थी कि उसने खुलेआम धार्मिक कृत्य करने के कारण एक ब्राह्मण को जीवित ही जला दिया था। उसके समय में ब्राह्मणों तक से "जजिया" कर लिया जाता था जो अभी तक इससे वंचित थे[3]। इसी प्रकार सिकन्दर लोदी भी हिन्दू धर्म का कट्टर विरोधी था। उसने अनेक हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त किया, वस्तुओं की मूर्तियां फिकवा दीं और उन स्थानों को मुसलमानों के काम में प्रयोग किया। भारत के इन सुल्तानों में एक शेरशाह सूर अवश्य ऐसा था जिसने हिन्दुओं के प्रति पक्षपात तथा धर्मान्धतापूर्ण व्यवहार न कर समस्त प्रजा के हित के कार्य किये और प्रजा की आर्थिक दशा सुधारने का प्रयत्न किया[4]। परन्तु अकबर ने अपने शासनकाल में हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। उसने हिन्दुओं पर लगी पाबन्दियों को हटा दिया और दोनों के साथ समता की नीति का पालन किया। अकबर में धार्मिक सहिष्णुता कूट-कूटकर भरी हुई थी, जिसके फलस्वरूप हिन्दू-मुसलमान दोनों प्राय: एक स्तर पर आ गये थे। उन्हें अपने उत्सवों, रीति-रिवाजों आदि के मनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। परन्तु हिन्दू सामाजिक जीवन में जो आचार-भ्रष्टता आ चुकी थी वह एकाएक दूर न हो सकी। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, भेद-भाव, विलास-विलासिता, मद्य-पान आदि दुर्व्यसन हिन्दुओं के उच्च वर्ग के लोगों में ज्यों के त्यों बने रहे। विपन्नता के कारण

१-- हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० नगेन्द्र, पृ० २८७.
२-- मेडिवल इंडिया, लेनपूल, पृष्ठ० २०४-२०६.
३-- ,, ,, ,, , पृष्ठ० १४६.
४-- ,, ,, ,, , पृष्ठ० २३३.

साधारण जनता अनेकानेक संयम से काम लेती थी। अकबर का युग पूर्ण वैभव का युग था। अफीम,मदिरा जैसी नशीली वस्तुओं का सेवन,नाच-गान,भोग-विलास आदि का उस समय दौरा-दौरा था। सम्राट स्वयं कभी-कभी शराब, अफीम के बने हुए पदार्थों का खूब सेवन करता था।[1]

आगे चलकर जहाँगीर के शासन-काल में भी यही दशा रही। उसने अपने पिता की नीति का पालन किया। हाकिन्स लिखता है-- कि सम्राट खूब मदिरा सेवन करता था और दावतें बहुत किया करता था[2]। राजाओं,महाराजाओं और जागीरदारों ने भी मुगल शासकों का अनुसरण करते हुए कवियों को प्रोत्साहित किया। इनसे सम्मानित होकर अनेक कवि इन दरबारों में आने लगे। राज-दरबारों ने उन्हें शृंगारिक कविता करने के लिए बाध्य किया। इसके लिए कवियों को कृष्ण तथा गोपियों के रूप में आलम्बन भी सहज ही मिल गए। राधा-कृष्ण के प्रेम का भक्त कवियों ने बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया था। वह पवित्र हृदय से निःसृत था,इसलिये उसमें वासनामय उद्गार न थे। भक्त कवियों ने राधा और कृष्ण के रूप में भगवान् के अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की थी, किन्तु साधारण जनता के लिये उसमें शृंगारिकता ही अधिक थी। राज-दरबारों में हिन्दी कविता को आश्रय मिलने पर कृष्ण और गोपियों का प्रेम वासनामय उद्गारों के प्रकटीकरण का साधन हो गया। आश्रित हिन्दी कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की मनोवृत्ति के लिए राधाकृष्ण की ओट में वासनामय कलुषित प्रेम की शत-सहस्त्र उद्भावनायें कीं। तत्कालीन काव्य-क्षेत्र में वासनामय शृंगारिक कविता की प्रचुरता का यही प्रमुख कारण है।

४- आर्थिक परिस्थिति :-

अकबर के समय में साधारण जनता की आर्थिक परिस्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। सर टामस रो ने भी अपने "जनरल" में मुगल दरबार की शानो-शौकत तथा मुगल सम्राट जहाँगीर के वैभव एवं शक्ति का और मुगल सरदारों के आनन्दोत्सव और विलासपूर्ण

१- अकबर दी ग्रेट मुगल, पेज-३३६.

२- ए शार्ट हिस्टोरी आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पेज- ४५८.

जीवन का बड़ा ही विशद चित्रण प्रस्तुत किया है। किन्तु इसके साथ ही वह किसानों की दीन-हीन दशा,सड़कों की आरक्षित अवस्था तथा शासन-प्रबन्ध की दुर्व्यवस्था आदि का भी वर्णन बिल्कुल न कर सके। वह लिखता है कि सम्पूर्ण बाजार में घूसखोरी का बाजार गरम था[1]। पेलसर्ट लिखता है कि राज्य में तीन प्रकार के वर्ग थे जिनका जीवन गुलामों का-सा था। इनमें मजदूर,चपरासी, नौकर तथा दुकानदार विशेष उल्लेखनीय थे। मजदूरों की आय बहुत ही कम थी। प्राय: उनसे बेगार ली जाती थी। उन्हें दिन में केवल एक बार खाने को मिलता था, वह भी खिचड़ी ही। उनके मकान प्राय: कच्चे होते थे। उच्चाधिकारियों के नौकरों की भी आय अधिक न थी। परिणाम यह होता था कि वे अनुचित साधनों से रुपया पैदा करने की चिंता में लगे रहते थे। दस्तूरी मांगना तो साधारण-सी बात हो गई थी। दुकानदारों की अवस्था भी असन्तोषजनक थी। देश का अधिकतर व्यापार हिन्दुओं के ही हाथ में था,मुसलमान प्रायः विशेषत: रंगरेज और जुलाहे का ही व्यवसाय अपनाते थे।[2] इस काल में सामन्तवाद का बोलबाला था, और सामन्तशाही के जितने भी दोष हुआ करते थे, उनका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव जनसामान्य के जीवन पर पड़ रहा था। सामाजिक व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बादशाह था और उसके अधीन थे मनसबदार अथवा अमीर-उमराव। इनके बाद ओहदों के अनुसार दूसरे कर्मचारी आते थे और सबका कर्तव्य-कर्म अपने से ऊपरवालों को प्रसन्न करना था -- नीचेवालों को ये मात्र सम्पत्ति समझते थे, उनका अस्तित्व केवल अपने लिये मानते थे। ऊपर से नीचे तक यह शासकों का वर्ग था। शासित वर्ग में एक ओर श्रमजीवी और कृषक आते थे, दूसरी ओर सेठ-साहूकार,दुकानदार और व्यापारी। शासक वर्ग की आय दोनों- अर्थात् श्रमजीवी कृषक तथा सेठ-साहूकारादि से कर के रूप में प्राप्त होती थी और सेठ साहूकारादि कृषकों और श्रमजीवियों की कमाई को विभिन्न प्रकार से अपनाकर अपनी जीविका चलाते थे। इस प्रकार कृषक-श्रमजीवियों का यह निम्न वर्ग सभी ओर से शोषित था। इस युद्ध सेनाओं के प्रयाणों,युद्धों,अतिवृष्टि,अनावृष्टि आदि के कारण इस वर्ग की

१- हिस्टोरी आफ जहांगीर, भाग- १ , , पेज ४४७-४४८.

२- भारतवर्ष का इतिहास भाग-३, पृ० २३३-२३४.

आय के एक मात्र साधन कृषि की भी हानि होती रहती थी । श्रमजीवि वर्ग को किसी न किसी की बेगार करनी पड़ती थी और उसके बदले मिलती थी कोड़ों की मार । अत: इस युग में गरीबों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी और शासक एवं सम्पन्न वर्ग श्रम किये बिना ही सम्पन्न था ।[१]

५- धार्मिक परिस्थिति :-

मुगलों से पूर्ववर्ती यवन राजाओं का राज्य इस्लाम-धर्म की नींव पर टिका था । सुल्तान बादशाहों ने राज्य को तलवार और धार्मिक आज्ञाओं के बल पर संचालित किया । उनका उद्देश्य न केवल राज्य का प्रसार करना था अपितु 'इस्लाम-धर्म' का प्रचार व प्रसार करना भी था जिसे वे प्राय: 'तलवार के जोर' पर करते थे । मुसलमान धर्म-प्रचार के लिये राज्य की ओर से अनेक धर्मोपदेशक भी नियुक्त थे । दूसरी ओर राजसत्ता हिन्दुओं के धर्म पर बार-बार आक्रमण कर रही थी तथा ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जा रही थीं जिससे बाध्य होकर हिन्दू-मुस्लिम धर्म अपना लें । उधर हिन्दू जनता अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता खो बैठी थी । उसने अपने धर्म और संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिये समय-समय पर भिन्न-भिन्न आन्दोलन किये । अतएव यवन राज्य और इस्लाम-धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में भारत में एक महान आन्दोलन का जन्म हुआ जिसके प्रभाव से देश का कोना कोना प्रभावित हुये बिना न रह सका । यह आन्दोलन धार्मिक साहित्य में "वैष्णव भक्ति-आन्दोलन" के नाम से विख्यात है । इस प्रकार भारत में एक ओर मुसलमान धर्म का प्रचार था और दूसरी ओर हिन्दुओं में विभिन्न प्रकार के आन्दोलन जोर पकड़ रहे थे ।

सूफी फकीरों ने भी मुसलमानों के साथ ही भारत में प्रवेश किया । मुसलमानों की तलवारें जो काम करने में असमर्थ थीं उसे इन फकीरों ने करने का बीड़ा उठाया । मुसलमानों ने हिन्दुओं पर विजय अवश्य प्राप्त करली, किन्तु उनके हृदय पर अपना आधिपत्य स्थापित न कर सके । उधर सूफी फकीरों ने हिन्दुओं के हृदय में भी प्रेम की कथाओं को लेकर अपने भावों एवं विचारों की सुन्दर अभिव्यक्ति द्वारा बहुत से साधकों पर अपना प्रभाव

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० नगेन्द्र, पृष्ठ० २९७.

अस्य डालते रहे लेकिन इन सूफी फकीरों के उपदेश उच्च वर्ग के लोगों को प्रभावित न कर सके। इन सूफियों ने निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं को भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। निर्गुण उपासकों में आत्मा को पत्नी-रूप में और परमात्मा को पति-रूप में स्वीकार कर उसके प्रेम और विरह में तल्लीन रहने और सगुण उपासकों में प्रेमाभक्ति का प्राधान्य होने के कारण सूफी फकीरों की साधना-पद्धति का प्रचार हुआ। इस प्रकार सूफी फकीरों की प्रतिष्ठा को चार चांद लग गये और हिन्दुओं पर भी सूफी सन्तों के प्रभाव का असर आया। सर्वप्रथम पंजाब और सिंध पर सूफियों का प्रभाव पड़ा, क्योंकि प्राकृतिक,भौगोलिक कारणों से अन्यान्य विदेशियों के समान ही सूफी फकीर भी पहले वहीं पहुंचे थे।[1]

ग्यारहवीं सदी में दातागंज बख्श या हुज्वारी नामक सुविख्यात मख्दूम सैयद अली अल हुजविरी ने लाहौर को अपने आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रचार-क्षेत्र बनाया और यहीं उनका गोलोकवास हुआ। आज भी उसकी मजार का बहुतेरे हिन्दू और मुसलमान आदर करते हैं।[2] भारतीय सूफियों में मुईनुद्दीन चिश्ती सबसे अधिक सम्मानित है। उनके कारण ही सूफीमत के प्रभाव का प्रचार सम्पूर्ण भारत में हुआ। यहांतक कि कुछ ब्राह्मण भी उससे न बच सके।[3] उत्तरी भारत के बहुत से भागों में सूफियों की बहुत प्रतिष्ठा थी। १२वीं शताब्दी से १७वीं शताब्दी के मध्य तक उसकी निरन्तर अभिवृद्धि होती गई[4]। एक ओर हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर मेल-जोल बढ़ाने का काम जो सूफी साधक कर रहे थे वहीं दूसरी ओर कबीर-पन्थी निर्गुणोपासक भी कर रहे थे। उन्होंने हिन्दू-धर्म में प्रचलित अन्ध-विश्वास,छुआ-छूत की भेद-भावना, मन्दिर-मस्जिद के झगड़े,जातीय संकीर्णता, सनातन शास्त्रों और धार्मिक प्रथाओं के अनुकरण का भी प्रबल विरोध कर जनसाधारण के सम्मुख ज्ञान तथा प्रेम से युक्त निर्गुणोपासना का एक नवीन दृष्टिकोण सामने रखा। दादू-पन्थ भी समाज पर वही प्रभाव

१- मेडिवल मिस्टीसिज्म आफ इंडिया, पेज ११.
२- वाहिद, पेज १५.
३- मेडिवल मिस्टीसिज्म आफ इंडिया, पेज १५.
४- वाहिद, पेज ३२.

डाल रहा था जो कबीर-पन्थ । दादू के विषय में यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने चालीस दिन तक अकबर के साथ वाद-विवाद किया था और उसे काफी प्रभावित किया था[1]।

इन की पूर्ववर्ती तथा समकालीन सगुण-धारा के अन्तर्गत वैष्णव-भक्ति के प्रचारकों की ओर भी ध्यान देना आवश्यक होगा । गुप्तवंश के राजत्व-काल में ईसा की चौथी शती से लेकर छठी शती के अर्द्धभाग तक वैष्णव भक्ति तथा भागवत धर्म का सम्पूर्ण भारत में बोलबाला था । ज्यों ही गुप्त साम्राज्य का अन्त हुआ त्यों ही उसका उत्तरी भारत में प्रचार कम होने लगा, किन्तु दक्षिण भारत में उसकी क्रमशः अभिवृद्धि होने लगी । दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति-साहित्य के दर्शन हमें सबसे पहले तामिल भाषा में लिखे आलवार भक्तों के गीतों में होते हैं । उत्तरी भारत में विष्णु-भक्ति की अधिक प्रबलता तो वस्तुतः ईसा की ११वीं और १२वीं शताब्दी में ही हुई थी । परन्तु दक्षिण भारत से आनेवाले आचार्यों श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीविष्णु स्वामी तथा निम्बार्काचार्य के प्रयत्न से ईसा की ११वीं शती से लेकर १५वीं शती तक यह धर्म उत्तरी भारत में फैल गया था[2]. । अकबर, जहांगीर और शाहजहां की उदारतावादी नीति तथा संतों और सूफियों के उपदेशों के परिणामस्वरूप हिन्दू और इस्लाम संस्कृतियों के निकट आने का जो उपक्रम हुआ था, वह औरंगजेब की कट्टरता के कारण एक प्रकार से समाप्त हो चला था, किन्तु विलास, वैभव के खुले प्रदर्शन के कारण अपनी-अपनी धार्मिक आस्थाओं का दृढ़तापूर्वक पालन भी उनके लिए एक प्रकार से कठिन हो गया था । हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में जिन वैष्णव सम्प्रदायों का प्रभाव था, उनके पीठाधीश लोभवश राजाओं और श्रीमानों को गुरु-दीक्षा देने लगे थे । मन्दिरों में भी अब ऐश्वर्य और विलास की लीला

१- His (Dadu's) Fame as a man of deep spirituality reached the ears of the emperor Akbar, who was his contemporary, and Birbal, it is said prevailed upon the saint to have an interview with the Emperor in response to an invitation from him.
Rajjabdas referes to the event in one of his couptels.
-Nirguna School of Hindi poetry,
Page 259.

२- अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय (प्रथम भाग), पृ० ३८.

होने लगी थी । यह स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी थी कि हिन्दू अपने आराध्य राम-कृष्ण का अतिशय शृंगार ही नहीं करने लगे थे, उनकी लीलाओं में अपने विलासी जीवन की संगति खोजने लगे थे । अहिन्दी प्रान्तोंमें यद्यपि ऐसे संतों का प्रभाव था जो इस धारा से अब भी दूर थे, किन्तु उनका प्रभाव हिन्दी-प्रान्तों तक न आ सका था । दूसरी ओर, इस्लाम धर्म पर इस विलास वैभव का सीधा प्रभाव तो नहीं था, पर रूढ़िवादिता के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण वह जीवन की वास्तविकता से हट गया था -- इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों से दूर पड़ गये थे-- केवल बाह्याचरण ही धर्म-पालन रह गया था । जनता के इस अन्ध विश्वास का अनुचित लाभ पुजारी [illegible] और मुल्ला उठाते थे और ये धर्मस्थान भ्रष्टाचार तथा पापाचार के केन्द्र बन गये थे ।[1] अतः कवि के समय में धार्मिक परिस्थिति अत्यन्त शोचनीय प्रतीत होती है ।

---- :-:----

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा०नगेन्द्र, पृ०सं० २६८.

द्वितीयअध्याय

जीवनवृत्त एवं रचनायें

१- जीवनवृत्त के प्रमाणित स्रोत-

१- हिन्दी साहित्य के ग्रन्थ -

१- डा०अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन :-

डा०अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन ने अपने हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास में करनजी के विषयमें लिखा है कि--

परना बुन्देलखण्ड के भाट

जन्म १७३७ ई० । इन्होंने बिहारी ।सं०१ ६६। की सतसई की एक टीका साहित्य चंद्रिका नाम से परना के बुन्देला राजा सभासिंह ।सं० १५५। और हिरदे साहि के आश्रय में रहकर लिखी । यह आशु कविता और समस्यापूर्ति में परम प्रवीण थे, जो इनकी प्रतिभा की परीक्षा के लिए दी जाती थी । फलत:इन्हें अनेक प्रकार के उपहार और सामान मिले थे । शिवसिंह सिंह नामक राजा का कोई पता नहीं लगा,रिपोर्ट आफ द आर्केआलोजिकल सर्वे आफ इंडिया,भाग २१ में पृष्ठ ११२ पर हिरदेसाहि का उल्लेख मिलता है, जो अपने पिता छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् १७३८ ई० ।१ संवत्। में सिंहासनासीन हुए ।

पुनश्च:- इनकी साहित्य चंद्रिका की तिथि सं० १७६४ ।१७३७ ई०। दी गई है जिसको शिवसिंह इनके जन्म संवत् के रूप में देते हैं । हृदयसाहि के सम्बन्ध में संख्या ५०२ में देखिए। टि० हृदयसाहि महाराज छत्रसाल के पुत्र थे । इन्होंने सं० १७८८ से १७९६ तक राज्य किया। सभासिंह, छत्रसाल के पौत्र और हृदयसाहि के पुत्र थे । इन्होंने सं० १७९६ से १८०६ वि० तक राज्य किया । छत्रसाल की मृत्यु न १७३८ ई० में हुई, न संवत् १७३८ में । इनका मृत्युकाल सं० १७८८ है । शिवसिंह ने करन,भट्ट को सं० १७९४ में "उ०" कहा है । ग्रियर्सन ने "उ०" का गलत अर्थ "उत्पन्न" कर लिया है, और गलती सरोजकार के मत्थे ठोंक रहे हैं । सरोजकार का "उ०" से अभिप्राय "उपस्थिति " से है । सर्वेक्षण ६६ ।

डा०ग्रियर्सन ने हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास में एक और पृष्ठ पर करन जी के विषय में लिखा है-- करन बाम्हन --बुन्देलखण्डी । १८०० ई० के आसपास उपस्थित ।

यह पन्ना के बुन्देला महाराजा हिन्दूपति के दरबारी कवि थे । इन्होंने दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे-- 'रस कल्लोल' और 'साहित्य-रस' टि० ३५६ संख्यक करन भट्ट और ५०४ संख्यक करन बाम्हन एक ही व्यक्ति है । यहां दिया समय १८०० ई० ।सं० १८५७ । अशुद्ध है । सं० १७९४ में इन्होंने बिहारी सतसई की टीका प्रस्तुत की थी[१] । -- सर्वेक्षण ६९-७०.

२- मिश्रबन्धु विनोद :-

विद्वान मिश्रबन्धु विनोद ने अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि-कीर्तन में करन के विषय में लिखा है-- नाम ।६३६। करन भट्ट, पन्ना ।

ग्रन्थ :- १- साहित्य चन्द्रिका ।सतसई की टीका ।
२- रस कल्लोल ।

जन्म-काल :- १७९४.
कविता-काल :- १८२४.
विवरण :- महाराजा सभासिंह,अमानसिंह एवं हिन्दूपति के यहां थे[२] ।

३- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल :-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में करन जी के विषय में लिखा है-- ये षट्कुल कान्यकुब्जों के अन्तर्गत पांडे थे और छत्रसाल के वंशधर 'पन्ना नरेश' महाराज हिंदूपति की सभा में रहते थे । इनका कविता-काल संवत् १८६० के

१- डा०ग्रियर्सन, पृ०सं० १७७, २०३.
२- मिश्रबन्धु विनोद, पृ०सं० ७७२.

लक्षक माना जा सकता है। इन्होंने 'साहित्य-रस' और 'रस कल्लोल' नामक दो रीति-ग्रन्थ लिखे हैं।

'साहित्य-रस' में इन्होंने लक्षणा, व्यंजना, ध्वनिभेद, रस भेद, गुण, दोष आदि काव्य के प्रायः सब विषयों का विस्तार से वर्णन किया है। इस दृष्टि से यह एक उत्तम रीतिग्रन्थ है, कविता भी इसकी सरस और मनोहर है। इससे इनका एक सुविज्ञ कवि होना सिद्ध होता है। इनका एक कवित्त देखिए--

कंटकित होत गात बिपिन-समाज देखि,
हरी हरी भूमि हेरि हियो हरषतु है।
एते पै करन धुनि परति मयूरन की,
चातक पुकारि तेह ताप सरसतु है।।
निपट चवाइनि भाइनि बंधु पै बसत गांव,
दांव परे जानि कै न कोऊ बरजतु है।
बरज्यौ न मानी तू, न गरज्यौ चलत बार,
एरे घन बैरी! अब काहे गरजतु है।।

-+- -+- -+- -+-

खल खंडन, मंडन धरनि, उद्धत उदित उदंड।
दलमंडन दारुन समर, हिंदूराज भुजदंड।।[1]

४- ठाकुर शिवसिंह सरोज :-

करन जी के विषय में ठाकुर शिवसिंह सरोज जी लिखते हैं कि पन्ना नरेश के यहां थे और इन्होंने रस कल्लोल तथा साहित्य-रस बनाए हैं। हमने इनका रस कल्लोल नामक ग्रन्थ उक्त ठाकुर साहब के पुस्तकालय में देखा, परन्तु उसमें कुछ संवत् या पता इत्यादि नहीं लिखा है। उसके देखने से इतना जान पड़ता है कि करन के पिता का नाम वंशीधर था। यह ग्रन्थ संवत् १८८६ का लिखा हुआ है, जिससे यही जान सकते हैं कि उक्त संवत् के प्रथम यह बना होगा। इन्हीं के लेखानुसार यह जान पड़ता है कि ये पांडे थे —

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठं० २८१-२८२.

"खटकुल पांडे पारिछिया भरद्वाज वर बंस,
गुणनिधि पाय निहाल है कही जात प्रसंस ।"

कहन ने छत्रसाल का नाम लिखा है। छत्रसाल हाड़ा महाराज का शरीरपात १७१५ में हुआ था और छत्रसाल महेवावाले का सं० १७८६ के लगभग। इन महाशय ने जो छंद लिखा है उसमें छत्रा छत्रा छितिपाल की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया है। यह ग्रन्थ भी बहुत प्राचीन समय का लिखा है। इससे इनके पुराने कवि होने में संदेह नहीं है। इनका कविता-काल खोज में संवत् १७५७ दिया है और यह भी लिखा है कि ये हिंदूपति पन्ना-नरेश के यहां थे। यह यथार्थ जंचता है। ।खोज १९०४। क्योंकि हिंदूपति महाराजा छत्रसाल के वंशधर थे। ये महाशय पांडे थे, अत:इनका निवास-स्थान कन्नौज,असनी या गैनासी का होना संभव है, क्योंकि ये अपने को खटकुल अर्थात् उत्तम कान्यकुब्ज कहते हैं, और ऐसे पांडे कन्नौजियों के मुख्य स्थान ये ही हैं। इस ग्रन्थ में २५२ छंद हैं, जिनमें रस-भेद, ध्वनि भेद, गुण, लक्षणा इत्यादि वर्णित हैं। ग्रन्थ प्रशंसनीय बना है। इनकी भाषा ब्रजभाषा है और वह ललित एवं श्रुति मधुर है। इन्होंने काव्य-सामग्री का विशाल वर्णन किया है। भाषा प्रेमियों से हम इस ग्रन्थ के पढ़ने का अनुरोध करते हैं। यह अभी मुद्रित नहीं हुआ है। हम इनको तोष की श्रेणी में रखते हैं।"

खल खंडन मंडन धरनि उद्धत उदित उदंड,
दल मंडन दारुन समर हिन्दुराज भुजदंड ॥ १ ॥

भौरनि को गुंज राजहंसनि को मानसर,
चन्द्रमा चकोरन को कहन छिति गयो,
दुवन को कामतरु कान्ह ब्रज मंडल को,
जलद पपीहन को काहू ने छिवै गयो ।
दीपनि को दीप हीराहार जिनबालनि को,
कोकनि को वासरेश देखत छिपै,
छत्रा छितिपाल छिति मंडल उदार वीर,
धरा के अधार को सुमेरु सो छिपि गयो ॥ २ ॥
कंटकित होत गात विपिन समाज देखि,
हरी हरी भूमि हेरि हियो लरजतु है,

रते पै करन धुनि परत मयूरनि की,
चातक पुकार तेह ताप सरसतु है ।
निपट कसाई माई बंधु पै कहत याऊं,
ताऊं परे जानि कै न कोऊ बरजतु है,
बरषौ न मानी तू न गरषौ कत बेर,
हरे मन बैरी अब काहे गरजतु है ।। ३ ।।

कुरल सरित सरवर विटप निरख कार कर नीति,
कहीं सुबैपे राखिहौं कलित अंकुरित प्रीति ।। ४ ।।[1]

५- कैलाशनारायण शास्त्री :-

कैलाशनारायण शास्त्री ने अपने ग्रंथ `काव्यशास्त्र युग और प्रवृत्तियां` में करन जी के विषय में लिखा है-- करन कवि-

समय -- १८६० विक्रमी संवत्
ग्रंथ -- साहित्य-रस, रस कल्लोल
विवरण -- प्रथम सर्वांग निरूपक, द्वितीय रस तथा नायिका भेद से संबंध है ।[2]

६- डा० नगेन्द्र :-

डा०नगेन्द्र ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में करन जी का परिचय इस प्रकार दिया है --

करन कवि - मुक्तक काव्य
साहित्य रस, रस कल्लोल ।[3]

७- कविमणि पं०कृष्णदास :-

कविमणि पं०कृष्णदास बुन्देलखण्ड के कवियों में से एक सुप्रसिद्ध कवि हैं । उन्होंने `बुन्देलखण्ड के कवि` नामक एक पुस्तक लिखी है,जिसमें करन जी के विषय में उन्होंने इस

१- मिश्रबंधु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन ।द्वितीय भाग।, --पृष्ठ० ८५७ लेखक-गणेश बिहारी मिश्र ।
२- कैलाशनारायण शास्त्री, पृष्ठ० ५१,
३- डा०नगेन्द्र,पृष्ठ० ३०२, प्रकाशक-नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली,

प्रकार लिखा है -- पन्ना राज्य का विस्तार महाराज छत्रसाल के समय में, करन कवि द्वारा विरचित।

> इत यमुना उत नर्मदा इत चम्बल उत टौंस ।
> 　　छत्रसाल सौं लरन की रही न काहू हौंस ।।
> दक्खिन के जोर के मरोर बादशाहन कों ।
> 　　जोर तुरकान कीन्ही उकह बखान की ।।
> घेर कर बालिम बलान के नरेशन कों ।
> 　　शेर पर साहिबी सम्हारी कुल भान की ।।
> छत्रा नराह त्यों सपूत हृदय शाह वीर ।
> 　　जाय बढ़ाईं कवि "करन" बखान की ।।
> नर्मदा कालिंदी टौंस चम्बल महाधर हैं ।
> 　　विरचि बुन्देला हद बांधी हिन्दुवान की ।। [१]

८- डा० सत्येन्द्र :-

डा० सत्येन्द्र ने 'ब्रज साहित्य का इतिहास' में करन जी के विषय में लिखा है --

करन कवि -- ये भारद्वाज गोत्रिय पांडेय श्रीधर के पुत्र थे। पन्ना नरेश हिन्दूपति के आश्रित कवि थे। इनके दो ग्रन्थ माने जाते हैं-- १.रस कल्लोल, २.साहित्य-रस। 'साहित्य-रस' ही अप्राप्य है। 'रस कल्लोल' में इन्होंने भरत-मत के अनुसार रसों का सांगोपांग वर्णन किया है। उनके रंगों, देवताओं,विभाव, अनुभाव, संचारी आदि का निरूपण है। साथ ही शब्द-शक्ति और वृत्ति का भी संक्षेप में वर्णन है[२]।

खोज रिपोर्ट :-

नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०४ की खोज-रिपोर्ट में करन का कविता-काल १७५७ दिया है और यह भी लिखा है कि हिंदूपति पन्ना नरेश के यहां थे[३]।

१- पं० कृष्णदास, पृ०सं० ७.

२- डा० सत्येन्द्र , पृ०सं० ४०६.

३- नागरी प्रचारिणी सभा खोज-रिपोर्ट सन् १९०४.

करन ने बिहारी ।सं० १६६। की सतसई की टीका साहित्य चन्द्रिका नाम से परना के बुन्देला राजा सभासिंह ।सं० १५५। और हिरदैसाहि के आश्रय में रह कर लिखी । रिपोर्ट आफ द आर्के आलौजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग ३१ में पृष्ठ ११२ पर हिरदै साहि का उल्लेख मिलता है, जो अपने पिता छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् १७१८ ई० ।संवत् १। में सिंहासनासीन हुए ।[१]

खोज-रिपोर्ट में इस हस्तलेख के अन्वेषक डा०दीक्षित ने करन कवि को बंशीधर का पुत्र बताया है, इसकी पुष्टि ग्रन्थ की पुष्पिका से भी होती है। `इति श्री बंशीधरात्मज कवि करन विरचिते बिहारीकृत शप्तशतिका निगवि रस धुनि लक्षणा नाईका-नायक विंगि गुनालंकार किरंणाम,वाल्या विद्वज्ज कुमुद प्रकाशिका संहित चंद्रिका संपूर्नम्[२] ।`

१- रिपोर्ट आफ द आर्केआलौजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग-३१, पृ०सं० ११२.

२- बिहारी सतसई की टीका, हस्त.प्रति वृन्दावन साहित्य शौध संस्थान, बांदा, आचार्य करन कवि, पृ०सं० १६३.

।२। जन्म :-

करन के जन्म संवत् के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डा०अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन ने इनका जन्म संवत् १७३७ ई० माना है।[१] इन्होंने बिहारी (सं० १९६) की सतसई की एक टीका साहित्य चन्द्रिका नाम से पन्ना के बुन्देला राजा सभासिंह (सं० १९५) और हिरदेसाहि के आश्रय में रहकर लिखी। यह आशु कविता और समस्यापूर्ति में परम प्रवीण थे, जो इनकी प्रतिभा की परीक्षा के लिए दी जाती थी। फलतः इन्हें अनेक प्रकार के उपहार और सम्मान मिले थे। विधि शिवसिंह नामक राजा का कोई पता नहीं लगा। रिपोर्ट आफ द आर्कियालॉजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग ३१ में पृष्ठ ११२ पर हिरदेसाहि का उल्लेख मिलता है, जो अपने पिता छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् १७१८ ई० (१ संवत्) में सिंहासनासीन हुए। पुनश्च-इनकी साहित्य चन्द्रिका की तिथि सं० १७९४ (१७३७ ई०) दी गई है जिसको शिवसिंह इनके जन्म संवत् के रूप में देते हैं। हृदयसाहि महाराज छत्रसाल के पुत्र थे। उन्होंने सं० १७८८ से १७९६ तक राज्य किया। सभासिंह, छत्रसाल के पौत्र और हृदयसाहि के पुत्र थे। इन्होंने सं० १७९६ से १८०६ वि० तक राज्य किया। छत्रसाल की मृत्यु सन् १७१८ ई० में हुई, न संवत् १७१८ में हुई। इनका मृत्युकाल सं० १७८८ है। शिवसिंह ने करन, भट्ट को सं० १७९४ में उ० कहा है। ग्रियर्सन ने उ० का गलत अर्थ उत्पन्नकर लिया है और गलती सरोजकार के मत्थे ठोंक रहे हैं। सरोजकार का उ० से अभिप्राय 'उपस्थित' से है -- सर्वेक्षण ६९.।

मिश्रबन्धु विनोद ने इनका जन्म संवत् १७९४ माना है।[२] किन्तु उन्होंने यह नहीं लिखा कि इस जन्म संवत् के मानने के लिये उनके पास क्या प्रमाण और आधार हैं।

स्व०आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्मकाल न देकर कविता काल संवत् १८६० के लगभग माना है। ये षट्कुल कान्यकुब्जों के अन्तर्गत पाण्डेय थे और छत्रसाल के वंशधर 'पन्ना नरेश' महाराज हिंदूपति की सभा में रहते थे। इनका कविता-काल संवत् १८६० के लगभग माना जा सकता है।[३]

१- डा०ग्रियर्सन, हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ०- १७७-२०३.
२- मिश्रबन्धु विनोद, पृ०सं०- ७७२.
३- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०सं० २८१-२८२.

'ठाकुर शिवसिंह सरोज' करन के जन्म के विषय में मौन हैं, उन्होंने करन का कविता काल अवश्य संवत् १७५७ दिया है ।

कैलाशनारायण अवस्थी ने इनका समय १८६० वि० संवत् माना है, किन्तु इसको प्रमाणित नहीं किया है । नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०४ की खोज रिपोर्ट में करन का कविता काल १७५७ दिया है और यह भी लिखा है कि ये हिंदूपति पन्ना नरेश के यहां थे ।[1]

करन ने छत्रसाल की मृत्यु पर शोक प्रकट किया है जिससे ज्ञात होता है कि करन छत्रसाल के समय में उपस्थित थे । छत्रसाल का मृत्यु-काल सं० १७८८ है । अतः करन का जन्म संवत् १७३७ ई० में उचित जान पड़ता है ।

शिक्षा, व्यवसाय, परिवार तथा स्वर्गवास :--

करन की शिक्षा के विषय में कोई भी प्रमाणित तथ्य उपलब्ध न हो सका, किन्तु इनके ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह अत्यन्त विद्वान थे ।

डा०अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन ने इनकी प्रतिभा के सम्बन्ध में लिखा है --'यह आशु कविता और समस्यापूर्ति में परम प्रवीण थे, जो इनकी प्रतिभा की परीक्षा के लिए दी जाती थी । फलतः इन्हें अनेक प्रकार के उपहार और सामान मिले थे ।[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में करन के विषय में लिखा है --'साहित्य रस में इन्होंने लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि भेद, रस भेद, गुण-दोष आदि काव्य के प्रायः सब विषयों का विस्तार से वर्णन किया है ।' इस दृष्टि से यह उत्तम रीति ग्रन्थ है, कविता भी इसकी सरस और मनोहर है । इससे इनका एक सुविज्ञ कवि होना सिद्ध होता है ।[3]

डा०ग्रियर्सन ने लिखा है -- करन ब्राह्मण-बुन्देलखण्डी । यह पन्ना के बुन्देला महाराजा हिन्दूपति के दरबारी कवि थे इन्होंने दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे--

करन भट्ट और करन ब्राह्मण एक ही व्यक्ति है -- -- सं०१७९४ में इन्होंने बिहारी सतसई की टीका प्रस्तुत की थी --सर्वेक्षण ६९-७० ।[4]

१- नागरी प्रचारिणी सभा खोज-रिपोर्ट - १९०४ सन् ।
२- डा०ग्रियर्सन, पृ०सं०- १७७, २०३.
३- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ०सं०- २८१-२८२.
४- डा०ग्रियर्सन, पृ०सं०- १७७, २०३.

`मिश्रबन्धु विनोद` लिखते हैं -- नाम - (६३६) करन, भट्ट, महाराजा सभासिंह, अमान सिंह एवं हिन्दूपति के यहां थे।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने करन के परिवार के विषय में लिखा है -- ये षट्कुल कान्य कुब्जों के अन्तर्गत पाण्ड्य थे और छत्रसाल के वंशधर `पन्ना नरेश` महाराज हिन्दूपति की सभा में रहते थे।[2] इस तथ्य की पुष्टि ठाकुर शिवसिंह सरोज ने करन कृत एक छन्द के माध्यम से की है --

षटकुल पांडे पषिलिखा भरद्वाज बर बंस,
गुननिधि पाय निहाल के कहौ जात प्रसंस ।।

आगे ठाकुर जी करन के व्यवसाय तथा परिवार के विषय में सप्रमाण अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हैं -- `करन ने छत्रसाल का नाम लिखा है।` छत्रसाल बाड़ा महाराज का शरीरपात-१७९५ में हुआ था ------इन महाशय ने जो छंद लिखा है उसमें छता-छितिपाल की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया है। यह ग्रन्थ भी बहुत प्राचीन समय का लिखा है। इससे इनके पुराने कवि होने में सन्देह नहीं। इनका कविताकाल खोज में संवत् १७५७ दिया है और यह भी लिखा है कि ये हिन्दूपति पन्ना नरेश के यहां थे। यह यथार्थ जचता है। (खोज ६.०४) क्योंकि हिन्दूपति महाराज छत्रसाल के वंशधर थे। ये महाशय पाण्डे थे, अतः इनका निवास स्थान कन्नौज, असनीया गैगासी का होना सम्भव है, क्योंकि ये अपने को षटकुल अर्थात् उत्तम कान्यकुब्ज कहते हैं, और ऐसे कन्नौजियों के मुख्य स्थान यही हैं।[3]

डा०सत्येन्द्र लिखते हैं -- ये भारद्वाज गोत्रिय पांड्य श्रीधर के पुत्र थे। पन्ना नरेश हिन्दूपति के आश्रित कवि थे।[4]

१- मिश्रबन्धु विनोद, पृ०सं०- ७७२.

२- आ०रामचन्द्र शुक्ल, पृ०सं०- २८१-२८२.

३- मिश्रबन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन- (द्वितीय भाग) पृ०सं०- ८४७.

लेखक -- गणेश बिहारी मिश्र ।

४- डा० सत्येन्द्र, पृ०सं०- ४०६.

करन के पिता का नाम वंशीधर था इसकी पुष्टि 'साहित्य चन्द्रिका' की पुष्पिका से भी होती है ---- 'इति श्रीवंशीधरणात्मज कवि करन विरचित बिहारी कृत सप्तशतिका निगति रस धुनि लछण नाइका-नायक विंगि गुनालंकार किरंणाम वाल्या विकुन्य कुमुद प्रकाशिका संहित चंद्रिका संपूर्नम् ।'[१]

करन के स्वर्गवास के सम्बन्ध में कोई भी जानकारी प्राप्त न हो सकी, क्योंकि इस विषय पर उनके ग्रन्थ मौन हैं।

१- बिहारी सतसई की टीका, हस्त ग्रन्थ प्रति चन्दवास, साहित्य शोध संस्थान, बांदा।   -- आचार्य करन कवि, पृ०सं०- १६३.

रचनाएं :--

करन के ग्रन्थों और उनकी संख्या के विषय में हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों एवं विद्वानों में मतभेद है। डा०ज्याज्र्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने अपने हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास[1] में करन के विषय में लिखा है कि इन्होंने 'बिहारी (सं० १९६) की सतसई की एक टीका "साहित्य-चन्द्रिका" नाम से परना के बुंदेला राजा सभासिंह (सं० १९५) और हिरदेसाहि के आश्रय में रह कर लिखी। इसके अतिरिक्त इन्होंने इनके 'रस-कल्लोल' तथा 'साहित्य-रस' नामक दो और ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

मिश्रबन्धु विनोद ने अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि-कीर्तन[2] में करन के केवल दो हस्तलिखित ग्रन्थों का उल्लेख किया है --

१- साहित्य चन्द्रिका (सतसई की टीका)।

२- रस-कल्लोल।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास[3] में करन के ग्रन्थों के विषय में लिखा है कि इन्होंने 'साहित्य-रस' और 'रस-कल्लोल' नामक दो रीति ग्रन्थ लिखे हैं।

ठाकुर शिवसिंह सरोज[4] ने भी करन के 'रस-कल्लोल' एवं 'साहित्य-रस' नामक दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है। उन्होंने 'साहित्य चन्द्रिका' (सतसई-की टीका) का कोई उल्लेख नहीं किया है।

कैलाश नारायण अवस्थी ने अपने ग्रन्थ 'काव्यशास्त्र-युग और प्रवृत्तियां' में करन के 'साहित्य रस' और 'रस कल्लोल' नामक दो ग्रन्थों का ही उल्लेख किया है।[5]

१- डा० ग्रियर्सन - पृ०सं० १७७, २०३.

२- मिश्रबन्धु विनोद, हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन, पृ०सं० ७७२.

३- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०सं० २८१-२८२.

४- मिश्रबन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन, (द्वितीय भाग) पृ०सं० ८४७, लेखक -- गणेश बिहारी मिश्र.

५- कैलाश नारायण अवस्थी, पृ०सं० ५१.

डा० नगेन्द्र ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में `साहित्य-रस` तथा `रस-कल्लोल` नामक दो मुक्तक काव्यों का उल्लेख किया है।[1]

डा०सत्येन्द्र ने भी `रस-कल्लोल` तथा `साहित्य-रस` नामक दो ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[2]

रिपोर्ट आफ द आर्कियालोजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग-३१ में यह उल्लेख मिलता है -- कि करन ने बिहारी (सं० १६६) की सतसई की टीका साहित्य चन्द्रिका नाम से परना के बुन्देला राजा सभासिंह (सं० १७५) और हिरदेसाहि के आश्रय में रहकर लिखी।[3]

साहित्य चन्द्रिका (सतसई की टीका) ग्रन्थ की पुष्टि ग्रन्थ की पुष्पिका से भी होती है।

`इति श्रीवंशीधरात्मज कवि करन विरचिते बिहारीकृत शप्तशतिका निगदि रसधुनि लछणा नाइका-नायक विंगि गुनालंकार किरणम बाल्या विद्वज्ज कुमुद प्रकाशिका संहित चंद्रिका संपूर्नम्।`[4]

`साहित्य रस` अप्राप्य है।

`रस-कल्लोल` नामक ग्रन्थ वृन्दावन साहित्य शोध संस्थान, बांदा में उपलब्ध है। नागरी-प्रचारिणी सभा, बनारस में भी इसकी एक प्रति है। परन्तु वृन्दावन शोध संस्थान वाली प्रति में कुछ संवत् या पता इत्यादि नहीं लिखा है। उसके देखने से इतना जान पड़ता है कि करन के पिता का नाम वंशीधर था। करन की स्फुट रचना `बुन्देलखण्ड के कवि` नामक पुस्तक में मिलती है, किन्तु उसके रचना-ग्रन्थ का नामोल्लेख नहीं है --

---

१- डा० नगेन्द्र, पृ०सं०- ३०३ --प्रकाशन - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

२-डा० सत्येन्द्र, पृ०सं०- ४०६.

३-रिपोर्ट आफ द आर्कियालोजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग-३१, पृ०सं०-११२.

४- बिहारी सतसई की टीका, ह० प्रति, वृन्दावन साहित्य शोध संस्थान, बांदा, आचार्य करन कवि, पृ०सं०- १६३.

इत यमुना उत नर्मदा इत चम्बल उत टौंस ।
छत्रसाल सों लरन की रही न काहू हौंस ।।

खंडिन से और के मरोर बादशाहन को ।
तोर तुरकान कीन्हीं उलट जहान की ।
घेर कर जालिम जहान के नरेशन को ।
शेर पर साबिती सम्हारी कुल मान की ।।
छत्रों नरनाह त्यों सपूत कुलह शाह वीर ।
जात बढ़ाई कवि `करन` बखान की ।।
नर्मदा कालिंदी टौंस चम्बल महावर ते ।
विरचि बुन्देला हद बांधी हिन्दुवान की ।।[१.]

करन के मुख्य ग्रन्थ तीन हैं -- १- साहित्य-रस, २- रस कल्लोल, ३- साहित्य चन्द्रिका (सतसई की टीका), तथा कुछ स्फुट रचनाएं भी उपलब्ध हैं ।

रचनाओं का संक्षिप्त परिचय :-

साहित्य-रस :-

`साहित्य-रस` अप्राप्य है, अथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप भी इसे प्राप्य करने में समर्थ न हो सके । कतिपय इतिहासकारों तथा विद्वानों के परामर्श से इसके सम्बन्ध में कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त हो सकी ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में करन के `साहित्य-रस` के विषय में लिखा है -- `साहित्य-रस` में इन्होंने लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि-भेद, रस-भेद, गुण, दोष आदि काव्य के प्राय:सब विषयों का विस्तार से वर्णन किया है । इस दृष्टि से यह एक उत्तम ग्रन्थ है, कविता भी इसकी सरस और मनोहर है । इससे इनका एक सुविज्ञ कवि होना सिद्ध होता है । इनका एक कवित्त देखिये--

कंटकित होत गात बिपिन समाज देखि,
हरी हरी भूमि हेरि हियो लरजतु है ।

१- पं० कृष्णदास, पृष्ठ संख्या- ७.

हते पै करन धुनि परति मयूरन की ।
चातक पुकारि तेह ताप सरजतु है ।।
निपट चवाई माई बंधु जे बसत गांव,
दांव परे जानि कै न कोऊ बरजतु है ।
बरज्यौ न मानी तू, न गरज्यौ चलत बार,
एरे घन बैरी ! अब काहे गरजतु है ।।

+ + + + + +

खल, खंडन, मंडन, धरनि, उद्ध उदित उदंड ।
दलमंडन दारुन समर, हिंदूराज भुजदंड ।। [१]

"साहित्य-रस" अभी मुद्रित नहीं हुआ है ।

।२। रस-कल्लोल :-

करन के "रस-कल्लोल" ग्रन्थ के विषय में विभिन्न इतिहासकारों एवं विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न मत अभिव्यक्त किये हैं ।

"रस-कल्लोल" नामक ग्रन्थ उक्त ठाकुर साहब के पुस्तकालय में देखा, परन्तु उसमें कुछ संवत् या पता इत्यादि नहीं लिखा है । उसके देखने से इतना ज्ञान पड़ता है कि करन के पिता का नाम वंशीधर था । यह ग्रन्थ संवत् १८८५ का लिखा हुआ है जिससे यही जान सकते हैं कि उक्त संवत् में इसकी रचना हुई होगी । इन्हीं के लेखानुसार यह ज्ञात पड़ता है कि ये पांडे थे ---

"षटकुल पांडे पहितिहा भरद्वाज बर बंस,
गुननिधि पाय निहाल के बसौं जात प्रशंस ।"

इस ग्रन्थ में २५२ छंद हैं जिनमें रसभेद, ध्वनि-भेद, गुण, लक्षणा इत्यादि वर्णित हैं । इनकी भाषा ब्रज भाषा है और वह ललित एवं श्रुति मधुर है । इन्होंने काव्य सामग्री का विशाल वर्णन किया है । [२]

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या- २८१-२८२.

२- मिश्रबन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन ।
(द्वितीय भाग) पृष्ठसं० ८४७, लेखक--- गणेश बिहारी मिश्र ।

'रस-कल्लोल' में इन्होंने भरत मत के अनुसार रसों का सांगोपांग वर्णन किया है। उनके रंगों, देवताओं, विभाव, अनुभाव, संचारी आदि का निरूपण है। साथ ही शब्द-शक्ति और वृत्ति का भी संक्षेप में वर्णन है।[1]

करन ने छत्रसाल का नाम लिखा है। छत्रसाल हाड़ा महाराव का शरीरपात १७१५ में हुआ था और छत्रसाल मझिवावाले का शरीरपात १७८८ के लगभग हुआ। इन्होंने जो छंद लिखा है उसमें छता छितिपाल की मृत्यु पर शोक प्रकट किया है --

मोरन को कुंवराज छंसन को मानसर चंद्रमा चकोरन कहर विवि गयो।
भिक्षुक को कायतर कान वृष कुंठित को जलधि पपीहन को काहु ने रिवि ल्यो।
दीपन को दीप हीरहार कुल पालन को कोकन को बासरेस देखत अबै गयो।
छता छितपाल छिव मंडल उदार धीर धरा को अवार सो सुमेर धो किवे —
गयो ।।५६।।[2]

यह ग्रन्थ भी बहुत प्राचीन है, इससे इनके नवीन कवि होने में सन्देह नहीं है। इनका कविता काल खोज-रिपोर्ट में संवत् १७५७ दिया है और लिखा है कि ये हिन्दूपति पन्ना नरेश के यहां थे। यह यथार्थ प्रतीत होता है,[3] क्योंकि हिन्दूपति महाराजा छत्रसाल के वंशधर थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि यह ग्रन्थ करन ने ही लिखा है। यह ग्रन्थ संवत् १८८५ का लिखा है, प्रमाणित होता है। करन ने अपने ग्रन्थ की प्रमाणिकता में प्रत्येक छन्द के अन्त में अपने नाम का उल्लेख किया है।

'रस कल्लोल' नामक हस्तलिखित मुझे चन्द्रदास शोध संस्थान में उपलब्ध हो सका। जो अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था, जिसके अध्ययन से ज्ञात हुआ कि यह एक लालित्यपूर्ण एवं श्रुति प्रधान ग्रन्थ है।

'रस-कल्लोल' के प्रथम पृष्ठ पर श्री गणेश, श्री सरस्वतीदेवीजी, श्री राधा-कृष्ण आदि की वन्दना की है :--

---

१- डा० सत्येन्द्र, पृ०सं०- ४०६.
२- ह०ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-६.
३- नागरी प्रचारिणी सभा खोज-रिपोर्ट १९०४ सन्.

सुमनवंत सोभा सदन वारन बदन विचार ।
चारौ फल वितरत तुरत सुरतर बर करचार ।।३।।

\+ + + + +

रस घन गुन अनुरूप तीय कवित भेद मति सोत ।
बाल बोध हित कर सदा कीन्हौं रस कल्लोल ।।४।।[1]

रस :--

'रस-कल्लोल' के प्रथम चरण में करन कवि ने सर्वप्रथम 'रस-निष्पत्ति' का वर्णन किया है। उनका कथन है कि भरत-सूत्र के कथनानुसार विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के संयोग से सदैव ही रस-निष्पत्ति होती है --

भाव विभावनुभाव ये संचारी सुखदाइ ।
भरत सूत्र मत कहत हौं रस के सदा सहाइ ।।६।।[2]

करन ने भी नव-रस वर्णन करते हुये रसों की नौ संख्या बताई है, उनके क्रम में भी साम्य है --

शृंगार हास्य अरु करुन,
पुन रौद्र बीर ऐ जान ।
कहि भयान बीभत्स अरु,
अद्भुत सांत बखान ।।३।।[3]

भाव :-

इसके पश्चात् भाव का नवीन एवं मौलिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है --

रस अनुकूल विकार कौ,
भाव कहत कवि गोत ।
इक मानस सारीर इक,
है विध होत उदोत ।।८।।[4]

१- हस्त लिखित ग्रन्थ -रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १.
२- हस्त लिखित ग्रन्थ -रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १.
३- ह०ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१.
४- ह०ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१.

तत्पश्चात् 'मानसिक भाव' को दो प्रकार का माना है --

स्थाई औ संचारिका,
दुविधि मानसिक मान ।
कहि विकार शरीर सब,
सात्वक भाव बखान ।।९।।[१]

स्थायी भाव :-

करन ने 'रस-कल्लोल' में स्थायी भाव के लक्षण नहीं दिये हैं, वे नौ स्थायी भाव स्वीकार करते हैं --

रति हासी अरु सोक पुन,
क्रोध मौह भय ग्लान ।
अचरज अरु निर्वेद ए,
स्थाई भाव बखान ।।११।।[२]

करन ने 'स्थायी भाव' के लक्षण सोदाहरण समझाये हैं --

रति लक्षण --

दृष्ट मस्व हीहा जनित,
मन विकार जह होइ ।
कहु दरसन सुमिरन श्रवन,
अरन सुरत सोइ ।।१२।।[३]

यथा --

सुरत सरित तरवर विटप,
विरह कार की भीत ।
कहो सु कैसे राधे,
हो अंकुरित प्रीत ।।१३।।[४]

१- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठांक- १.
२- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठांक- १.
३- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठांक- १.
४- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठांक- २.

हास्य लक्षण :-

हास लक्षण का निरूपण करते हुये करन कहते हैं कि "विकृत वचन" रूप-रचना तथा कार्य से सहृदय के मन में लालित्य उत्पन्न होता है, वहां हास्य समझना चाहिये --

ब्याल वचन अरु वेष कृत,
मन विकार जहं होरन ।।
अपर पुर विलसत ललित ,
हास्य कहत कवि गौन ।।१४।।[१]

यथा --

उठे तुरन्त संकुचित,
चिते ओठ चुनरी वैस ।
अरी निरख नंदलाल के,
हिय मे हांसी लैस ।।१५।।[२]

शोक लक्षण :-

करन ने शोक का लक्षण इस प्रकार निरूपित किया है -- रति की अनुपस्थिति में, अपने प्रिय के वियोग में जो मनोविकार उत्पन्न होता है, वहां शोक भाव समझना चाहिये --

रत बिन इस्ट वियोग कृत,
मन विकार जिहि ठौर ।
अपर पुर विलसत जहां,
सोक कहत सिर मौर ।।१६।।[३]

यथा --

देखत वनता कंस की,
रोवत विगत उछाह ।
उपजी कृष भूपान हो,
ये करुन कही उर माह ।।१७।।[४]

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०- २.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०- २.
३- ह०प्र० रसकल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०- २., ४-ह०प्र०रस कल्लोल,कवि करन,पृष्ठां०-२.

क्रोध लक्षण :-

कहत अनज्ञा किंक बनिक,
जह प्रमोद प्रतकूल ।
उठत बान परमित लिये,
क्रोध कहत मत कूल ।।१८।।[1]

यथा --

देखत छत्रिन की छटा,
समर समथ्थ भुवाल ।
ताणिन तौखन क्रोध कि,
पशीणत लोचन लाल ।।१९।।[2]

उत्साह लक्षण:--

वाजित सुर वारन सुभट,
जनिक सन्ध्या जानि ।
कहत अपूरन संकल कवि,
सो उत्साहर गाव ।।२०।।[3]

यथा --

सेन सकल साजे लिये,
क्रोध किये कसा नाथ ।
बाउत रघुवर निरख मन,
विहस लियो धन हाथ ।।२१।।[4]

भयानक लक्षण :-

दौरण विकार कहत कत,
अमर पुर बह लोह ।
जहां अन्यथा भाव है,
कहत सकल भय सोह ।।२२।।[5]

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठ०- २.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, क विकरन , पृष्ठ०- २.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठ०- २.
४- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठ०- २.
५- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठ०- ३.

यथा --

सुन गरजत दुंदिभि,

म नद तरजत गज समदाह ।

मंद मंदि रन सुभट,

तजरिगगो मनो डराह ।।२५।।[१]

विस्मय लक्षण :-

चमितकार दरसन श्रवन,

जन मुँ अन्यथा भाव ।

अमर पूर विस्मय कहत,

कवि जन सुमत सुभाव ।।२६।।[२]

यथा --

दीपत दिपक संकुलता,

लखि विस्मित जा भूप,

मानौ बहुत सुंदर नहि,

दमयन्ती के रूप ।।२७।।[३]

निर्वेद लक्षण :-

सत संसारिक विषय ते,

उपजति परमित ज्ञान ।

मन विकार निर्वेद सो,

जान लीज्यौ तत्र ।।२८।।[४]

यथा --

निरख सैन सब संघरी,

नरपति सकल नरेस ।

उप पी ज्ञा भूषन लिये,

त्याग मुंज्य को लेख ।।२९।।[५]

१- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ३.
२- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ३.
३- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ३.
४- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ३.

कुमते माहू रसन में,

माई परमट होता ।

याही ते सब चाल को,

सुग्ग को कहत उदौत ।।३०।।[1]

विमाव :-

जिनके द्वारा विभिन्न रसों का पुष्टीकरण होता है वह "विभाव" है। विभाव दो प्रकार के होते हैं, एक "आलम्बन" विभाव दूसरा "उद्दीपन" विभाव।

मागत माखन कर सदा,

होत जुहि परपुष्ट ।

रस ताही सो कहत जे,

रस विधान संतुष्ट ।।३१।।

तिहि विभाव है भाति को,

सकुमन कहो बखान ।

आलम्बन है येक पुन,

उद्दीपन इक जान ।।३२।।[2]

शृंगार रस :-

"जहां पर रति स्थायी भाव का प्रकटीकरण होता है, वहां विभाव होता है।" भावों की सूचना देने वाला विकार "अनुभव" है, "मोह" आदि को संचारी भाव समझना चाहिये, इनसे ही "शृंगार रस" उत्पन्न होता है --

रति स्थाई प्रगट जहां,

तिय पिय मिलत विभाव ।

चंचा विलोकन आद दे,

ते सब है अनुभाव ।।३७।।

मोहादिक पै होत है,

ते संचारी जान ।

इनते होत सिंगार रस,

कविजन करत बखान ।।३८।।[3]

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ३.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ३.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ४.

'श्रृंगार-रस' को दो भागों में विभक्त किया है --

१- विप्रलम्भ श्रृंगार ,   २- संयोग श्रृंगार ।

जो संयोग पिय त्रिय,

मिलत केल करत सुमकांत ।।३९।।[1]

विप्रलम्भ श्रृंगार को कहत सो पांच प्रकार ।

विरह हीरव्या श्राप पुन:मानिक विरह विचार ।।४०।।[2]

हास्य रस :-

कहत विभा छवि रूपता,

कृम ते इनको जान ।

पुलकि कपोलन आदि दे,

ते अनुभाव बखान ।।४८।।

अब हित्थादिक होत है,

ते संचारी जान ।

जाको स्थायी हास्य है,

सोही हास्य बखान ।।४९।।[3]

'हास्य रस' को करन ने सोदाहरण समझाया है ।

करुण रस :-

बिछुरन जो पिय वस्त को,

कहत विभाव सुजान ।

अनुपात बार मीड को,

ते अनुभाव प्रमान ।।५१।।

उलफ नादिक संचारियो,

मिलै आन जहं कोइ।

जाको स्थायी सोक पुन,

अब करुना रस सोइ ।।५२।।[4]

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ४.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ४.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ५.
४- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ५.

करन आगे लिखते हैं -- प्रिय के वियोग में 'विप्रलम्भ-करुण' होता है। करन ने 'वियोग' के दो भेद माने हैं --

१- प्रिय का विदेश गमन।

२- प्रिय की मृत्यु।

विप्रलम्भ अरु करुन पुनि,
प्रिय वियोग ते होत।
द्वै वियोग करुन करौ,
है विधि को उदोत ।।५३।।
तहं वियोग है भांत कौ,
सकुबन कहौ बखान।
इक विदेस गवना,
दहे मरन ऐक पुन जान ।।५४।।
जहं आसा है मिलन,
वीरत धाई तह होय ।।
जहं आसा नहिं मिलन की,
कहत सोक सब कोय ।।५५।।[१]

रौद्र लक्षण :-

जिसका स्थायी भाव क्रोध है, शत्रु, जलन, क्रोध, द्वेष जहां विभाव है, हाथ मसलना आदि जिसके अनुभाव हैं, मोहादि इसके व्यभिचारी भाव हैं वहां पर करन के अनुसार रौद्र रस होता है।

जाको स्थाई क्रोध है,
मत्सर जहां विभाव।
हाथ मीड़बो आदि दे,
ते सब है अनुभाव ।।५७।।
मोहादिक जे होत है,
ते संचारी मान।
वहो रौद्र रस कहत है,
जान लीजिये जान ।।५८।।[२]

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठ०- ५.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठ०- ६.

वीर रस :-

स्थाई भाव उछाह जहं,
कहत विभाव विचार ।
दानोचित अनुभाव जहं,
गर्वादिक संचार ।।६१।।[1]

करन कृत 'वीर रस' के भेद चार हैं --

१- युद्ध वीर   ३- धर्म वीर
२- दया वीर   ४- दान वीर ।

भयानक रस :-

करन के अनुसार भयानक रस का लक्षण निम्नवत् है --

पन्नग बाघ विभाव जहं,
कंपादिक अनुभाव ।
मोहादिक है होत है,
तहं संचारी भाव ।।६८।।
भय थाई जामें जहां,
व्यंग कर गुणदान ।
इहि भयानक रस सरस,
कविजन कहत बखान ।।६९।।[2]

वीभत्स रस :-

कवि करन ने वीभत्स रस की अभिव्यंजना इस प्रकार की है --

अपरस वस्त्र घिन करौ,
तासों कहत विभाव ।
कहत थूंक ये आदि दे,
ये सब है अनुभाव ।।७१।।

१- ह०पृ० रस कल्लोल कवि करन, पृ०सं०- ६.
२- ह० पृ०रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-७.

मोहादिक संचारियो मिलि,
आन जह कोइ ।
छार वस्त्र आमे प्रगट,
सो बीभत्स विलोई ।।७२।।[1]

अद्भुत रस :-

माया जहां विभाव है,
रोमादिक अनुभाव ।
भ्रमादिक संचारीयो विस्मय,
थाई भाव ।।७४।।
जहं क्रम देखे बाकडी,
भावादिक समदान ।
कव राजन को मगन मन,
अद्भुत कल्प बखान ।।७५।।[2]

शान्त रस :-

करन ने "शान्त रस" को रसों में नवां स्थान दिया है --
संत संगादि विभाव जहां,
क्षमा आदि अनुभाव ।
धम्मादिक रे होत है,
तहं संचारी भाव ।।७७।।
प्रगट व्यंग निर्वेद जहं,
कही सु करन विचार ।
संत सुभाव सो सांत रस,
परम पुनीत निहार ।।७८।।[3]

करन ने प्रत्येक रस का लक्षण निरूपित कर उसका उदाहरण भी प्रस्तुत किया है ।

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ७.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ७.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ८.

रसों के रंगों का भेद एवं वर्गीकरण :-

करन ने क्रमानुसार विभिन्न रसों का वर्णन इस प्रकार निरूपित किया है —

श्व तक सेत कपोत रंग,
चित्र लाल अरु गौर ।
धूम स्याम अनुगौर पित,
क्रम से लखि सिर मौर ।।८०।।[1]

रसों के देवताओं का निरूपण :-

विस्नु रुद्र अरु पवन सिव,
यम कृतावह बान ।
महाकाल धातादि,
परब्रह्म पहचान ।।८१।।[2]

सात्विक भाव :-

कंपादिक स्वेद अँसुवा प्रलय,
विवरन अरु सुरभंग ।
पंमादिक रोमांच यह,
आठों सात्विक अंग ।।२५०।।[3]

वष्ट यथा —

कंपत सौ गात कछु छाये उर स्वेद कन ।
आँसुवा जुगल नैन मोद छबि छाये है ।
जड़ता समेत बल वचन बदलि भय होत सुरभंग तन कंठ विधुराये हैं ।
सुमन कदंब जैसे भीग तन कंटकित ज्यों रहे है तन परम सुहाये है ।
अंग छबि छाये मिलि कौन किस चाये स्याम मोद मन भाये स्याम सुन्दर—
सुहाये हैं ।।५२।।[4]

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ८.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ८.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १४.
४- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १५.

संचारी भाव :-

करन के अनुसार संचारी भाव की संख्या ३१ है। करन ने संचारियों के ३१ भावों का लक्षण भी निरूपित किया है —

१- निर्वेद	११- व्रीडा	२१- सुप्त	३१-चपलता।
२- ग्लानि	१२- जड़ता	२२- विबोध	
३- असूया	१३- हर्ष	२३- त्रास	
४- शंका	१४- गर्व	२४- अवहित्था	
५- मद	१५- विषाद	२५- उग्रता	
६- श्रम	१६- औत्सुक्य	२६- व्याधि	
७- आलस्य	१७- आवेग	२७- धैर्य	
८- चिन्ता	१८- निद्रा	२८- शान्त	
९- दीनता	१९- अपस्मार	२९- तर्क	
१०- स्मृति	२०- अमर्ष	३०- उन्माद	

करन ने प्रत्येक भेद का लक्षण देते हुये सोदाहरण प्रस्तुत किया है।

हाव लक्षण :-

अथ हाव लक्षन निरूपित दोहा---

बनिता जन शृंगार कीरत में चेष्टा जु।
भरतादिक भाषत सकल हाव जानिये तज्ञ।।[१]

करन ने हाव के १५ प्रकार माने हैं — विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, लीला, विलास, कुट्टमित, ललित, विहृत, तपन, विब्बोक, मद, विक्षेप, मौग्ध, हेला और मोट्टायित।

करन ने 'रस कल्लोल' ग्रन्थ में हाव भेदों के लक्षण सोदाहरण लिखे हैं।

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २७.

ध्वनि काव्य

'रस कल्लोल' नामक ग्रन्थ में करन ने ध्वनि को इस प्रकार प्रस्तुत किया है --

जो सुनिय सो शब्द है अर्थ हिये पहचान ।
पुन अनुसरन विभाग कर शब्द कुहत जिय जान ।।
पुन रूप मरजाद है जान लीजिये चित्त ।
आगम उक्त विभक्त स्व परमातम गुन मित्त ।।
सो पुन तीन प्रकार को बरन रूप जो आह ।
रूढ़ जौगक तीसरो जोग रूढ मन ताह ।।[१]

करन ने ध्वनि को तीनों भागों में विभक्त किया है -- १- रूढ़ लक्षण, २- जौगक, ३- जोग रूढ़ ।

करन ने उपर्युक्त भेदों के उपभेदों का वर्णन किया है -- १.जोग, २.मुख्यो-जोग, ३.जोगाभ्यास ।

अभिधा वर्गीकरण :-

करन ने 'रस कल्लोल' नामक ग्रन्थ में अभिधा के छः भेद बताये हैं -- जाति, क्रिया, गुण, वस्तु, संज्ञा तथा निदेश ।

अभिधा मूल व्यंग (अभिधा मूलक व्यंजना) :-

करन ने 'रस कल्लोल' में अभिधा मूलक व्यंजना की इस प्रकार परिभाषा दी है :--

बहुत अरथ के शब्द को जोगादिक अनुकूल ।
अरथ नियम जहं कीजिये व्यंग सो अभिधामूल ।।२०७।।[२]

अभिधामूल व्यंग का वर्गीकरण करते हुये लिखा है कि समय, देश और अर्थ के साथ संयोग, वियोग, प्रकरण, विरोध, चिन्ह तथा समूह ही अभिधा मूलक व्यंजना के भेद हैं ।

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १८.

२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १९.

लक्षण लक्षणा तथा उसका वर्गीकरण :-

करन ने 'रस-कल्लोल' नामक ग्रन्थ में लक्षण-लक्षणा की परिभाषा इस प्रकार दी है --

जहाँ पर वाक्यार्थ की सिद्धि के लिये प्रसंगानुकूल मुख्यार्थ से अर्थ की सिद्धि न हो तथा मुख्यार्थ का नितान्त त्याग कर समीप का अर्थ ग्रहण करना चाहिये । जब अर्थ समीप से ग्रहण किया जाता है वहाँ पर लक्षण-लक्षणा होती है --

अर्थ न लक्षक से बने तब समीप ते लेह ।
लियौ जो अर्थ समीप को लक्षारथ छवि देह ।।२२८।।
मुख्य अर्थ के बाद ते पुन ताही के पास ।
और अर्थ जाते बने कहत लक्षण तास ।।२२९।।[1]

करन ने लक्षणा के दो भेद बताये हैं -- १- रूढ़ि, २-प्रयोजन और तत्पश्चात् शुद्ध के छः प्रकार निर्दिष्ट किये हैं ।

लक्षणा मूलक व्यन्जना

शील सुधा सागर भरी लोचनी लिहू न और ।
मेरे चित मन सदन के सबै साज गुन गौर ।।२३४।।
ललित लता लपटी वरुन प्रफुल्लित वलित सुगन्ध ।
मन्जुल मधु कर मधुकरी गुंजत मधुर मदंध ।।२३५।।[2]

ध्वनि लक्षणा एवं उसके भेद :-

'रस-कल्लोल' में करन ने ध्वनि लक्षणा का लक्षण इस प्रकार किया है--

मूल लक्षणा है जहाँ गूढ़ व्यंग पर बान ।
अर्थ न काहू को सो पुन जानहु बान ।।२३८।।[3]

करन ने भी ध्वनि के दो प्रकार बताये हैं --

अविवक्षित है एक पुन एक विवक्षित और ।
दोउ है द्वै भाँति है जानि लीजिये सोउ ।।२३९।।[4]

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २१.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २२.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २२.
४- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २२.

करन ने अविवक्षित ध्वनि काव्य का दो अर्थों में निरूपण किया है --

अविवक्षित द्वै अर्थ इक अर्थ संक्रमित होत ।

वाच्यतिरस्कृत दूसरी कवि कुल करत उदोत ।।२४०।।[१]

कवि करन ने विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि काव्य के इन भेदों को स्वीकार किया है --

दुजो विवक्षित वाच्य के असंलक्ष्य लक्षण क्रमबिन एक ।

संलक्ष्य क्रम होइ विध शब्द अर्थ की टेक ।।२४३।।[२]

संलक्ष्यक्रम के चार भेद बताये हैं और उन चार के एक-एक भेद । इस प्रकार दोनों के क्रमश: अट्ठारह भेद बताये हैं ।

असंलक्ष्य क्रम के चार भेद ---

रस अनुभाव दुहो जहां पुनि तिनके आभास ।

असंलक्ष्य क्रम होत तहं बरनत बुद्धि विलास ।।२४६।।[३]

करन ने असंलक्ष्य क्रम व्यंजन में रसाभास और भावाभास, रस और अनुभाव को स्थान दिया है ।

करन ने अविवक्षितवाच्य एवं विवक्षितवाच्य परवाच्य ध्वनि के दो भेदों को स्वीकार किया है --

१- अर्थ संक्रमित २- वाच्यतिरस्कृत ।

करन ने विवक्षितान्य परवाच्य के अट्ठारह भेद बताये हैं ।

संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि :-

करन ने ध्वनि वर्ग के शब्द शक्ति और अर्थ शक्ति दो प्रकार स्वीकार किये हैं ।

शब्द शक्ति मूलक ध्वनि को दो भागों में विभक्त किया है --

१- अलंकार ध्वनि, २- वस्तु ध्वनि ।

अर्थ शक्ति मूलक ध्वनि के मुख्य तीन भेद किये हैं --

१- स्वत:संभवी, २- कवि प्रौढ़ी, ३- कवि निबद्ध ।

१- ह०ग्रं० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २२.
२- ह०ग्रं० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २३.
३- ह०ग्रं० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २३.

स्वत:संभवी की शक्ति मूलक संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य के चार भेद बताये हैं --

क - अलंकार से वस्तु व्यंग

ख - वस्तु से वस्तु व्यंग

ग - अलंकार से वस्तु

घ - वस्तु से अलंकार ।

।2। कविप्रौढ़ी :-

कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्धार्थ मूलक संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य के चार भेद --

क - अलंकार से अलंकार

ख - वस्तु से वस्तु

ग - अलंकार से वस्तु

घ - वस्तु से अलंकार ।

।3।कवि निबद्ध वक्ता :-

प्रौढ़ोक्ति सिद्धार्थ शक्ति मूलक- संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य के चार भेद--

क- अलंकार से अलंकार

ख- अलंकार से वस्तु

ग- वस्तु से वस्तु

घ- वस्तु से अलंकार ।

ध्वनि-भेद संख्या :-

कवि करन ने `ध्वनि काव्य` को १८ भागों में विभक्त किया है ।

कवि करन ने `ध्वनि काव्य` भेदों के क्षेत्र में कविराज विश्वनाथ का अनुसरण किया, परन्तु फिर भी इनमें कवि करन की मौलिकता दृष्टिगोचर होती है ।

गुण, रीति तथा वृत्ति विवेचन

गुण-विवेचन :-

करन ने `रस-कल्लोल` में गुण के तीन भेद स्वीकार किये है---- १- ओज, २- प्रसाद, ३- माधुर्य ।

रीति-विवेचन :-

करन ने चार प्रकार की रीतियां बताई हैं --

१-- गौड़ी

२-- लाटी

३-- पान्चाली तथा

४-- वैदर्भी ।

वृत्ति-विवेचन :-

करन कवि ने वामन आदि आचार्यों का अनुसरण करते हुये परुषा, कोमला तथा उपनागर वृत्तियों को स्वीकार किया है और काव्यशास्त्र के अनुसार क्रमशः ओज, प्रसाद, तथा माधुर्य नाम के तीनों गुणों को माना है ।

यादि परुषा कोमला उपनागर का होइ ।
उदाहरन की नैन में क्रम ते जानहु सोइ ।।२८०।।[१]

---

१ - ह० ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृष्ठ०- २६.

साहित्य चन्द्रिका (बिहारी सतसई की टीका)
हस्तलिखित प्रति का प्रथम पृष्ठ

साहित्य चन्द्रिका (बिहारी सतसई की टीका) :-

करन के `साहित्य चन्द्रिका` नामक ग्रन्थ के विषय में विभिन्न इतिहासकारों एवं विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न मत अभिव्यक्त किये हैं।

डा०ग्राहम जार्ज ग्रियर्सन ने हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास में करन की `साहित्य चन्द्रिका` के विषय में लिखा है -- "इन्होंने बिहारी (सं० १९६) की सतसई की टीका `साहित्य चन्द्रिका` नाम से पन्ना के बुन्देला राजा सभासिंह (सं० १९५) और हिरदेसाहि के आश्रय में रह कर लिखी।

पुनश्च :- इनके साहित्य चन्द्रिका की तिथि सं० १७९४ (१७३७ ई०) दी गई है जिसको शिवसिंह इनके जन्म संवत् के रूप में देते हैं।[१]

मिश्रबन्धु विनोद ने अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन में करन के विषय में लिखा है -- नाम -(६३९) करन भट्ट, पन्ना। इन्होंने करन के "साहित्य-चन्द्रिका" (सतसई की टीका) नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। परन्तु उनके पास कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर यह सिद्ध हो सके कि यह करन का ग्रन्थ है।

करन का "साहित्य-चन्द्रिका" (बिहारी सतसई की टीका) नामक ग्रन्थ मुझे वृन्दावन शोध संस्थान, बांदा में उपलब्ध हुआ, परन्तु वह अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। `साहित्य-चन्द्रिका` के अन्तिम पृष्ठ का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ करन रचित ग्रन्थ है, उसकी प्रामाणिकता में निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं --

"इति श्री वंशीधरणात्मज कवि करन विरचिते बिहारी कृत शब्दशक्तिका भिनवि सधुनि लक्षणा नाईका-नायक विधि गुनालंकार किरणम् वाख्या ----- विधज्ञ कुमुद प्रकाशिका संहित चंद्रिका संपूर्णम्।[२]

१- डा०ग्रियर्सन, पृ०सं०- १७७, २०३.

२- बिहारी सतसई की टीका, हस्त ग्रन्थ, प्रति वृन्दावन साहित्य शोध संस्थान, बांदा, -------- आचार्य करन कवि, पृ०सं०- १६३.

करन ने अपने 'साहित्य-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ में दीपक, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, छेकानुप्रास, श्लेषालंकार, पूर्व रूप, समाधि, विशेषोक्ति, यमक, तद्गुणालंकार, अत्युक्त, सन्देह, पर्यायोक्ति, ललित, अप्रस्तुति -प्रशंसा, दृष्टांत, असंगति, वक्रोक्ति, प्रत्यायोक्ति, उपमा, विरोधाभास, विषाद, विषम, विभावना, आदि अलंकारों का नवीन ढंग से लक्षण निरूपण किया है।

मुग्धा नायिका, आसक्त नायिका, प्रौढ़ा धीरा नायिका, नीच नायिका, मानिनी नायिका, अभिसारिका गौनोसारोपाल, स्वाधीन पतिका नायिका, रूप-गर्विता आदि नायक-नायिका भेदों का निरूपण कर अपने मौलिक एवं पाण्डित्यपूर्ण विचारों का प्रदर्शन किया है।

स्फुट रचनाएं :-

करन की कतिपय स्फुट रचनाएं दृष्टिगोचर हुई हैं। कविमणि पं०कृष्णदास ने 'बुन्देलखण्ड के कवि' नामक एक पुस्तक में करन की एक रचना का उल्लेख किया है। इसमें छत्रसाल के समय में पन्ना राज्य का विस्तार से वर्णन है।

इत यमुना उत नर्मदा इत चम्बल उत टौंस।
छत्रसाल सों करन की रही न काहू हौंस।।
बदिान से जोर के मरोर बादशाहन को।
तोर तुरकान कीन्हीं उकद बखान की।।
घेर कर आलिम बखान के नरेशन को।
शेर पर साहिबी सम्हारी कुल भान की।।
छत्रा नरनाह त्यों सपूत हृदय शाह बीर।
जात बढ़ाई कवि 'करन' बखान की।।
नर्मदा कालिंदी टौंस चम्बल महावर तें।
विरचि बुन्देला हद बांधी हिन्दुवान की।।[1]

-----।करन कवि विरचित।

करन के ग्रन्थों का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने प्राय:काव्यशास्त्र के समस्त अवयवों का सांगोपांग विवेचन किया है। उन्होंने पूर्ववर्ती

१- पं०कृष्णादास, बुन्देलखण्ड के कवि, पृष्ठ०- ७.

आचार्यों के मत का अन्धानुगत अनुसरण न कर अपने काव्य-शास्त्रीय नवीन एवं मौलिक विचारों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है जो उनके पाण्डित्य प्रदर्शन का जीता-जागता उदाहरण है। कवि करन को केवल कवि करन न कह कर "आचार्य करन" की उपाधि से विभूषित करना चाहिये।

-----:o:-----

रचनाओं में आचार्यत्व की झलक :-

करन के आचार्यत्व की प्रतिष्ठापक मुख्यतया दो ग्रन्थ 'रस-कल्लोल' तथा 'बिहारी सतसई की टीका' (साहित्य-चन्द्रिका) हैं।

रस-कल्लोल :-

'रस-कल्लोल' के प्रथम पृष्ठ में गणेश, सरस्वती तथा राधाकृष्ण -वन्दना देने के पश्चात् नव रसों के वर्णन के साथ मुख्य विषय का आरम्भ किया गया है। करन कवि ने सर्वप्रथम रस-निष्पत्ति का वर्णन करते हुये भरत-सूत्र के कथनानुसार विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से सबैव ही रस-निष्पत्ति को स्वीकार किया है---

भाव विभावनुभाव ये संचारी सुभदाइ।
भरत सूत्र मत कहत हौं रस के सदा सहाइ ।।८।।[१.]

भरत मुनि के परवर्ती मम्मटाचार्य आदि प्राचीन सभी आचार्य इससे सहमत हैं।

नव-रस-वर्णन :-

नव रसों का वर्णन करते हुये करन ने क्रमशः शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त रसों का उल्लेख किया है ---

शृंगार हास्य अरु करुन पुन रौद्र वीर है जान।
कहि भयान वीभत्स अरु अद्भुत सांत बखान ।।१०।।[२.]

भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र' में भी नव रसों का उल्लेख इसी क्रम से किया गया है---

शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः।
वीभत्साद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः ।।१८२।।[३.]

वस्तुतः करन ने भरत एवं मम्मटाचार्य द्वारा निर्देशित नव रसों को उन्हीं के क्रमानुसार स्वीकार किया है, जो उनके पाण्डित्य का प्रतीक है।

रस के अवयव-भावादि :-

इसके बाद कवि करन ने भाव, स्थायी भाव, विभाव का वर्णन किया है। करन के अनुसार जो रस के अनुकूल है, वही भाव है ---

---

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठ०-१.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठ०-१.
३- नाट्य-शास्त्र, भरत मुनि, पृष्ठ०- १३२.

रस अनुकूल विकार जो भाव कहत कवि गोत ।
इक मानस सारीर एक है विध होत उदोत ।।८।।[1]

करन का यह लक्षण कि साहित्याचार्य के लक्षण से साम्य नहीं रखता है । करन ने भाव के दो प्रकार तथा उन दो के भी दो-दो प्रकार माने हैं --
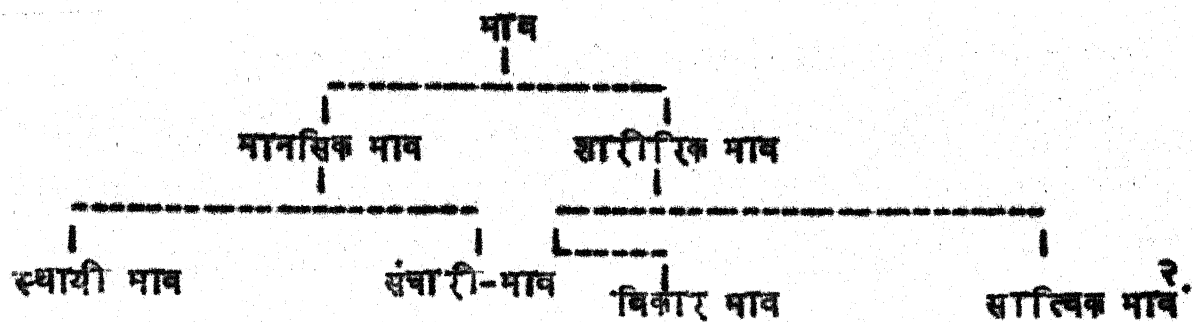
भरतादि साहित्याचार्यों ने सात्विक को "अनुभाव" के ही अन्तर्गत माना है । कवि करन ने भरत मुनि, भोजदेव सादृश्य आठ स्थायी भाव बताये हैं --

रति हासी अरु सोक पुन क्रोध मोह भय ग्लान ।
अचरज अरु निर्वेद ए स्थाई भाव बखान ।।१३।।[3]

करन ने केवल स्थायी भावों के नाम ही नहीं गिनाए अपितु उन भेदों के लक्षण भी निरूपित किये हैं । करन ने "निर्वेद" को भी स्वीकार किया है, जबकि अन्य आचार्यों ने इसे अपने काव्य-सिद्धान्त में स्थान नहीं दिया । अत: नवम् स्थायी-भाव का नाम निर्देश तथा उनके लक्षण करन के अपने हैं । कवि करन ने उन भेदों के उदाहरण भी अपने ही दिये हैं

कवि करन के अनुसार जिनके द्वारा विभिन्न रसों का पुष्टीकरण होता है, वह "विभाव" है । विभाव दो प्रकार के माने हैं ---

क - आलम्बन विभाव,

ख - उद्दीपन विभाव --

आलम्बन मिल होत है नवल बधू अरु नाह ।
उद्दीपन उपवन सुक सनि चंदन कनवाह ।।२३।।
होत नाहि आलंब रस ते आलम्बन जान ।
पै उद्दीपन करत रस ते उद्दीपन मान ।।२४।।[4]

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १.
२- स्थाई औ संचारिया दुविधि मानसिक मान ।
कहि विकार शरीर सब सात्विक भाव बखान ।।६।।
--ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १.
४- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ५.

जिसके द्वारा रस उद्दीप्त हो, वह उद्दीपन विभाव, जिसका सहारा लिया जाता है वह आलम्बन विभाव है। भरत मुनि के विभाव-आलम्बन तथा उद्दीपन के लक्षणों का भी यही भाव है --

आलम्बनो उद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौस्मृतौ ।।२६।।
उद्दीपन विभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये ।।१३१।। [१.]

करन ने आलम्बनों के अन्तर्गत नवल वधू का ही उल्लेख किया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। उद्दीपन के अन्तर्गत कवि करन ने उपवन, सुक, ससि, चन्दन तथा जल का उल्लेख किया है। वस्तुत: करन ने उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नवीन वस्तुओं का उद्घाटन कर अपनी मौलिकता का सुन्दर उद्घाटन कर अपने- आचार्यत्व को दर्शाया है।

श्रृंगार रस :-

करन का `श्रृंगार रस` लक्षण संस्कृत आचार्यों द्वारा दिये लक्षण से साम्य नहीं रखता। श्रृंगार रस के भेदों- संयोग तथा वियोग का लक्षण सहित कवि करन ने वर्णन किया है --

विप्रलम्भ संजोग पुन सौ सिंगार है भांत। [२.]

तत्पश्चात् कवि करन ने `विप्रलम्भ श्रृंगार` के पांच प्रकार — १- विरह, २- ईर्ष्या, ३- श्राप, ४- मानिक, ५- विरह विचार , किये हैं। कवि करन ने समस्त भेदों को सोदाहरण प्रस्तुत किया है।

हास्य रस :-

करन का `हास्य रस` लक्षण विश्वनाथ के `हास्य रस` लक्षण से कुछ साम्य रखता है, करन ने विश्वनाथ के सम्पूर्ण लक्षण को न लेकर एक-एक बात को ले अपने लक्षण का स्पष्टीकरण किया है --

कहत बिना छवि रूपता कृम ते हनको जान।
पुलकि कपोलन आदि दे ते अनुभाव बखान ।।४८।।

१- नाट्यशास्त्र, पृ०सं०- १३१.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-४.

अब हिल्लादिक होत है ते संचारी बान ।
जाको स्थाई हास्य है सो ही हास्य बखान ।।४६।।[1]

करुण रस :-

कवि करन ने `करुण रस` का दिग्दर्शन विभिन्न आचार्यों से भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है । विश्वनाथ के `इष्टनाश` तथा भरत के `इष्टवध` को इन्होंने स्वीकार किया है --

बिछुरन जो प्रिय वस्तु कौ कहत विभाव सुजान ।
अश्रुपात बारं मौड वो ते अनुभाव प्रमान ।।५१।।
उत्कनादिक संचारियो मिलि आन भई कोइ ।
जाको स्थाई सोक पुन कह करुना रस सोइ ।।५२।।[2]

रौद्र रस :-

जिसका स्थायी भाव क्रोध है, डाह, जलन, क्रोध, द्वेष जहां विभाव हो, हाथ मसलना आदि जिसके अनुभाव है, मोहादि इसके व्यभिचारी भाव हैं, वहां पर कवि करन के अनुसार `रौद्र रस` होता है --

जाको स्थाई क्रोध है मत्सर जहां विभाव ।
हाथ मीड्बो आदि दे ते सब है अनुभाव ।।५७।।
मोहादिक जे होत है ते संचारी मान ।
तहाँ रौद्र रस कहत है जान लीजियै जान ।।५८।।[3]

वीर रस :-

कवि करन ने `वीर रस` का लक्षण देते हुये उसके चार भेद किये हैं--

१- युद्ध वीर   ३- धर्म वीर तथा
२- दया वीर   ४- दान वीर ।

---

१ - ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-५.
२ - ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-५.
३ - ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-६.

समता की सुघ है जहां वीर जानियौ सोह ।
जहं मलि सुघ सग असम कहत रौद्र सब कोह ।।६३।। [1]

भयानक रस :-

कवि करन के अनुसार भयानक रस का लक्षण निम्नवत् है --

पन्नग बाघ विभाव जहं कंपादिक अनुभाव ।
मोहादिक है होत है वहं संचारी भाव ।।६८।।
भय थाई जामें जहां व्यंग कर सुगदान ।
इहै भयानक रस सरस कविजन कहत वखान ।।६६।। [2]

वीभत्स रस :-

कवि करन ने 'वीभत्स रस' का लक्षण विश्वनाथ के लक्षण से साम्य रखता है, किन्तु यह लक्षण करन की अपेक्षा अधिक पूर्ण है --

कदरज वस्त्र विगे कमौ तासौ कहत विभाव ।
कहत थुक वे आदि दे ते सब है अनुभाव ।।७१।।
मोहादिक संचारियौ मिलि आन जहं कोइ ।।
छार वस्त जामे प्रगट सौ वीभत्स विलोई ।।७२।। [3]

अद्भुत रस :-

यद्यपि कवि करन ने 'अद्भुत रस' लक्षण आचार्य विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण से उद्धृत किया है, किन्तु विश्वनाथ का लक्षण अपने में पूर्णता लिये हुये है । करन ने 'आदि-आदि' लिखकर सभी का पृथक-पृथक नामोल्लेख नहीं किया है--

माया जहां विभाव है रोमादिक अनुभाव ।
भ्रमादिक संचारियौ विस्मय थाई भाव ।।७४।।
जहं क्रम देवै आवही मायादिक समदान ।
कन राजन कौ मानन मन अद्भुत कल्प बखान ।।७५।। [4]

---

१ - ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ६.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ७.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ७.
४- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ७.

शान्त रस :-

करन ने 'शान्त रस' को रसों में नवां स्थान दिया है।[1] करन ने १०वां रस 'माया' को स्वीकार किया है। इसके बाद 'वात्सल्य' और 'भक्ति' रस को भी माना है। भरत मुनि ने भी १०वां रस 'वात्सल्य' माना है यह वात्सल्य कवि-करन ने भरतमुनि से ही लिया है।

रसों के रंगों का भेद एवं वर्गीकरण :-

कवि करन ने क्रमानुसार विभिन्न रसों का वर्ण भरतमुनि के अनुसार बताया है --

> अस तक सेत कपोत रंग चित्र लाल अन गौर।
> धूम स्याम अनुगौर सित क्रम ते छबि सिर मौर ।।८१।।[2]

रसों के देवताओं का निरूपण :-

कवि करन के रसों के देवताओं का निरूपण विश्वनाथ से कुछ हद तक साम्य रखता है --

> विस्नु कवल अरु पवन सिव गुरु कृतावह जान।
> महाकाल वातादि परब्रह्म पहचान ।।८२।।[3]

सात्विक भाव :-

कवि करन ने सात्विक भावों का लक्षण न देकर केवल नामोल्लेख ही किया है। कवि करन ने आठ सात्विक भाव माने हैं -- कंप, स्वेद, अश्रु, प्रलय, वैवर्ण्य, स्वर-भंग, पंमादिक (पुलाप), रोमांच --

> कंप, स्वेद, अंसुवा, प्रलय, विवरन अरु सुरभंग।
> प्रमादिक रोमांच यह आठौ सात्विक अंग ।।१५०।।[4]

भरतमुनि, भोजदेव, विश्वनाथ तथा भूपाल सभी आचार्यों ने इन्हीं आठ सात्विक भावों का वर्णन किया है।

---

१ - ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ७.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ८.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ८.
४- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ८.

संचारी भाव :-

करन ने ३१ संचारी भावों का वर्णन किया है -- निर्वेद, ग्लान, असूया, शंका, मद, श्रम, आलस्य, चिन्ता, दीनता, स्मृति, व्रीडा, जड़ता, हर्ष, गर्व, विषाद, औत्सुक्य आवेग, निद्रा, अपस्मार, अमर्ष, सुप्त, विबोध, त्रास, अवहित्था, उग्रता, व्याधि, धैर्य, शान्त, तर्क, उन्माद, चपलता को गिना है तथा सभी को सोदाहरण प्रस्तुत किया है ।

हाव लक्षण :-

करन ने `हाव` लक्षण निरूपित कर `हाव` के १५ भेदों को लक्षण सहित अभिव्यक्त किया है --

बनिता बन श्रृंगार कीरत में चेष्टा जन ।
भरतादिक भाषत सकल हाव जानियै तत्र ।।[१]

करन का `हाव` भरतमुनि के हाव लक्षण का प्रतिरूप है जैसा कि उन्होंने स्वयं ऊपर कहा है । कवि करन ने विच्छित्त, विभ्रम, किलकिंचित, लीला, विलास, कुट्टमित, ललित, विहृत, तपन, विब्बोक, मद, विक्षेप, मोद, हेला, मोट्टाइत `हाव` के १५ भेद बताये हैं तथा प्रत्येक भेदों को लक्षण सहित प्रस्तुत किया है ।

काव्य लक्षण :-

करन कवि ने सरस्वती भरण कर भोजराज के अनुसार ही काव्य-लक्षण दिया है -- काव्य वह है जो दोष रहित, समस्त लक्षणों से युक्त, रस समन्वित, अलंकार से अलंकृत, गुन तथा वृत्ति से युक्त, रीति से युक्त तथा वाक् चातुर्य हो --

दोष रहित लच्छन सहित अलंकार गुन वृत्त ।
रीति जुक्त मुद्रा सहित रस जुत वाक् प्रवृत्त ।।१८६।।[२]

ध्वनि विवेचन :-

`ध्वनि` का लक्षण निरूपण करते हुये कवि करन ने लिखा है -- जो सुनायी देता है, वह शब्द है और उसके अर्थ को हृदय से जाना जाता है --

---

१ - ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१५.
२ - ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१८.

जो सुनिय सो शब्द है अर्थ हिये पहचान ।[1]

ध्वनि के - रूढ़, जौगक तथा जोग रूढ़ तीन भेद बताये हैं --

रूढ़र जौगक तीसरो जोग रूढ मन ताह ।।[2]

करन का ध्वनि वर्गीकरण भिन्नता लिये हुये है । करन ने रूढ़ लक्षण का जो उदाहरण दिया है उसकी अन्तिम पंक्ति में स्वयं को तथा कालिदास को एक ही बताया है जो इस बात का प्रमाण है कि वास्तव में करन स्वयं एक आचार्य थे, उनमें आचार्य के गुण कूट-कूट कर भरे थे --

देखो जात निहार पी करके बुध विवेक ।

धरा धीस जानो करन कालिदास कवि ऐक ।।१९३।।[3]

जहां वाक्य के पांच अंगों में से एक उपनयन, प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन, निगमन, सपेक्षा हो और एक अर्थ का बोध प्रदान करते हों, कवि करन उसे जौगिक कहते हैं --

अवयव सक सपेक्षा जहं एक अर्थ को बोध ।

जौगिक तासो कहत है जिनके करन प्रबोध ।।१९४।।[4]

कवि करन ने 'वृत्ति' के वाचक, लक्षक तथा अर्थ तीन भेद किये हैं । भरतमुनि ने कैशिकी, सात्वती, आरभटी तथा भारतीवृत्ति का उल्लेख किया है --

श्रृंगारे चैव हास्ये च वृत्तिः स्यात कैशिकी मता ।

सात्वती नाम विज्ञेया रौद्रवीराद्भुताश्रया ।

भयानके च बीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत् ।

भारती चापि विज्ञेया करुण्ण अद्भुतसंश्रया ।।[5]

कवि करन ने 'अभिधा' के छःभेद बताये हैं -- जात, क्रिया, गुण, वस्तु, संज्ञा तथा निदेश --

जात क्रिया गुन वस्तु जुत संज्ञा अरून निदेश ।

कवि कुल छत्र भाखत सकल षट्विधि अभिधा वेश ।।२०५।।[6]

१- र०कृ०रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१८.
२- र०कृ०रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१८.
३- र०कृ०रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१९.
४- भरतमुनि, नाट्यशास्त्र ।
५- र०कृ०रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१९.
६- र०कृ०रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१९.

इससे ज्ञात होता है कि कवि करन व्याकरण वेत्ता थे, जिन्होंने `अभिधा` के मौलिक भेदों का निरूपण कर अपने पाण्डित्य एवं आचार्यत्व का प्रदर्शन किया है। अभिधा मूलक व्यंग को समय, देश आदि अर्थ के साथ संयोग, वियोग, प्रकरण विरोध, चिन्ह तथा समूह में बांटा है --

समय देश अरु अर्थ संग कहं संजोग वियोग।
प्रकरनि अरु इक रोध ते चिन्ह सों अर्थ प्रयोग ।।२०८।।[1]

कवि करन ने समस्त भेदों के लक्षण समझाये हैं। जहां पर वाक्यार्थ की सिद्धि के लिये प्रसंगानुकूल मुख्यार्थ से अर्थ की सिद्धि न हो तथा मुख्यार्थ का नितान्त त्याग कर समीप का अर्थ ग्रहण करना चाहिये, जब अर्थ समीप से ग्रहण किया जाता है, वहां करन मतानुसार लक्षण -लक्षणा होती है --

अर्थ न लगाक से बने जब समीप ते लेइ।
लियो जो अर्थ समीप को लक्षारथ कवि ब देइ ।।२१८।।[2]

कवि करन ने पूर्ववर्ती आचार्यों सादृश्य ध्वनि के १-अविवक्षित, २-विवक्षित दो भेद किये हैं --

अविवक्षित है एक पुन विवक्षित दोइ।
दोउ द्वै द्वै भांति है जानि लीजिये सोइ ।।२३६।।[3]
छोड़ कियो एक बार ही सुनत रहे गुन मोर।
रहत कहा चितवन किय मधुप मालती मोर ।।२४२।।[4]

कवि करन के मतानुसार यह अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि काव्य है, क्योंकि यहां मुख्यार्थ अपने स्वरूप का सर्वथा परित्याग करके, अपने भिन्न किसी अर्थ स्वरूप में परिणत हो गया है।

साहित्य दर्पणकार ने असंलक्ष्यक्रम व्यंजन के अन्तर्गत रस, भाव और आभास आदि ध्वनि को स्वीकार किया है, जबकि करन ने रसाभास और भावाभास, रस और अनुभाव को स्थान किया है। करन ने अर्थ शक्ति-मूलक ध्वनि के मुख्य तीन भेद किये हैं-- स्वत:संभवी, कवि-प्रौढ़ी तथा कवि निबद्ध। करन ने तीनों भेदों के चार-चार समान भेद किये हैं --

---

१- ह०प्र०रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०-१६. ३-ह०प्र०रसकल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०-२२.
२- ह०प्र०रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०-२१. ४-ह०प्र०रसकल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०-२२.

कहत अलंकृत तें सुधन अलंकार जहं होइ ।
वस्तु वस्तु तें धुनि तहां अधिक चमत्कृत होइ ।।२५५।।
अलंकार तें वस्तु धुनि वस्तु अलंकृत जान ।
अर्थ धुनन के चार इह कवि जन कहत बखान ।।२५६।।[1]

आनन्दवर्धन के अनुसार ध्वनि के भेदों की संख्या १४ है ।[2] विश्वनाथ ने १८ प्रकार के ध्वनि काव्य निर्दिष्ट किये हैं ।[3] कवि करन ने भी "ध्वनि काव्य" को १८ भागों में विभक्त किया है --

१- अविवक्षितवाच्य ध्वनि काव्य के
(अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि, काव्य और अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि काव्य--रूप) भेद = २

२- विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि काव्य का
"असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि" काव्य रूप भेद = १
और (विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि काव्य के)

३-"संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि" काव्य रूप भेद में --
शब्द शक्त्युद्भव ध्वनि काव्य के भेद = २
अर्थ शक्त्युद्भव ध्वनि काव्य के भेद = १२] = १५
और शब्दार्थोभय शक्त्युद्भव ध्वनि काव्य के भेद = १

करन कृत ध्वनि काव्य- भेद = १८,

अत:कवि करन ने पग-पग पर ध्वनि काव्य एवं उसके भेदों का मौलिक विवेचन प्रस्तुत कर अपने पाण्डित्य को दर्शाया है, अत:उन्हें आचार्य की कोटि में रखा जा सकता है ।

गुण,रीति तथा वृत्ति :-

करन ने मम्मटाचार्य की भांति गुण के तीन भेदों को स्वीकार किया है -- ओज, प्रसाद तथा माधुर्य । ---

ओजि माधुर्य प्रसाद गुन समता अरु सुकुमार ।।२७५।।[4]

१- ह०ग्र० रसकल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २१.
२- ध्वन्यालोक, ३।४४.
३-तदष्टादशधा ध्वनि: ।।६।। सा०द०,आ०विश्वनाथ,चतुर्थ परिच्छेद, पृष्ठ संख्या- २६६.
४-ह०ग्र०रसकल्लोल,कवि करन,पृ०सं०-२६.

कवि करन ने तीनों भेदों को सोदाहरण प्रस्तुत कर अपने व्याकरण वेत्ता होने का परिचय दिया है। करन ने रुद्रट तथा साहित्यदर्पणकार की भांति 'रीति' के चार भेद किये हैं, केवल उनके क्रम में भिन्नता है -- गौड़ी, लाटी, पंचाली तथा वैदर्भी --

गौड़ी लाटी होता अरु पंचाली पुणवाह।
वैदर्भी है जानती चारों रीत समाह ॥२८१॥[1]

कविकरन ने वामन आदि आचार्यों का अनुसरण करते हुये परुषा, कोमला तथा उपनागर तीन वृत्तियों को स्वीकार किया है --

याहि परुषा कोमला उपनागर का होइ ॥२८०॥[2]

बिहारी सतसई की टीका-(साहित्य-चन्द्रिका) :-

अलंकार विवेचन :-

कवि करन ने 'बिहारी सतसई की टीका' (साहित्य-चन्द्रिका) में रस के सर्वोपरि महत्व को स्वीकार किया है। करन ने अलंकारों के शब्दालंकार और अर्थालंकार इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। कवि करन ने अलंकार के विभिन्न भेद-- दीपक, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, छेकानुप्रास, श्लेष, समाधि, विशेषोक्ति, तद्गुन, अत्युक्त, सन्देह, रूपक, पर्यायोक्ति, अप्रस्तुत , प्रशंसा, दृष्टांत, वस्तूत्प्रेक्षा, पूर्वक्रम, विभावना, असंगति, वक्रोक्ति,पर्यायोक्ति, उपमा, विरोधाभास, विषाद, विषम तथा प्रदीप आदि को लक्षण सहित अभिव्यक्त किया है। कवि करन के कुछ अलंकारों का आधार रुय्यक का अलंकारसूत्र नामक ग्रन्थ और कुछ दण्डी का मत प्रतीत होता है। कतिपय अलंकार लक्षण एवं नाम मौलिक हैं।

विभावना अलंकार :-

करन की विभावना का लक्षण रुय्यक केविभावनाके सामान्य लक्षण से साम्य रखता है। करन के अनुसार विभावना वहां होती है जहां बिना कारण के कार्य होता है --

प्रतिबंधक के होत ही कारज पूरन होय।
ताहि विभावना कहत है करन सुकवि सबकोइ ॥[3]

१- द०,प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२६.
२- द०,प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२६.
३-द०,प्र० बिहारी सतसई की टीका - (साहित्य-चन्द्रिका) - कवि करन,पृ०-८.

रुय्यक ने भी 'विभावना' का यही लक्षण बतलाया है --

कारणाभावे कार्यस्योत्पत्तिर्विभावना ।[1]

विरोधाभास :-

करन के 'विरोधाभास' का लक्षण भी 'रुय्यक' के विरोध का लक्षण है । रुय्यक के अनुसार जहां विरोध का आभास हो वहां 'विरोधाभास' होता है --

विरुद्धाभासत्वं विरोध: ।[2]

कवि करन के 'विरोधाभास' का भी यही लक्षण --

बरन लखै विरोध सौ अर्थ जहां अवरोध ।

ताहि विरोधाभास जिकि करन प्रबोध ।।[3]

लेशालंकार :-

दण्डी के अनुसार लेशालंकार वहां होता है जहां किसी प्रकट बात को छिपाया जाता है --

लेशो लेशेन निर्भिन्नवस्तु रूपनिगूहनम् ।[4]

परन्तु करन का लक्षण भिन्नता लिये हुये है --

गुन मे दूषण न होत जह दूषन मे गुन जानि ।

लेस करन तासौं कहत कवि जन विवुध बखान ।।[5]

व्यतिरेक अलंकार :-

कवि करन के 'व्यतिरेक' का सामान्य लक्षण दण्डी के अनुकूल है । दण्डी के अनुसार व्यतिरेक अलंकार वहां होता है, जहां दो सदृश्य वस्तुओं में कुछ भेद दिखाया जाता है --

---

१- अलंकार सूत्र, रुय्यक, पृ०सं०- १३८.
२- अलंकार सूत्र, रुय्यक, पृ०सं०- १३४.
३- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका), कवि करन, पृ०सं०- ८.
४- काव्यादर्श, पृ०सं०- २५१.
५- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका), कवि करन, पृ०सं०- ३.

शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयोः ।
तत्र यद्भेदकथनं व्यतिरेकः स कथ्यते ।। १८०।।[1]

यही भाव कवि करन के लक्षण का भी है --

उपमा तौ उपमेय में बहु कवि सैन्जुहोइ ।
वितरेक करन तासौं कहत कवि को विलक्षण कोइ ।।[2]

विशेषोक्ति अलंकार :-

कवि करन के विशेषोक्ति अलंकार का दण्डी, भामह, उद्भट, वामन आदि आचार्यों से केवल नाम ही मिलता है । दण्डी आदि आचार्यों द्वारा दिया हुआ लक्षण करन से भिन्न है --

विद्यमान कारन जहां कारज होत न सिद्धि ।
ताहि कहत विशेषोक्ति कहि बरनत करन प्रसिद्ध ।।[3]

दण्डी, भामह ने `वक्रोक्ति' के विषय में केवल इतना लिखा है कि यह सब अलंकारों का मूलाधार है ।[4]

वक्रोक्ति अलंकार :-

वामन तथा करन के वक्रोक्ति में केवल नाममात्र का साम्य है । रुद्रट ने भी वक्रोक्ति अलंकार माना है, और उसके दो भेद किये हैं ।[5] करन ने भी `वक्रोक्ति' के दो प्रकार बताये हैं --

सुरस्लेष अरु काकु करि बरन न आयत होइ ।
वक्रोक्ति तासौं कहत करन सुकवि सब कोइ ।।[6]

पर्यायोक्ति अलंकार :-

कवि करन का पर्यायोक्ति अलंकार दण्डी, भामह, उद्भट, मम्मट, रुय्यक तथा विश्वनाथ आदि संस्कृत आचार्यों से साम्य रखता है --

---

१ - काव्यादर्श, पृ०सं०- १६७.
२ - ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-२, ३.
३- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०- ८.
४ - काव्यादर्श, परि० २, श्लोक ३६३ तथा काव्यालंकार-श्लोक ८५, पृ०सं०-२७.
६ - ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०- ७.
५ - काव्यालंकार, पृ० १५-१६.

मिसकर कारज साधिये जो होय सुहीत ।
पर्यायोक्ति तासों कहत करन सुमति अवदात ।।[1]

दीपक अलंकार :-

कवि करन के "दीपक अलंकार" का लक्षण मम्मटाचार्य से साम्य रखता है --

मम्मट दीपक एक क्रिया जहद्रव्य बहु द्रव्य एक क्रिया जाल ।।
दीपक तासों करन है पंडित बुद्धि विसाल ।।[2]

उपमा अलंकार :-

दण्डी तथा करन का उपमा अलंकार साम्य रखता है । जहां वस्तुओं में किसी प्रकार की समानता दिखाई जाती है, वहां दण्डी उपमा मानते हैं --

यथाकथञ्चित सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते ।
उपमा नाम सा तस्या: प्रपञ्चो यं प्रदर्श्यते ।[3]

करन के उदाहरण का भी यही भाव है --

तीपर वारी उर बसी सुन राधिके सुजान ।
ता मोहन के उरसी ही उर बसी सुमान ।[4]

यमक अलंकार :-

यमक वर्णन में करन ने दण्डी को ही अपना आधार बनाया है --

मद फिरै जहं अौ कद कुटी कनक सौ जानि ।[5]

उत्प्रेक्षा अलंकार :-

कवि करन के विचार से "उत्प्रेक्षा" अलंकार वहां होता है --

इन कहा विवेक मे चिर वधि व्याकुल होइ ।
सुमिर सुमिर गुन कहत गुन कथन कहा वै सोइ ।।[6]

१- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-५.
२- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-२.
३- काव्यादर्श , परि० २, श्लोक-१४.
४- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-७.
५- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-४.
६- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-२.

दण्डी, भोज आदि के लक्षण का भी भाव खींचतान से यही निकल सकता है।

रूपक अलंकार :-

दण्डी ने रूपक अलंकार के बीस भेद बतलाए हैं।[1] यद्यपि यह कहा है कि इसके अनेक भेद होते हैं। कवि करन ने 'तादृप्य रूपक' भेद माना है --

विषई जहां अभेद है विषय रंजितु होव।
सो तद्रूप अभेद मिलि रूपक है विधि सोह ।।[2]

समाधि अलंकार :-

करन ने 'समाधि अलंकार' को एक अति सुन्दर उदाहरण द्वारा समझाया है --

यह रात्रि संबंधी तम के भेरं भौरन की अधिकारी।
सो कारज सुगम भयो ते समाधि ।।[3]

पूर्वरूप अलंकार :-

कवि करन ने पूर्वरूप अलंकार का लक्षण इस प्रकार बताया है --

पूर्वावस्था न प्रत्य जह वस्तु विनाशु होइ।
पूर्वरूप पहु जीक इस करन सु कवि सब कोइ ।।[4]

तद्गुनालंकार :-

कवि करन ने 'तद्गुनालंकार' का लक्षण इस प्रकार किया है --

तद्गुनगुन तजिताय वो संगति कोगुन लेह ।।[5]

१- काव्यादर्श, परि० २, श्लोक ६६-६६.
२- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-१.
३- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-३.
४- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-२.
५- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-५.

अत्युक्तालंकार :-

कवि करन ने 'अत्युक्त अलंकार' का लक्षण निम्नवत् प्रस्तुत किया है --

मेद रहित जौ बरनिये सौ मेदक अत्युक्त ।।[1]

संदेहालंकार :-

कवि करन ने 'संदेहालंकार' का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है --

एक वस्तु निरधार बिन संदिग्ध जिय ।

कवि की आसक्त ईश्वर बिनै तावै संदेहालंकार है ।[2]

ललित अलंकार :-

कवि करन ने 'ललित अलंकार' की उद्भावना निम्नवत् की है --

प्रस्तुत मै जबन्यीं वाक्य वस्तु अर्थ ।।

ताहि के प्रतिबिम्ब कौ बरनन ललित सबन्यं ।।[3]

अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार :-

अप्रस्तुत प्रशंसा का लक्षण निरूपित करते हुये कवि करन कहते हैं --

अप्रस्तुतबरननविशेष अप्रस्तुकी वानं ।।

अप्रस्तुत परसं सदोष बरनवर करन सुजान सौ मौन है ।।[4]

दृष्टांतालंकार :-

कवि करन का दृष्टांतालंकार पूर्ववर्ती आचार्यों से साम्य रखता है -- जहां एक वस्तु में दूसरी वस्तु का बिम्ब-प्रतिबिम्ब चित्र हो वहां दृष्टांत समझना चाहिये--

होत बिंब प्रतिबिंब मै दृष्टांतालंकार ।।[5]

वस्तुत्प्रेक्षा :-

कवि करन ने 'वस्तुत्प्रेक्षा' को स्वीकार किया है ।

१- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-३.
२- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-३.
३- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-४.
४- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-४.
५- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-५.

असंगति :-

कवि करन ने असंगति का लक्षण निम्नवत् बतलाया है --

और ठौर मे कीजिये और ठौर फल काम ।
ताहि असंगति कहति है करन सुकवि गुन ग्राम ।।[1]

प्रजायोक्ति अलंकार :-

कवि करन ने `प्रजायोक्ति` अलंकार का अत्यन्त विलक्षण लक्षण प्रस्तुत किया है जो अन्य आचार्यों ने नहीं किया --

मिसि कवि कारज साधिये जो है चित हि सुहात ।
प्रजायोक्ति तासौं कहत करन सुमति अवदात ।।[2]

विषाद अलंकार :-

सो विषाद चित चाहते उलटो कछु है जान ।[3] इस प्रकार कवि करन ने `विषाद` अलंकार का लक्षण दिया है ।

विषम अलंकार :-

कवि करन के अनुसार जहां अच्छाई के लिये कोई कार्य किया जाय, लेकिन बुरे फल की प्राप्ति हो, वहां विषम अलंकार होता है --

नीके को कीजे जतन होत बुरौ फल आइ ।
विषम अलंकृत कहत है करन कवि समुदाइ ।।[4]

अत:कवि करन ने अलंकार-विवेचन के क्षेत्र में कतिपय स्थलों पर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय देकर काव्य जगत को एक बहुमूल्य निधि प्रदान की है, जो उन्हें आचार्य की पदवी से विभूषित करने में किञ्चित्मात्र न्यून नहीं है ।

१- ह०ग्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०- ७,
२- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०- ७,
३- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०- ८,
४- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०- ८,

नायक-नायिका भेद विवेचन :-

कवि करन ने `बिहारी सतसई की टीका` नामक अपने ग्रन्थ में नायक-नायिका भेद का क्रमानुसार निरूपण न कर `बिहारी के दोहों` में नायक-नायिका भेदों को परिलक्षित किया है, किन्तु इस प्रकार के विवेचन से भी उनके द्वारा किये नायक-नायिका भेद को समझा जा सकता है।

मध्या अधीरा नायिका :-

कवि करन ने मध्या के अधीरा भेद को स्वीकार किया है तथा उसका निम्नवत् उदाहरण दिया है --

नाही छूटी ताहि जहां बिहार करति हो ।।
तहां बिहरौ मेरो उर काहे को बिहरति हो ।।[1]

विश्वनाथ के `अधीरा` का लक्षण कवि करन के उपर्युक्त उदाहरण से साम्य रखता है --

प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्याधीरा दहेद्रुषा ।।७५।।
धीराधीरा तु रुदितैरधीरा परुषोक्तिभिः ।[2]

परकीया आगत पतिका :-

संस्कृत के सभी साहित्याचार्यों ने परकीया के दो भेद ऊढ़ा और अनूढ़ा किये हैं, कि कवि करन को परकीया का आगत पतिका भेद भी मान्य है --

सो ज्यों ज्यों निसि आवत है त्यों त्यों आनन्द भरी उराव,
और उवाहक रति है टल सरै तो मै मिलौ ।।
तातै यों आगत पतिका ।। अथवा परकीया आगत पतिका ।।[3]

मानिनी नायिका :-

कवि करन ने `मानिनी नायिका` नामक भेद का उद्घाटन किया है --

१- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ०सं०-११७.
२- साहित्य दर्पण, चतुर्थ संस्करण, पृ०सं०-११४.
३- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ०सं०-११८.

कैहि सखी चित दै दै कैव कौर तौ देखु जौ तौ जो वस्तु नाही आइ -
नाकौ जा मै मून मजै ।।

चंद किरन है कै चिनगी है तै से ईना हके तोहि देखी सुनहि कै तेरी काहि -
सुनै सुनहै और उपाहि नाही दूर था क्रोध करतु है ।।[2]

इसके अतिरिक्त कवि करन ने परकीया स्वाधीन पतिका, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता, मध्या परकीयाभिसारिका, प्रोषित पतिका नायिका, विदग्धा-नायिका, प्राप्यत पतिका, सगुनाग पतिका, सूक्ष्म मध्या अधीरा, क्रिया विदग्धा नायिका, समान्या-स्वाधीन पतिका, प्रौढ़ा भविष्यति पतिका, प्रौढ़ा कांछिता नायिका, दूती परकीया, प्रौढ़ा अभिसारिका तथा विप्रलब्धा परकीया आदि नवीन एवं अर्वाचीन भेदों का निरूपण किया है ।

वस्तुत: कवि करन के काव्य-अंगों पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि वास्तव में वे एक आचार्य थे, क्योंकि एक `आचार्य` में जिन गुणों का समावेश होना चाहिये, वे समस्त गुण हमें कविकरन के काव्य के अन्तर्गत दृष्टिगत होते हैं ।

-----:o:-----

१- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन , पृ०सं०- १२६.

तृतीय अध्याय

काव्य-चिन्तन

(१) आचार्य करन कवि का काव्यादर्श :-

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकार शिवसिंह सेंगर ने कर्नल टाड के आधार पर भोज के पूर्वपुरुष राजा मान की सभा में एक बन्दीजन पुण्ड या पुष्य (संवत् ७७० के लगभग) का होना लिखा है।[1] उसने दोहों में हिन्दी भाषा में संस्कृत-अलंकार ग्रन्थ का अनुवाद किया था।[2] परन्तु उसका विशेष विवरण अज्ञात है। अलंकार-शास्त्र के लेखकों में ब्रज के खेम कवि तथा मुनिलाल का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इनमें मुनिलाल को तो रीति-ग्रन्थों का प्रवर्तक ही समझा जाता है।[3] इन दोनों लेखकों का विशेष विवरण अप्राप्य है। इनके ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं हैं, इस प्रकार रीति काव्य-परम्परा का सबसे प्रथम लेखक कृपाराम ही ठहरता है। उसने रस-रीति पर "हिततरंगिनी" (रचना काल संवत् १५९८ वि०) नामक एक ग्रन्थ लिखा था। कृपाराम ने स्वयं लिखा है कि अन्य कवि बड़े छन्दों में श्रृंगाररस का वर्णन करते हैं, किन्तु मैंने सुघड़ता के विचार से दोहों में ही वर्णन किया है।[4] इस कथन से ज्ञात होता है कि उनके पहले रस-रीति पर अन्य ग्रन्थों की भी रचना हो चुकी थी, किन्तु वे भी आज अप्राप्य हैं। इसके बाद गोप (सं० १६१५ वि०) ने "रामभूषण" और "अलंकार चन्द्रिका" नामक अलंकार-संबंधी दो ग्रन्थ लिखे।[5] किन्तु इनका भी विशेष विवरण अनुपलब्ध है। (संवत् १६१६ में मोहनलाल मिश्र का "श्रृंगार सागर" ग्रन्थ रस तथा नायिका-भेद पर रचा गया।[6] किन्तु यह भी आज उपलब्ध नहीं है। इसी समय के लगभग रहीम ने "बरवै नायिका-भेद" की रचना की।[7] कवि नन्ददास ने भी नायिका भेद पर "रस मंजरी" (रचना काल संवत् -

---

१- शिवसिंह सरोज, पृ० ४१०, मिश्रबन्धु विनोद, भाग-१ पृ०-९९ तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०-३.

२- शिवसिंह सरोज, पृ० ४१० तथा पृ०-६ (भूमिका).

३- "A Small beginning had been made Prior to him (Keshava) by Khem of Braj and one Muni Lal who is regarded as the founder of the technical school of Poetry."
----Introduction-Search for Hindi Mss, 1906-8 by Shyam Sunderdas.

४- मिश्रबन्धु विनोद, भाग-१, पृ० २७६.

५- ,, ,, भाग- , पृ० ३५५.

६- मिश्रबन्धु विनोद, पृ०३५५ तथा नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट नं०-७०, सन् १९०५ ई०

७- मिश्रबन्धु विनोद, भाग-१, पृ०-३५८.

१६२४ के लगभग) नामक ग्रन्थ का निर्माण किया ।[१] इस समय के लगभग नरहरि के साथी करनेस कवि ने अलंकार पर तीन ग्रन्थ 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण', तथा 'भूपभूषण' लिखे थे ।[२] केशव के अग्रज बलभद्र मिश्र ने 'दूषण विचार' तथा 'नखशिख' का निर्माण किया था ।[३] इस प्रकार रस तथा अलंकार-निरूपण का सूत्रपात तो केशव के पूर्व ही हो चुका था, किन्तु पूर्ववर्ती किसी कवि ने भी काव्य के विभिन्न अंगों का सम्यक् विवेचन शास्त्रीय दृष्टिकोण से नहीं था

संस्कृत के अलंकार शास्त्र में भी काव्य की आत्मा के प्रश्न को लेकर भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय केशव के पूर्व ही पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुके थे पर केशव के समय के लगभग केवल रस तथा अलंकार सम्प्रदायों का ही बोलबाला था । भामह, दण्डी, उद्भट आदि आचार्यों ने अलंकारों को काव्य के लिए अनिवार्य माना है । दण्डी ने अलंकारों को शोभा का कारण बताया है ।[४] पर आगे चलकर मम्मटाचार्य ने काव्य में अलंकारों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा और काव्य की यह परिभाषा की --

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ।[५]

विश्वनाथ ने मम्मट की उक्त परिभाषा का भी खण्डन किया और रसात्मक वाक्य को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया ।[६] इस प्रकार जब अलंकारों को हेय समझा गया और रसात्मक वाक्य को ही काव्य में प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई तो अलंकार-प्रिय लोगों को एक बड़ा भारी आघात पहुंचा । फलतः लोगों की रुचि पुनः अलंकारों की ओर गई फिर तदुपरान्त अलंकार-ग्रन्थों का तांता-सा बंध गया । जयदेव ने अलंकार का पक्ष लेकर काव्य की परिभाषा निम्न प्रकार दी--

---

१- हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृ०-५१.

२- मिश्रबन्धु विनोद, भाग-१, पृ०-३५३.

३- मिश्रबन्धु विनोद, भाग-१, पृ०-३१५ तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०-२२६.

४- काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते । -- काव्यादर्श, पृ०-८.

५- काव्य प्रकाश, पृ०- ४.

६- वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।

--साहित्य दर्पण, पृ०-२०, परिच्छेद-१, कारिका सं०-३.

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुण भूषणा ।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक् ।।[१]

उन्होंने तो यहां तक यह कह डाला कि यदि कोई काव्य को अलंकार रहित मानता है तो अपने को पण्डित माननेवाला अग्नि को भी उष्णता-रहित क्यों नहीं मानता ?[२] उनके अनन्तर अप्पय दीक्षित, केशव मिश्र आदि आचार्यों ने अलंकार पर विशेषरूप से ध्यान दिया । अप्पय दीक्षित ने अपने `काव्य-दर्पण` में काव्य का जो लक्षण दिया है वह इस प्रकार है --

काव्यं त्वदुष्टौ गुणौ शब्दार्थौ सदलंकृती ।[३]

केशव मिश्र ने विश्वनाथ के काव्य के लक्षण को और भी व्यापक एवं सरस बनाने का प्रयत्न किया है[४] और साथ ही सभी की परिभाषाओं को समेटने का जो प्रयास किया है वह श्लाघ्य है ।[५] इस विवेचन से यह सिद्ध है कि केशव के समय में रस के साथ अलंकार की भी पर्याप्त प्रतिष्ठा हो चुकी थी । निदान केशव की दृष्टि भी `रस` और `अलंकार` दोनों पर ही गई और फलत:उन्होंने रसों पर `रस-कल्लोल` तथा अलंकारों पर `साहित्य-चन्द्रिका` ग्रन्थों की रचना की ।

इस प्रकार कवि केशव का काव्यादर्श यही दृष्टिगत होता है कि समस्त लक्षणों से युक्त - अलंकार, गुण, वृत्ति, रीति तथा रस विवेचन को सहृदयों तक पहुंचाया जाये जिसको वे रसमग्न हो जीवन के वास्तविक आनन्द से वंचित न रहकर सम्पूर्ण आनन्द का उपभोग कर सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें ।

१- चन्द्रालोक, मयूख -१, श्लोक-७, पृ०-६.

२- अंगीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
सो न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ।। -- चन्द्रालोक, श्लोक-८, पृ०-७.

३- केशवदास, चन्द्रबली पाण्डेय, पृ०-१४२.

४- काव्य रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुख विशेषकृत ।
--अलंकार शेखर, प्रथम रत्न, प्रथम मरीचि, पृ०-२.

५- निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकृतम् ।
रसान्वितं कवि:कुर्वन् प्रीतिं कीर्तिं च विन्दति ।
--अलंकार शेखर, प्रथम रत्न, प्रथम मरीचि, पृ०-३.

कवि करन ने काव्य-लक्षण भी इसी प्रकार का दिया है --

दोष रहित लच्छन सहित अलंकार गुन वृत्त ।
रीति युक्त मुद्रा सहित रस जुत वाक् प्रवृत्त ।।८६।।[1]

आन परत वेवहार जस जस संपति सुण साज ।
आन मुक्त लहि कवित्त सौं विलसत सोम समाज ।।८५।।[2]

'रस-कल्लोल' ग्रन्थ के आरम्भ में कवि करन ने वन्दना करते हुये यही मत अभिव्यक्त किया है --

रस धुन गुन अलंकृत तीय कवित भेद मति तोल ।
बाल बोध हित कर सदा कीन्हों रस कल्लोल ।।५।।[3]

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १८.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १८.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १.

काव्य लक्षण :-

`वे शब्द और अर्थ `काव्य` कहे जाते हैं जो दोष-रहित हों, गुण युक्त हों और ।यदि रसाभिव्यंजक हों तो । अलंकृत हों या न हों ।` १.

आचार्य मम्मट का यह काव्य -लक्षण काव्य-सामान्य और काव्य विशेष के प्राचीन लक्षणों के पर्याप्त मनन और चिन्तन का परिणाम हैं । इस लक्षण में ऐसे लक्षणों २.का जहां समन्वय है वहां ऐसे लक्षणों ३.का भी अन्तर्भाव है ।

इस लक्षण में भामह, कुन्तक और भोज के `साहित्य` ।शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् । की रूपरेखा जहां स्पष्ट भलकती है वहां दण्डी, वामन और रुद्रट की काव्य सम्बन्धी मान्यताओं की भी ।

`जिस प्रकार कोई रत्न कीटानुवेध के होने पर भी रत्न ही बना रहा करता है, उसी प्रकार कोई काव्य रसभावाभि व्यंजक शब्दार्थयुगल-श्रुति दुष्टादि दोष के होने पर भी काव्य ही रहा करता है ।[४]

१- तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुन: क्वापि ।।
-- काव्य प्रकाश: प्रथम उल्लास, पृ०सं० १०, मम्मटाचार्य ।

२- `अदोषं गुणवत् काव्यमलंकारैरलंकृतम् ।
रसान्वितं कवि: कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ।।`
-- सरस्वती कण्ठाभरण १।२.

३- `यत्रार्थ:शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।
व्यंक्त: काव्यविशेष: स ध्वनिरिति सूरिभि:कथित: ।।
-- ध्वन्यालोक १।१३.

४- `कीटानुविद्धरत्नादिसाधारण्येन काव्यता ।
दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगम: स्फुट: ।।` इति ।
-- साहित्यदर्पण:प्रथम:परिच्छेद -विश्वनाथ, पृ०सं० ८.

सरस्वती कण्ठाभरणकार भोजराज के अनुसार 'काव्य वह शब्दार्थयुगल है जो निर्दोष हो, गुणयुक्त हो, अलंकारों से अलंकृत हो और रस समन्वित हो और कवि वह है जो इस प्रकार के काव्य की रचना किया करता है और कीर्ति किंवा प्रीति पाया करता है।'[1]

ध्वनिकार आनन्द वर्धनाचार्य ने काव्य के आत्मतत्व का दिग्दर्शन इस प्रकार किया है ।[2]

विंचेस्टर के मत से काव्य के मूल तत्व चार हैं -- १.भावात्मक तत्व, २.बुद्धितत्व, ३.कल्पना, ४. काव्यांग । रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को व रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं । कलापक्ष छूट जाता है। इसमें शब्द की प्रधानता दी जाती है। वाक्य भी शब्दात्मक ही होता है। 'काव्य प्रकाश' में निर्दोषसगुण और सालंकार शब्द और अर्थ को[3] काव्य कहते हैं। इस लक्षण में कलापक्ष तो है, पर भावपक्ष का अभाव है। इसमें शब्द और अर्थ दोनों की प्रधानता दी गयी है। वैसे ही काव्य की आत्मा रीति है।[4] इसमें कलापक्ष तो है पर भावपक्ष नहीं है। रीति को काव्यात्मा मानना भी यथार्थ नहीं।

काव्य की आत्मा ध्वनि है।[5]

वर्ड्सवर्थ का उत्कट भावना का सद्योद्रेक काव्य है।[6] यह लक्षण कविराज विश्वनाथ के लक्षण का ही प्रतिरूप है। वैसे ही कालरिज का काव्य-लक्षण उत्तम शब्दों

१- 'अदोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम् ।
रसान्वितं कविःकुर्वन कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ।।'
---सरस्वती कण्ठाभरणकार-भोजराज.

२- 'अर्थःसहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मा यो व्यवस्थितः ।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ।।' इति
---ध्वनिकार आनन्दवर्धनाचार्य.
हिन्दी साहित्य दर्पण डॉ.सत्यव्रतसिंह पृ.सं २१ ।

३- तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनःक्वापि ।
मम्मटाचार्य, काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, पृ०सं०- १०.

४- रीतिरात्मा काव्यस्य -- वामन, काव्यालंकार सूत्र १.२.६ ।

५- काव्यस्यात्मा ध्वनिः । ध्वन्यालोक.

६- दी स्पोन्टेनस ओवरफ्लो आफ पावरफुल फीलिंग्स.

की उत्तम रचना[1] वाम्न के लक्षण से मिलता है। शैली के "श्रेष्ठ और उत्तमोत्तम आत्माओं व हृदयों के आत्यंतिक रमणीय व भव्य लक्षणों का लेखा[2] काव्य है। आर्नल्ड ने "काव्य को जीवन की व्याख्या"[3] कहा है। आल्फ्रेड लायल का यह लक्षण "किसी युग के प्रधान भावों और उच्च आदर्शों को प्रभावोत्पादक रीति से प्रगट कर देना ही कविता है।[4]

महादेवी वर्मा कहती हैं -- "कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनायें किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत हो जाती हैं।"

करन कवि ने "काव्य लक्षण" निरूपण अत्यन्त मौलिक एवं अनूठे रूप में अभिव्यक्त किया है -- जो कविता करता है वह कवि है, और कवि ही कविता करता है। शब्द और अर्थ को कविता जानना चाहिये --

कवित करै कवि होत है कवि पुर करै कवित्त।
सब्द सुद्ध अरु अर्थ को कवित्त जानिये मित्र ।। १८३।।[5]

ललित कविता का लक्षण कवि करन ने इस प्रकार किया है --

मृदु बितपत अभ्यांस जल सबल बीच संग सोइ ।
समय पाइ निपजत ललित कवित सरोवर सोइ ।। १८४।।[6]

कविता की महत्ता का वर्णन करते हुए कवि करन कहते हैं -- कि यदि समाज में यश, सम्पत्ति तथा सुख आ जाते हैं तो व्यवहारवश कविता ही समाज को प्रसन्नता प्रदान करती है --

जान परत बैवहार जस संपत्ति सुख साज।
जान मुकत लहि कवित तो बिलसत सोम समाज ।। १८५।।[7]

काव्य-लक्षण निरूपित करते हुये कवि करन कहते हैं - कि काव्य वह है जो दोष रहित हो, समस्त लक्षणों से युक्त हो, अलंकारों से अलंकृत हो, गुण युक्त हो, वृत्ति युक्त हो, रीति बद्ध हो, रस समन्वित हो तथा वाक् चातुर्य हो।

दोष रहित लछन सहित अलंकार गुन वृत्त ।
रीति जुकत मुद्रा सहित रस जुत वाक् प्रवृत्त ।।१८६ ।।[8]

---

१ - दी बेस्ट वर्ड्स इन दी बेस्ट आर्डर, २- दी बेस्ट एण्ड हैपिएस्ट मोमेन्ट्स आफ दी बेस्ट एण्ड हैपिएस्ट माइण्ड्स, ३ - पोइट्री इस ऐट बोटम ए क्रीटिसिज्म आफ लाइफ।

४ - पोइट्री इस दी मोस्ट इनटेन्स एक्सप्रेशन आफ दी डोमिनेन्ट इमोशन्स एण्ड दी हाइयर आइडियाज आफ दी एज।

५- हस्त. ग्र. रस कल्लोल, कवि करन, पृ. सं.- १८।

६- हस्त. ग्र. रस कल्लोल, कवि करन, पृ. सं.- १८।

७- हस्त. ग्र. रस कल्लोल, कवि करन, पृ. सं.- १८। ८- हस्त. ग्र., रस कल्लोल, कवि करन, पृ. सं.- १८।

३ - काव्य प्रयोजन :-

काव्य की रचना । और साथ ही साथ भावना । की जाती है यश की प्राप्ति के लिये, धन-सम्पत्ति के अर्जन के लिये, त्रिविध ताप संताप के निवारण के लिये, काव्यानुशीलन के साथ ही साथ अलौकिक आनन्द के लाभ के लिए और इस प्रकार के उपदेश के लिये जैसा किसी प्रेमिका के द्वारा उसके प्रेमी को दिया जाया करता है ।[१]

आचार्य मम्मट ने यहाँ " काव्य " के ६ प्रयोजनों को बताया है --

१ - यश प्राप्ति के लिये, २-अर्थ-लाभ, ३-आचार ज्ञान, ४-अमंगल निवारण, ५- रस अथवा

---

१ - काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।

सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।। २ ।।

--- आचार्य मम्मट प्रथम उल्लास - पृ० सं० ५

आनन्द और ६-सरस उपदेश। इनमें कवि के प्रयोजन तो प्रथम चार हैं और कवि तथा सहृदय दोनों के प्रयोजन अन्तिम दो।

आचार्य मम्मट ने काव्य के जो ६ प्रयोजन गिनाये हैं उनका अलंकार शास्त्र में उनके पहले से ही प्रतिपादन होता आ रहा है। सर्वप्रथम आलंकारिक भामह ने स्पष्ट कहा है-- [१] अर्थात् एक एक शास्त्र जहां अपने-अपने विषयों के प्रतिपादन में तत्पर रहा करते हैं वहां काव्य समस्त शास्त्रों के विषयों को अपना विषय बनाया करता है और इस प्रकार काव्य का अनुशीलन करनेवाला समस्त शास्त्रों और समस्त कलाओं का तत्व सरलता से जान सकता है। काव्य रचने अथवा पढ़ने में जो आनन्द मिलता है वह अन्यत्र नहीं। साथ ही साथ काव्य एक ऐसा कर्म है जिसके करने वाले की कीर्ति चिरस्थायी हुआ करती है।"

आचार्य भामह के अनुसार काव्य के यहां तीन प्रयोजन प्रतीत होते हैं -- १.शास्त्रादि ज्ञान प्राप्ति २.कीर्ति और ३.प्रीति अथवा आनन्द। काव्यप्रकाशकार ने भामह के दो प्रयोजनों-- कीर्ति और प्रीति को तो सर्वथा मान लिया है, किन्तु शास्त्रादि ज्ञान प्राप्ति के स्थान पर 'रामादिवल्लोकव्यवहारपरिज्ञान' को रखा है।

मम्मट के पूर्ववर्ती आलंकारिक रुद्रट ने भी अपने 'काव्यालंकार' में काव्य के इन्हीं प्रयोजनों को गिनाया है[२]:-

---

१- धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च निबन्धनम्।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥
—काव्यालंकार १-२ आचार्य भामह.

"स्वादु काव्यरसोन्मिश्रं शास्त्रमप्युपयुंजते।
प्रथमालीढमधवः पिबन्ति कटुभेषजम् ॥" —काव्यालंकार सूत्र ५।३.

२- ज्वलदुज्ज्वलवाक्प्रसरः सरसं कुर्वन् महाकविःकाव्यम्।
स्फुटमाकल्पमनल्पं प्रतनोति यशः परस्यापि ॥ १।४ ॥
अर्थमनर्थोपशमं शमसममथवा मतं यदेवास्य।
विरचितरुचिरसुरस्तुतिरखिलं लभते तदेव कविः ॥ १।८ ॥
तदिति पुरुषार्थसिद्धिं साधु विधास्यद्भिरविकलां कुशलैः।
अधिगतसकलज्ञेयैः कर्तव्यं काव्यममलमलम् ॥ १।१२ ॥ --काव्यालंकार-आचार्य रुद्रट.

आनन्द और ६-सरस उपदेश । इनमें कवि के प्रयोजन तो प्रथम चार हैं और कवि तथा सहृदय दोनों के प्रयोजन अन्तिम दो ।

आचार्य मम्मट ने काव्य के जो ६ प्रयोजन गिनाये हैं उनका अलंकार शास्त्र में उनके पहले से ही प्रतिपादन होता आ रहा है । सर्वप्रथम आलंकारिक भामह ने स्पष्ट कहा है-- २ अर्थात् एक २ शास्त्र जहां अपने-अपने विषयों के प्रतिपादन में तत्पर रहा करते हैं वहां काव्य समस्त शास्त्रों के विषयों को अपना विषय बनाया करता है और इस प्रकार काव्य का अनुशीलन करनेवाला समस्त शास्त्रों और समस्त कलाओं का तत्व सरलता से जान सकता है । काव्य रचने अथवा पढ़ने में जो आनन्द मिलता है वह अन्यत्र नहीं । साथ ही साथ काव्य एक ऐसा कर्म है जिसके करने वाले की कीर्ति चिरस्थायी हुआ करती है ।`

आचार्य भामह के अनुसार काव्य के यहां तीन प्रयोजन प्रतीत होते हैं -- १.शास्त्रादि ज्ञान प्राप्ति २.कीर्ति और ३.प्रीति अथवा आनन्द । काव्यप्रकाशकार ने भामह के दो प्रयोजनों-- कीर्ति और प्रीति को तो सर्वथा मान लिया है, किन्तु शास्त्रादि ज्ञान प्राप्ति के स्थान पर `राजादिगतोचिताचारपरिज्ञान' को रखा है ।

मम्मट के पूर्ववर्ती आलंकारिक रुद्रट ने भी अपने `काव्यालंकार' में काव्य के इन्हीं प्रयोजनों को गिनाया है[२]:-

---

१- धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥
--काव्यालंकार १-२ आचार्य भामह.

`स्वादु काव्यरसोन्मिश्रं शास्त्रमप्युपयुंजते ।
प्रथमालीढमधवः पिबन्ति कटु भेषजम् ॥` --काव्यालंकार सूत्र ५।३.

२- ज्वलदुज्ज्वलवाक्प्रसरः सरसं कुर्वन् महाकविःकाव्यम् ।
स्फुटमाकल्पमनल्पं प्रतनोति यशः परस्यापि ॥ १।४ ॥
अर्थमनर्थोपशमं शमसममथवा मतं यदेवास्य ।
विरचितरुचिरसुरस्तुतिरखिलं लभते तदेव कविः ॥ १।८ ॥
तदिति पुरुषार्थसिद्धिं साधु विधास्यद्भिरविकलां कृतिः ।
अधिगतसकलज्ञेयैः कर्तव्यं काव्यममल मलम् ॥ १।१२ ॥ --काव्यालंकार-आचार्य रुद्रट.

यद्यपि आचार्य मम्मट ने काव्य के ये ६ प्रयोजन बताये हैं, किन्तु इनमें पहले चार प्रयोजनों को तो आनुषंगिक माना है और पार्यन्तिक प्रयोजन अथवा परम प्रयोजन माना है। इस सम्बन्ध में आचार्य मम्मट का अभिप्राय वही है जो आनन्दवर्धनाचार्य और अभिनव गुप्त पादाचार्य का है ।[१]

पाश्चात्य काव्यालोचक भी काव्य के प्रयोजनों में रसानुभव को ही मुख्य प्रयोजन मानते हैं ।[२]

अर्थात् आनन्द ही काव्य का परम प्रयोजन है, भले ही इसे एकमात्र प्रयोजन मानें या न मानें। उपदेश का स्थान तो आनन्द के बाद आता है, क्योंकि काव्य जो उपदेश देता है वह सीधे नहीं अपितु रसास्वाद करा कर देता है।

कवीन्द्र रवीन्द्र का कथन है कि "साहित्य में चिरस्थायी होने की चेष्टा ही मनुष्य की प्रिय चेष्टा है।"

टाल्स्टाय का कथन है-- "साहित्य या कला का उद्देश्य जीवन-सुधार है, लेकिन केवल सामान्य जीवन का सुधार ही नहीं, इससे और भी बहुत कुछ ।"

कालरिज का कहना है --"कविता ने मुझे वह शक्ति दी है जिससे मैं संसार की सब वस्तुओं में भलाई और सुन्दरता को देखने का प्रयत्न करता हूं।" शुक्लजी के शब्दों में --"हृदय पर नित्य प्रभाव रखनेवाले रूपों और व्यापारों को सामने लाकर कविता बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्त:प्रकृति का सामंजस्य घटित करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता के प्रकाश का प्रयास करती है।"

१- `चतुर्वर्गव्युत्पत्तेरपि चानन्द एव पार्यन्तिकं मुख्यं फलम्' ... `यदिस्तावत् कीर्त्यापि प्रीतिरेव सम्पाद्या । श्रोतृणां च व्युत्पत्तिप्रीती यद्यपि स्तस्तथापि प्रीतिरेव प्रधानम् । अन्यथा प्रभुसम्मितेभ्यो वेदादिभ्य:मित्रसम्मितेभ्यश्चेतिहासादिभ्यो व्युत्पत्तिहेतुभ्य: को ऽस्य काव्यरूपस्य जायासम्मितत्वलक्षणो विशेष इति- - - चतुर्वर्गव्युत्पत्तेरपिचानन्द एव पार्यन्तिकं मुख्यं प्रयोजनम् ।"
— ध्वन्यालोकलोचन पृष्ठ १२.

२- डिलाइट इज दी चीफ, इफ नॉट दी औनली इण्ड आफ पोइट्री,इन्स्ट्रक्शन कैन बी ऐडमीटेड बट इन दी सैकेण्ड प्लेस, फॉर पोइसी औनली इन्स्ट्रक्ट्स एज इट डिलाइट्स.
— जान ड्राइडन.

साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ का कथन है-- काव्य ऐसी वस्तु है जिससे अल्पबुद्धि मानव को, बिना किसी कष्ट साधना के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति हुआ करती है।[१]

इतना ही नहीं ? काव्य की उपयोगिता में तो शास्त्रों और पुराणों का भी प्रमाण है -- "सबसे पहले तो संसार में मानव-जन्म दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ है विद्या-लाभ, उससे दुर्लभ है कवित्व और जिसे कवि प्रतिभा कहते हैं वह अत्यन्त दुर्लभ है।[२]

"त्रिवर्ग साधनं नाट्यम्" इति च। विष्णुपुराणे पि -- "नाट्य एक ऐसी वस्तु है जिससे धर्म, अर्थ और काम रूप पुरुषार्थ की प्राप्ति हुआ करती है।[३]

नाट्यशास्त्र में निम्नलिखित प्रयोजन परिगणित किए गए हैं --
१. यश , २. अर्थ, ३. व्यवहार ज्ञान, ४. शिवेतर क्षय, ५. प्रीति या पर निर्वृत्ति, ६. कान्ता-सम्मित -उपदेश, ७. धर्म,अर्थ,काम, मोक्ष चतुर्वर्ग की प्राप्ति, ८. कलाओं में वैचक्षण्य, ९. दु:खी श्रमित और शोक -सन्तप्तों का मनोरंजन। इसके अतिरिक्त हिन्दी कवि और साहित्यकों ने कुछ प्रयोजनों का उल्लेख और किया है। जैसे- महात्मा तुलसीदास द्वारा निर्दिष्ट "स्वान्त:सुख" और कबीर द्वारा निर्दिष्ट "लोक संग्रह" की भावना। आधुनिक विद्वानों ने इस दिशा में और अधिक चिन्तन करके कुछ नई खोजें भी की हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी और डा०नगेन्द्र ने आत्माभिव्यक्ति को एक काव्य-प्रयोजन सिद्ध करने की चेष्टा की है। इस प्रकार सब मिलाकर काव्य प्रयोजनों की संख्या १२ तक पहुँच गई है। यहां पर उन सब पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायेगा --

---

१- चतुर्वर्ग फल प्राप्ति: सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते ।। २ ।।
--साहित्य दर्पण: आचार्य विश्वनाथ- प्रथम परिच्छेद: पृ०सं० ४.

२- "नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ।।" इति
---- अग्नि पुराण ३२७ - ३.

३- "काव्यालापाश्च ये केचिद्गीतकान्यखिलानि च।
शब्दमूर्तिधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मन: ।।" इति।
---- अग्नि पुराण ३३८- ७.

आचार्य मम्मट काव्य की रचना और श्रीवृद्धि के ये तीन ।सम्मिलित रूप से। मूल कारण निर्देश किए हैं--

१- शक्ति अथवा कवि प्रतिभा ।

२- निपुणता अथवा व्युत्पत्ति जो लोक-जीवन के अनुभव और निरीक्षण, शास्त्रों के अनुशीलन किंवा इत्यादि के विवेचन का परिणाम है, और

३- अभ्यास अथवा कवि और काव्य विमर्शक के उपदेश का अनुसरण करते हुये काव्य-निर्माण में लगाना ।[1]

आचार्य मम्मट का काव्य-हेतु निरूपण उनकी उस समन्वयात्मक दृष्टि का परिणाम है जिससे देखे जाने पर संस्कृत काव्य-साहित्य का कोई भी रचनाकार कवि की श्रेणी से बाहर नहीं किया जाता ।

आचार्य आनन्दवर्द्धन की दृष्टि में "शक्ति" ही वस्तुत: काव्य-रचना का कारण है । उन्होंने यहां तक कहा है कि यदि किसी में कवित्व-शक्ति है तो काव्य वही कर सकता है और यदि शक्ति नहीं है तो व्युत्पत्ति के द्वारा रचा गया काव्य ऐसा ही होगा जो अन्त स्वत्वशून्य हो ।[2]

कविराज राजशेखर की काव्य-मीमांसा की दृष्टि में व्युत्पत्ति का एक विशिष्ट महत्व है जिससे काव्य का निर्माण और समुल्लास संभव है । राजशेखर ने स्पष्ट कहा है--" "विप्रसृतिश्च सा ।शक्ति:। प्रतिभा व्युत्पत्तिभ्याम् ।"

आलंकारिक मंगल ने तो शक्ति और व्युत्पत्ति दोनों से बढ़ा-चढ़ा `अभ्यास` को ही माना है--`काव्य कर्म में एकमात्र व्यापार `अभ्यास` का ही दिखायी देता है । काव्य-रचना में निरन्तर प्रवृत्त होना ही "अभ्यास` है और इसी कारण किसी काव्य में उसके रचयिता का कौशल झलका करता है ।[3]

१- शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ।। ३ ।।
----आचार्य मम्मट, प्रथम उल्लास -पृ०सं० ७.

२-`अव्युत्पत्तिकृतो दोष: शक्त्या संव्रियते कवे: ।
यस्त्वशक्तिकृतस्तस्य स झटित्यवभासते ।।" ---- ध्वन्यालोक उद्योत- ३.

३-`तस्याधारनिरोधात् तालकत्वाच्च धारणा: करणे ।
त्रितयमिदं व्याप्रियते शक्तिर्व्युत्पत्तिरभ्यास: ।।" ---- काव्यादर्श- १.

---'अभ्यासः ।काव्यकर्मणि परं व्याप्रियते । । अविच्छेदेन शीलनमभ्यासः । स हि सर्वगामी सर्वत्र निरतिशयं कौशलमाधत्ते ।'

आचार्य रुद्रट के काव्य-हेतु -विवेक का काव्यप्रकाशकार पर पूरा प्रभाव पड़ा है। रुद्रट ने भी शक्ति व्युत्पत्ति अभ्यास त्रितय को ही काव्य का कारण माना है।[1]

प्राचीन काव्याचार्य दण्डी के अनुसार ये तीनों ही सम्मिलित रूप से काव्य कारण हैं।[2]

मम्मट का व्युत्पत्ति-विवेक तथा अभ्यास निरूपण रुद्रट के व्युत्पत्ति-विवेक तथा अभ्यास निरूपण के सादृश्य है।[3]

१- यश :-

सम्भ्रान्त कवियों की रचनाओं का प्रकाशन यश-कामना हेतु होता है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण है। अंग्रेजी कवि मिल्टन ने यश को मानव का अन्तिम और उदात्तम कामना कह कर इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य का निदर्शन किया है। काव्य प्रयोजनों में आचार्य मम्मट ने यश को सर्वथा प्रथम प्रयोजन कहा है। रुद्रट ने लिखा है-- 'महाकवि सरस काव्य की रचना करता हुआ अपने तथा नायक के प्रत्यक्ष युगान्त तक रहने वाले जगद्व्यापी यश का विस्तार करता है[4]।'

१- 'तस्यासार निरासात् सारग्रहणाच्च चारुणः करणे ।
त्रितयमिदं व्याप्रियते शक्तिर्व्युत्पत्तिरभ्यासः ।।' --काव्यालंकार १।१४.

२- 'नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम् ।
अमन्दश्चाभियोगो स्याः कारणं काव्यसंपदः ।।' -- काव्यादर्श १.

३- 'छन्दोव्याकरण कलालोक स्थितिपदपदार्थविज्ञानात् ।
युक्तायुक्तविवेको व्युत्पत्तिरियं समासेन ।।'

विस्तरतस्तु किमन्यत्तत इह वाच्यं न वाचकं लोके ।
न भवति यत्काव्यांगं सर्वज्ञत्वं ततो न्यैषा ।। -- काव्यालंकार १,१८,१९.

'अधिगत सकलज्ञेयः सुकवेः सुजनस्य संनिधौ नियतम् ।
नक्तं दिनमभ्यस्येदभियुक्तः शक्तिमान् काव्यम् ।।' -- काव्यालंकार १।२०.

४- 'तत्कारित सुरसदनप्रभृतिनि नष्टे तथाहि कालेन ।
न भवेन्नामापि ततो यदि न स्युः सुकवयो राज्ञाम् ।।'-- काव्यालंकार १।५.

ज्वलदुज्ज्वल भामह ने लिखा है--

'करोति कीर्तिं प्रीतिञ्च साधुकाव्यनिबन्धनम् ।'

वामन का मत भी ऐसा ही है --

'काव्यं सददृष्टा दृष्टार्थं प्रीति कीर्ति हेतु त्वात् ।'

धन्यास्ते वै महात्मान: तेषां लोके स्थितं यश: ।

ये निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिता ।

यश प्रयोजन के दो पक्ष हो सकते हैं-- स्व पक्ष तथा पर पक्ष । जैसे बाण आदि कवि, जिन्होंने हर्ष आदि अपने आश्रय दाताओं का यश:गान किया था ।[1] संस्कृत के प्रसिद्ध कवि बिल्हण ने भी अपने एक श्लोक में इसी भाव का प्रतिध्वनन किया है ।[2]

अर्थ :-- काव्य रचना का एक प्रयोजन अर्थ प्राप्ति भी बताया गया है । सर्वप्रथम आचार्य रुद्रट की उक्ति निम्न हैं ।[3] संस्कृत आचार्यों ने ही अपितु हिन्दी आचार्यों ने भी ~~केवल~~ अर्थ को एक प्रमुख साधन माना है । कुलपति ने "जस सम्पत्ति" सोमनाथ ने "कीरति वित्त विनोद" आदि कह कर, आचार्य भिखारीदास ने "एक लहे बहु सम्पत्ति," केशव ने "भूषण ज्यों बर बीर बड़ाई" लिखकर उस प्रयोजन का ही निर्देश नहीं किया अपितु उस प्रयोजन को लेकर कविता करनेवाले रीतिकालीन हिन्दी कवियों का भी निर्देश कर दिया है ।

व्यवहार ज्ञान :--

मम्मट ने व्यवहार ज्ञान की शिक्षा को भी काव्य का एक प्रयोजन माना है । आचार्य कुन्तक का मत विशेष रूप से द्रष्टव्य है-- "सत्काव्य में औचित्य से युक्त व्यवहार चेष्टा का निदर्शन प्रधान रहता है ।" संस्कृत में पंचतंत्र, हितोपदेश आदि रचना का प्रयोजन यही है । आचार्य शुक्लजी ने लिखा है [4]--

---

१- 'वल्काखिल सुरसदन प्रभृतिनि नष्टे तथापि कालेन ।
न भवन्नामापि ततो यदि न स्यु:सुकवयो राज्ञाम् ।।' -- काव्यालंकार १।५.

२- महीपते:सन्ति न यस्य पार्श्वे, कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि ।
भूपा कियन्तो न बभूवुरुर्व्यां, नामापि जानाति न को पि तेषाम् ।
-- विक्रमांक० १।२६.

३- 'अर्थमनर्थोपशमं प्रभुसमतया वा यदेनास्य ।
विरचितरुचिर सुरस्तुतिरखिलं लभते तदेव कवि: ।।' -- रुद्रट का काव्यालंकार.

४- 'अत:यह धारणा कि काव्य व्यवहारका बाधक है । उसके अनुशीलनसे अकर्मण्यता आती है,ठीक नहीं । कविता तो भाव,प्रसार द्वारा कर्मण्यके लिए कर्मक्षेत्रका और विस्तार कर देती है ।' --- चिन्तामणि, पृष्ठ २१६.

शिवेतर क्षतये :--

" भारत में काव्य केवल आनन्द की वस्तु रूप कला मात्र नहीं अपितु "हितेन सह इति सहितम् । तस्य भाव: साहित्य:" भी था ।

रीतिकालीन आचार्य कुलपति ने "दुरितन डारै खाय", कहा है ।

प्रीति :--

संस्कृत आचार्यों ने प्रीति को काव्य का प्रमुख प्रयोजन माना है । सरस्वती कण्ठाभरण के टीकाकार रत्नेश्वर ने लिखा है-- "प्रीति:सम्पूर्ण काव्यार्थ स्वादसमुत्थ: आनन्द: ।"

"तथा तत्र प्रीतिरेव प्राधान्यं" लिखकर आचार्य अभिनवगुप्त और आनन्दवर्द्धन ने इसी बात की व्यंजना की है । आचार्य कुन्तक ने इस प्रयोजन की चर्चा की है ।[1] आचार्य भोज ने "रसान्वितं कवि: कुर्वन्कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति" लिखकर इस प्रयोजन का समर्थन किया है ।

कान्तासम्मित उपदेश :--

संस्कृत आचार्यों में भरत ने "अबुधानां विबोधश्च" तथा "लोकोपदेश जननं" लिखकर इस प्रयोजन की अभिव्यक्ति की है । आचार्य मम्मट ने इस प्रयोजन की व्यंजना की है ।[2]

आचार्य कुन्तक ने भी इस प्रयोजन की प्रतिष्ठा दी है ।[3] हिन्दी कवियों में तुलसीदास ने इस प्रयोजन की मान्यता दी है ।[4]

१- चतुर्वर्ग फलास्वाद मप्यतिक्रम्य तद्विदाम् ।
काव्यामृत रसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते ।। -- वक्रोक्ति जीवितम् १।५.

२- "स्वादु काव्य रसोन्मिश्रं शास्त्र मप्युपयुञ्जते ।
प्रथमालीढ़मधव: पिबन्ति कटुभेषजम् ।।" --काव्यालंकार सूत्र ५।३.

३- कटुकौषधवच्छास्त्रम विद्या व्याधिनाशनम् ।
आह्लाद्यमृतवत् काव्यमविवेकगदापहम् ।।

४- कीरति भनिति भूति भलि सोई ।
सुरसरि सम सबकंर हित होई ।।

चतुर्वर्ग की प्राप्ति :-

कला में वैचक्षण्य-- आचार्य भामह ने कला नैपुण्य को भी काव्य का एक प्रयोजन माना है।

मनोरंजन :--

आचार्य भरत ने इसकी चर्चा की है --

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्ति जननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति ।।

कवि करन ने मनोरंजन या आनन्द प्राप्ति को काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है -- यदि समाज में यश, सम्पति तथा सुख आ जाते हैं, तो व्यवहारवश कविता ही समाज (मानव), को प्रसन्नता या आनन्द प्रदान करती है --

आन परत बेवहार जग जस संपत्ति सुख साज ।
आन मुक्त इहि कवित तो विलसत सोम समाज ।। ६८५।।[१]

कवि करन ने ' काव्य - प्रयोजन ' को ' दोहा छन्द ' में लिखा है जो उनके आचार्यत्व एवं पाण्डित्य का प्रदर्शन करता है। इससे ज्ञात होता है कि छन्दों की भी कवि करन को अच्छी जानकारी थी।

---

१ - ह० प्र० रस कल्लोल कवि करन पृ० सं० ६८ ।

--रस-विवेचन--

संस्कृत में रस शब्द की व्युत्पत्ति `रसस्यतेऽसौ इति रस:` अर्थात् जिससे आस्वाद मिले वही रस है। रस शब्द का प्रयोग अर्वाचीन है । रस केवल साहित्य में ही नहीं अपितु अन्य ग्रन्थों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है -- वैदिक संहिताओं में `रस` का अर्थ जल होता है। उपनिषदों में रस ब्रह्म या ब्रह्मानन्द का वाचक है --"रसो वै स: रसह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।" १.

आयुर्वेद में रस शब्द औषधि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अलंकारशास्त्र में यह सर्वाधिक व्यापक रूप धारण करके अवतीर्ण हुआ है। साहित्य जनित रसानन्द उपनिषदों के ब्रह्म रसानन्द के समकक्ष माना गया है।

विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्ति: । २.

विभाव अनुभाव और व्यभिचारि ।भावों। के संयोग से रस निष्पत्ति होती है।

भरतमुनि के उपर्युक्त सूत्र में `संयोग` तथा `निष्पत्ति` शब्दों का अर्थ अस्पष्ट है। इन्हीं को अपना विषय बनाकर परवर्ती आचार्यों ने गहन शास्त्रार्थ किया है। भरत ने स्वयं निष्पत्ति की व्याख्या इस प्रकार की है ---

जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से ।भोज्य। रस की निष्पत्ति होती है,जिस प्रकार गुडादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से `षाडवादि` रस बनते हैं उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव भी ।नाट्य। `रस` रूप को प्राप्त होते हैं। ३. संयोग शब्द का अर्थ और भी स्पष्ट करते हुये भरत ने लिखा है-- जिस प्रकार नानाविध

१- तैत्तिरीयोपनिषद् ११, ७१.

२- नाट्यशास्त्र--काव्यमाला ६.३२, पृष्ठ ६२.

३- यथाहि नानाव्यंजनौषधि द्रव्य संयोगाद्रस निष्पत्तिर्भवति, यथाहि गुडादिभि-र्द्रव्यव्यंजनैरौषधिभिश्च षाडवादयो रसा निर्वर्त्यन्ते, तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति ।-भरतमुनि--नाट्यशास्त्र ।

व्यंजनों से संस्कृत अन्न का उपभोग करते हुये प्रसन्नचित्त पुरूष रसों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि का अनुभव करते हैं, इसी प्रकार प्रसन्न प्रेक्षक विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक ।मानसिक।अभिनयों से संयुक्त स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि को प्राप्त होते हैं।१.

भट्टलोल्लट का ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। अत: उनके रस संबंधी मत के उद्धरण अभिनवगुप्त ।११वीं शती। के ग्रंथ `अभिनव भारती` में और कुछ `ध्वन्यालोक लोचन` में उपलब्ध होते हैं।

भट्टलोल्लट आदि ।व्याख्याताओं। ने ।इस सूत्र की। इस प्रकार व्याख्या की है कि विभावादि का जो संयोग अर्थात् स्थायीभाव के साथ । विभाव,अनुभाव तथा व्यभिचारीभावों का संयोग। उससे रस निष्पत्ति होती है। इन ।विभाव,अनुभाव तथा व्यभिचारीभावों। में से विभाव स्थायीभाव रूप चित्तवृत्ति की उत्पत्ति में कारण होते हैं,क्योंकि इन ।रसजन्य अनुभावों। की गणना रस के कारणों में नहीं की जा सकती है ।वे तो रस के कार्यभूत होते हैं।। अपितु ।यहां रस के कारणभूत अनुभावों में ।रत्यादि स्थायी। भावों के ही जो ।पीछे उत्पन्न होने के कारण। अनुभाव हैं।उनका ग्रहण विवक्षित है। और ।निर्वेद आदि। व्यभिचारीभाव चित्तवृत्ति-स्वरूप होने से [`युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम्`] इस नियम के अनुसार रति रूप तथा निर्वेदादि रूप दो प्रकार की चित्तवृत्तियां एक समय में नहीं हो सकती हैं इसलिए। यद्यपि स्थायीभाव के साथ नहीं रह सकते हैं,किन्तु यहां उस ।स्थायीभाव। के संस्कार रूपसे विवक्षित हैं।२.

१- यथा हि नानाव्यंजन संस्कृतमन्नं भुंजाना रसानास्वादयन्ति सुमनस: पुरूषा हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तथा नाना भावाभिनयव्यंजितान् वागंगसत्वोपेतान् स्थायीभावानास्वादयन्ति सुमनस:प्रेक्षका:हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति ।भरतमुनि-नाट्यशास्त्र,

२- तत्र भट्टलोल्लटप्रभृतयस्तावदेवं व्याचख्यु:-विभावादिभि: संयोगोऽर्थात् स्थायिनस्ततो रसनिष्पत्ति: । तत्र विभावश्चित्तवृत्ते: स्थाय्यात्मिकाया उत्पत्तौ

पूर्वावस्था में जो स्थायी है वही व्यभिचारी के सम्पात इत्यादि के द्वारा परिपोष को प्राप्त होकर अनुकार्य में ही रस हो जाता है। नाट्य रस तो उसे कुछ लोग इसलिये कहते हैं कि नाट्य में उसका प्रयोग होता है। १.

विभावों-- ललना आदि आलम्बन और उद्यान आदि उद्दीपन कारणों से रति आदि ।स्थायी। भाव उत्पन्न हुआ, ।रति आदि की उत्पत्ति के। कार्यभूत कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि अनुभावों से प्रतीति के योग्य किया गया, और सहकारी रूप निर्वेद आदि व्यभिचारीभावों से पुष्ट किया गया, मुख्यरूप से अनुकार्यरूप राम आदि में और उनके स्वरूप के अनुसन्धान से नट में प्रतीयमान स्थायि स्थायीभाव ही रस है। २.

कारणम्। अनुभावाश्च न रसजन्या अत्र विवक्षिताः तेषां रस कारणत्वेन गणनानर्हत्वात्। अपि तु भावानामेवेऽनुभावाः। व्यभिचारिणश्च चित्तवृत्त्यात्मकत्वात् यद्यपि न सहभाविनः स्थायिना, तथापि वासनात्मनैह तस्य विवक्षिताः।
--हिन्दी अभिनव भारती, पृष्ठ ४४२--४३.

१- तथाहि पूर्वावस्थायां यः स्थायी स एव व्यभिचारिसम्पातादिना प्राप्तपरिपोषोऽनुकार्यगत एव रसः। नाट्ये तु प्रयुज्यमानत्वान्नाट्यरस इति केचित्।
-- ध्वन्यालोकलोचन, चौखम्बा १९४० ई० पृष्ठ १८४.

२- विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपन कारणैः रत्यादिको भावो जनितः, अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः, व्यभिचारिभिर्निर्वेदादिभिः सहकारिभिरुपचितः, मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्ये, तद्रूपतानुसन्धानान्नर्तकेऽपि प्रतीयमानो रस इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः।
-- काव्य प्रकाश - चतुर्थ उल्लास --.

शंकुक का मत :-

काव्यों के अनुशीलन से तथा शिक्षा के अभ्यास से सिद्ध किये हुए अपने (अनुभव आदि) कार्य से, नट के द्वारा प्रकाशित किये जानेवाले, कृत्रिम होनेपर भी कृत्रिम न समझे जानेवाले, विभाव आदि शब्द से व्यवहृत होनेवाले, कारण, कार्य और सहकारियों के साथ 'संयोग' अर्थात् गम्यगमक भावरूप सम्बन्धसे, अनुमीयमान होनेपर भी वस्तु के सौन्दर्य के कारण तथा आस्वाद का विषय होने से अन्य अनुमीयमान अर्थों से विलक्षण स्थायी रूप से सम्भाव्यमान रति आदि भाव वहां (अर्थात् नट में वास्तवरूप में) न रहते हुए भी सामाजिक के संस्कारों से (स्वात्मगतत्वेन) आस्वाद किया जाता हुआ 'रस' कहलाता है। यह श्री शंकुक का मत है।[1]

काव्य प्रकाश का उद्धरण निश्चय ही उपयोगी है। वह यद्यपि अत्यन्त संक्षिप्त है, फिर भी अभिनव भारती के उद्धरण से उसमें दो मार्मिक स्थलों पर भेद है, जो भट्टनायक के मत की व्याख्या में निश्चयपूर्वक योगदान करता है -- न तटस्थ (नटगत) और न स्वगत रूप से रस की प्रतीति, उत्पत्ति या अभिव्यक्ति होती है। अपितु काव्य और नाटक में अभिधा से द्वितीय, विभावादि के साधारणीकरणरूप भावकत्व नामक व्यापार से भाव्यमान (साधारणीकृत) स्थायीभाव, सत्व के उद्रेक से प्रकाश और आनन्दमय संविद् विश्रान्ति (ब्रह्मास्वाद) के समान, भोग से आस्वादित किया जाता है-- यह भट्टनायक का मत है।[2]

१- काव्यानुसन्धानबलाच्छिक्षाभ्यासनिर्वर्तितस्वकार्यप्रकटनेन च नटे नैव प्रकाशितैः कारण सहकारिभिः कृत्रिमैरपि तथाऽनभिमन्यमानैर्विभावादि शब्द व्यपदेश्यैः 'संयोगात्' गम्यगमक भावरूपात्, अनुमीयमानोऽपि वस्तुसौन्दर्यबलाद्रसनीयत्वेनान्यानुमीयमानविलक्षणः स्थायित्वेन संभाव्यमानो रत्यादिर्भावस्तत्रासन्नपि सामाजिकानां वासनया चर्व्यमाणो रस इति श्री शंकुकः। काव्यप्रकाश-आचार्य मम्मट,

२- न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते, नाभिव्यज्यते अपि तु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी, सत्वोद्रेक प्रकाशानन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्वेन भोगेन भुज्यते। (हि०प्रकाश पृष्ठ १०६-१०७)

वाग्वैदग्ध्य की- वाक्चातुरी की- अभिव्यंजना कौशल की प्रधानता रहने पर भी रस ही काव्य का जीवन है।[१]

"रस अलौकिक चमत्कारकारी उस आनन्द विशेष का बोधक है जिसकी अनुभूति सहृदय के हृदय को द्रुत,मन को तन्मय,हृदय व्यापारों को एकतान,नेत्रों को जलाप्लुत, शरीर को पुलकित और वचन-रचना को गद्गद् रखने की क्षमता रखती है। यही आनन्द काव्य का उपादेय है और इसी की जागति वाङ्.मय के अन्य प्रकारों से विलक्षण काव्य नामक पदार्थ की प्राण प्रतिष्ठा करती है।"[२]

"यह रस मानो प्रस्फुटित होता है, यह मानो हमारे अन्तर में प्रविष्ट हो जाता है, यह मानो हमें सब ओर से अपने प्रेमालिंगन में आबद्ध कर लेता है, उस समय मानो और सब विचार, वितर्क, उद्देश्य आदि तिरोहित हो जाते हैं।"[३]

अभिप्राय यह है कि जब रस का आस्वाद प्राप्त होने लगता है तब विषयान्तर का अनुभव निकट तक नहीं आता है। मानो उस समय एक प्रकार से मुक्ति स्वरूप ब्रह्मानन्द की उपलब्धि होती है,क्योंकि ब्रह्मास्वाद निर्विकल्पक होता है और रसास्वाद सविकल्पक। यह रस अलौकिक चमत्कार होता है। चमत्कार ही रस का प्राण है। चमत्कार का अर्थ है चित्त का विस्तार। इसी कारण कहा है कि "रस का सार चमत्कार ही है।"[४]

रस-बोध में वासना काहोना अत्यन्त आवश्यक है। उसके बिना रस-प्रकाश के कारण रहते भी रस की प्रतीति उसी प्रकार नहीं होती जिस प्रकार नेत्रविहीन को दिखाये गये दृश्यों की और बहरे को सुनाये गये गीतों की।[५]

१- वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।

२- 'रसायन' की भूमिका से।

३-'काव्य-प्रकाश' के लक्षण का भावार्थ।

४- रसे सारः चमत्कारः।

५- सवासनानां सभ्यानां रसस्यास्वादनंभवेत्। निर्वासनास्तु रंगान्तः काष्ठकुड्य-
   श्मसंनिभाः। --- साहित्य दर्पण.

सहृदय-हृदय में (वासनारूप से विराजमान) रत्यादिरूप स्थायीभाव जब (कविवर्णित) विभाव अनुभाव और व्यभिचारिभाव के द्वारा अभिव्यक्त हो उठते हैं तब आस्वाद अथवा आनन्दरूप हो जाते हैं और "रस" कहे जाया करते हैं। १.

काव्य प्रकाशकार आचार्य मम्मट की भी यही रस-सृष्टि है --

"कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।२७।।"

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः।।२८।।२.

अर्थात्-- लोक में व्यावहारिक जीवनमें रति (प्रेम) आदि रूप भावों के ऐसे भावों के जिन्हें अन्य भावों अथवा अन्य चित्तवृत्तियों की अपेक्षा 'स्थायी' भाव अथवा अविच्छिन्नरूप से अवस्थित चित्तवृत्ति विशेष माना जाया करता है जो कारण और कार्य और सहकारी कहे जाया करते हैं वे ही जब काव्य अथवा नाटक में कवि अथवा नाटककार द्वारा उपनिबद्ध हुआ करते हैं तब उन्हें "विभाव" और अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहे जाया करते हैं। अब जिसे रस के रूप में स्मरण किया जाया करता है वह है इन्हीं विभावों, अनुभावों और व्यभिचारीभावों के द्वारा अभिव्यक्त वह भाव जो स्थायीभाव माना जाया करता है।

यथा बहु द्रव्य- युतैर्व्यंजनै बहुभिर्युतम्।
आस्वादयन्ति भुंजाना भुक्तं भुक्तविदो जनाः।
भावाभिनयसंयुक्ताः स्थायिभावास्तथा बुधाः।
आस्वादयन्ति मनसा तस्मान्नाट्यरसाः स्मृताः।। ३.

"विभावानुभाव व्यभिचारिभिरभिव्यक्तःस्थायीभावो रसः।" ४.
रस का पहला अर्थ वेदों में स्पष्ट रूप में मिलता है --

'दधानः कलशे रसम्।' ५.

१- विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा। रसतामेति रत्यादिःस्थायी भावः सचेतसाम्।।१।। साहित्य दर्पण.
२- काव्य प्रकाश-- आचार्य मम्मट.
३- नाट्यशास्त्र --भरतमुनि.
४- काव्यानुशासन २-१, आचार्य हेमचन्द्र.

५ -ऋग्वेद ९,६३,१३.

अन्य वनस्पतियों के द्रव, दुग्ध और जल के अर्थ में भी इसका प्रयोग है। 'शतपथ-ब्राह्मण' में निश्चित रूप में रस का प्रयोग मधु के अर्थ में हुआ है--

'रसो वै मधु।'

इसी रस से ऋक्, यजु और साम की ऋचाओं की सृष्टि हुई है। १.

पंडितराज जगन्नाथ ने रस को काव्य का प्राणतत्व सिद्ध करने में श्रुति के इसी वाक्य का प्रमाण दिया है। वास्तव में जैसा कि डा०नगेन्द्र का मत है, यह बहुत सम्भव है कि साहित्य के आदि आचार्यों ने रस का स्वरूप स्थिर करने में इस वाक्य से प्रेरणा प्राप्त की हो और इसी के आधार पर काव्यानन्द के अर्थ में रस का प्रयोग किया हो --

'जिस प्रकार योगी उस चिदानन्द प्रकाश का अपनी आत्मा में सहज साक्षात्कार करके, पूर्णतः तन्मय होकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है, उसी प्रकार सहृदय भी अपने मानस में नाटक या काव्य के सौंदर्य का सहज साक्षात्कार करके काव्यानन्द का अनुभव करता है।' २. परन्तु इसके द्वारा रस का कोई निश्चित शास्त्रीय रूप स्थिर हो सका था, यह मानना अनुचित होगा। आगे चलकर कठ और उपनिषदों में और उनके आधार पर कालान्तर में दर्शनों में रस रसना की ऐन्द्रिक अनुभूति के पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होता है---

येन रूपं रसं- - - - - - एतेनैव विजानाति। ३.

शब्द स्पर्श रूपरस गन्धाः। ४.

वैशेषिक 'दर्शन' में २४ गुणों के अन्तर्गत रस के रस-रूप का विवेचन मिलता है।

ऋग्वेद से लेकर 'महाभारत' तक रस के लगभग अन्य सभी मुख्य-मुख्य अर्थों की उद्भावना हो चुकी थी, परन्तु साहित्यिक रस पारिभाषिक रूप अभी आविर्भूत नहीं हो पाया था।

१- ऋचामेव तद्रसेन -- यजुषामेव तद्रसेन, साम्नामेव तद्रसेन,--छान्दोग्य उपनिषद् ४, १७.

२- रीतिकाव्य की भूमिका, डा०नगेन्द्र, पृ० ३१.

३- कठोपनिषद्।

४- साहित्य दर्पण--- तृतीय परिच्छेद।

सत्वोद्रेकाद खण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मय:
वेद्यान्तर-स्पर्श: -शून्यो ब्रह्मास्वाद-सहोदर: ।
लोकोत्तर चमत्कार प्राणा कैश्चित्प्रमातृभि:
स्वाकारवदभिन्नत्वे नायमास्वाद्यते रस: ।।

डा० नगेन्द्र ने साधारणीकरण को कवि की अनुभूति बताया है।

रस का पहला अर्थ वेदों में स्पष्ट रूप में मिलता है [1]. अन्य वनस्पतियों के द्रव, दुग्ध और जल के अर्थ में भी इसका प्रयोग है। "शतपथ ब्राह्मण" में निश्चित् रूप से रस का प्रयोग मधु के अर्थ में हुआ है। [2].

यहांपर प्राणतत्व ।सार। और स्वाद दोनों अर्थों का सम्मिश्रण हो जाता है-- परमात्मा रस है और रस अर्थात् चिदानन्द रूप है --" जिसको प्राप्त करके आत्मा परमानन्द का उपभोग करता है। [3]. इसी रस से ऋक्, यजु और साम की ऋचाओं की सृष्टि हुई। [4].

रस कल्लोल के प्रथम चरण में करन कवि ने सर्वप्रथम रस-निष्पत्ति का वर्णन किया है। उनका कथन है कि भरत-सूत्र के कथनानुसार विभाव, अनुभाव और संचारिभाव के संयोग में सदैव ही रस-निष्पत्ति होती है --

भाव विभावनुभाव ये संचारी सुनदाह ।
भरत सूत्र मत कहत हो रस के सदा सदाह ।। ६ ।।[5].

रस निष्पत्ति के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त भरतमुनि से ही चला आ रहा है जिसे करन-कवि ने भी स्वीकार किया है। भरत के परवर्ती मम्मट आदि सभी प्राचीन आचार्य इससे सहमत हैं। रस के विषय में जनन्जय की भी यही धारणा दृष्टिगोचर होती है।

१- ऋग्वेद ६, ६३, १३ "दधान: कलशे रसम् ।"
२- "शतपथ ब्राह्मण" -- "रसो वै मधु ।"
३- "रस सार: चिदानन्द प्रकाश:" छान्दोग्य उपनिषद् .
४- ऋचामेव तद्रसेन , यजुषामेव तद्रसेन, साम्नामेव तद्रसेन । छान्दोग्य उपनिषद् ४-१७.
५- ग्रन्थ- रस कल्लोल, पृष्ठ संख्या- १, , कवि करन ।

नव रस-वर्णन :--

रस की संख्या के निर्धारण में प्राय: आचार्य एकमत नहीं रहे हैं। भरतमुनि ने पहले आठ ही रस गिनाए हैं।[1] पीछे से उन्होंने शान्त रस को भी गिनाया है। शान्तरस को आचार्यों ने बड़े संकोच के साथ रस माना है।[2] मम्मटाचार्य ने तो शान्त को रसों की श्रेणी से बिल कुल ही निकाल दिया।[3] फिर कुछ सोच-समझ कर उन्होंने निर्वेद प्रधान शान्तरस को भी रसों में स्थान दिया है।[4]

धनंजय 'शम' को स्थायीभाव इसलिए नहीं मानते कि रूपक में इसका विकास नहीं होता, परन्तु रूपक[5] से इतर काव्य में इसको रस मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है, जैसा कि भानुदत्त[6] आदि आचार्यों ने स्वीकार भी किया है। केशव ने भी काव्य में नौ ही रसों का उल्लेख किया है --

---

१- शृंगार हास्यकरुण रौद्रवीर भयानका: ।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा: स्मृता: ।। ना०शा०,अ०-६,पृ०-६१.

२- शृंगारहास्य करुण रौद्रवीर भयानका: ।
बीभत्साद्भुत इत्यष्टौ रसा: शान्त स्तथा मत: ।। सा०द०,परि०-३,का०सं०-२१३.

३- शृंगारहास्य करुण रौद्रवीर भयानका: ।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा: स्मृता: ।। का०प्र०,उ०-४, पृ०-४०.

४- निर्वेद स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस: ।।
का० प्र०, उ० ४, पृ० ४७.

५- शममपि केचित्प्राहु: पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ।
--दशरूपक , पृ० ४, श्लो० ३५.

६- नाट्यभिन्ने परं निर्वेद स्थायि भावक: शान्तोऽपि नवमो रसो भवति ।।
-- रस तरंगिणी, तरंग-७, पृ०-१६३.

प्रथम श्रृंगार सुहास्यरस,
करुणा रुद्र सुबीर ।
भय बीभत्स बखानिये,
अद्भुत शान्त सुधीर ।।

करन ने भी नव रस वर्णन करते हुये रसों की भी संख्या बताई है, उनके क्रम में भी साम्य है --

श्रृंगार हास्य अरु करुन,
पुन रौद्र बीर रे जान ।
कहि भयान बीभत्स अरु,
अद्भुत सांत बखान ।। १० ।।[1]

वस्तुत: करन ने भरत एवं मम्मटाचार्य के द्वारा निर्दिष्ट नव रसों को उन्हीं के क्रमानुसार स्वीकार किया है, जो उनके पाण्डित्य का प्रतीक है ।

१- रस कल्लोल, पृष्ठ संख्या- १ , कवि करन ।

रस के अवयव -- भावादि

भाव:--

'रसिक प्रिया' के छठे प्रकाश में केशव ने भावों का लक्षण बड़ी स्वतन्त्रता के साथ किया है। मुख, नेत्र तथा वचनों से जो मन की बात प्रगट होती है वही भाव है।[1] वस्तुत: यह भाव का लक्षण न होकर अनुभाव का ही लक्षण जान पड़ता है। किसी भी संस्कृत आचार्य ने भाव का ऐसा लक्षण नहीं किया है। केशव ने भावों के पांच प्रकार स्वीकार किये हैं -- विभाव, अनुभाव, स्थायीभाव, सात्विक तथा व्यभिचारी।[2]

भरतादि सभी आचार्य 'सात्विक' को 'अनुभाव' के अन्तर्गत मानते हैं। आचार्य करन ने भाव की व्याख्या भिन्न ढंग से प्रस्तुत की है। उनका कथन है कि जो रस के अनुकूल है वही भाव है। विभाव, अनुभाव, स्थायीभाव तथा व्यभिचारी भावों को भाव के विभिन्न भेद अस्वीकार कर भाव के प्रकार का नवीन एवं मौलिक उद्घाटन प्रस्तुत किया है। इन्होंने भाव के दो प्रकार स्वीकार किये हैं ---

१- मानसिक २-शारीरिक

भाव

१. मानसिक २.शारीरिक

रस अनुकूल विकार कों,
भाव कहत कवि गौत।
इक मानस शारीर इक,
है विध होत उदोत ।। ८ ।।[3]
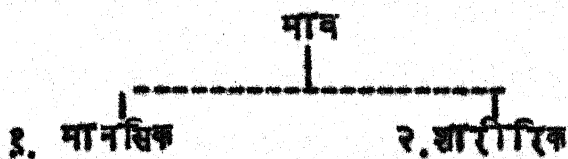
१- आनन लोचन वचन मग, प्रगटत मन की बात।
वाही सो सब कहत हैं, भाव कविन के तात ।।--र०प्रि०, पृ० ६, छं० १.

२- भाव सु पांच प्रकार को सुन विभाव अनुभाव।
अस्थाई सात्विक कहि, व्यभिचारी कविराय ।। --र०प्रि०, पृ० ६, छं० ६.

३- रस कल्लोल, पृष्ठ संख्या-१, कवि करन।

आचार्य करन कवि ने 'मानसिक' भाव को दो प्रकार का माना है--

मानसिक भाव

स्थाई भाव | संचारी भाव
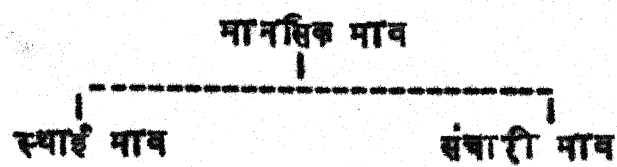
तदुपरान्त 'शारीरिक' भाव को दो भागों में विभक्त किया है---

स्थाई जो संचारिया,
दुविधि मानसिक मान ।
कहि विकार शरीर सब,
सात्विक भाव बखान ।। ६ ।।[1]
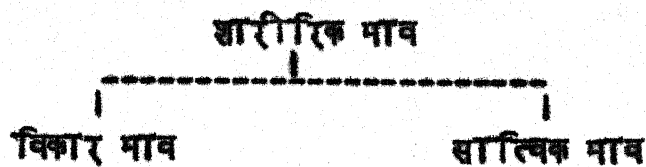
संस्कृत पूर्ववर्ती एवं परवर्ती आचार्यों ने भाव को चार वर्गों में विभाजित किया है, किन्तु करन ने भाव के दो नवीन प्रकार मानसिक और शारीरिक भावों का दिग्दर्शन कराया है। स्थायी और संचारी को मानसिक भाव के दो प्रकार तथा विकार और सात्विक को शारीरिक भाव के दो भेद बताये हैं।

करन के भाव विभाजन के इस नवीन विभाजन को देखते हुये ज्ञात होता है कि करन एक उच्चकोटि के कवि थे, जिन्होंने भाव विभाजन के क्षेत्र में अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि का प्रदर्शन किया ।

१- रस कल्लोल, पृष्ठ संख्या- १, कवि करन ।

स्थायी भाव :--

'स्थायीभाव' उस भाव को कहा करते हैं जो कि न तो किसी अनुकूल भाव से तिरोहित हुआ करता है और न किसी प्रतिकूल भाव से ही दबा करता है। यह भाव तो अन्तक अवस्थित रहनेवाला भाव है, और इसी में रस के अंकुरण की मूलशक्ति निहित रहा करती है।[1]

कोशकार तो मन के विकार को ही भाव[2] कहते हैं, पर आचार्य भरत का कहना है कि कवि के अन्तर्गत भाव की भावना करने से भाव की संज्ञा[3] है। अनेक साहित्यकार इसी मत के अनुयायी हैं। चित्तवृत्ति का रसानुकूल होना भाव है,[4] शुक्लजी कहते हैं कि "भाव का अभिप्राय साहित्य में तात्पर्य बोधमात्र नहीं है, बल्कि वेगयुक्त जटिल अवस्था विशेष है जिसमें शरीरवृत्ति और मनोवृत्ति दोनों का योग रहता है।"

भय, अनुराग, करुणा, क्रोध, आश्चर्य, उत्साह, हास तथा घृणा ये ही हमारे आठ मूल भाव हैं जो सदा के साथी हैं।[5]

शास्त्रकारों ने स्थायीभावों का बड़ा गुणगान किया है। इन्हें राजा और गुरु की उपाधि[6] दी है।

१- अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः ।
   आस्वादांकुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति सम्मतः ।। १७४ ।।
   --- साहित्य दर्पण, विश्वनाथ ।

२- विकारो मानसो भावः -- अमरकोष ।

३- कवेरंतर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते । -- नाट्यशास्त्र ।

४- रसानुकूलो भावो विकारः । --- रसतरंगिणी - भानुदत्त.

५- जात एव हि जन्तुः इयतीभिः संविद्भिः परीतो भवति । -- अभिनव गुप्त.

६- यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः ।
   एवं हि सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह ।। -- नाट्यशास्त्र.

इन्हें स्थायी भाव कहने का कारण यह है कि ये ही भाव बहुलता से प्रतीत होते हैं[1] और ये ही आस्वाद के मूल हैं। अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की टीका में स्थायी भावों की पुष्टि में जो तर्क उपस्थित किये हैं उनसे यह सिद्ध है कि स्थायीभाव मूलभूत और सद्भाव है।[2] जो स्थायीभाव।नाट्यशास्त्र में। बताये गये हैं वे क्रमशः निम्नलिखित हैं ---१.रति २.हास ३.शोक ४.क्रोध ५.उत्साह ६.भय ७.जुगुप्सा और ८.विस्मय ।[3]

नाट्य अथवा अभिनयात्मक काव्य-प्रबन्ध में जिन रसों के आस्वाद। का स्मरण किया जाया करता है, वे आठ हैं -- १.शृंगार २.हास्य ३.करुण ४.रौद्र ५.वीर ६.भयानक ७.वीभत्स ८.अद्भुत।[4]

कवि करन ने अपने ग्रन्थ "रस कल्लोल" में स्थायीभाव के लक्षण नहीं दिये हैं, स्थायीभावों के केवल नाम ही नहीं गिनाए हैं। वे नौ स्थायीभाव स्वीकार करते हैं -- रति, हास, शोक, क्रोध, मोह, भय, ग्लानि, विस्मय तथा निर्वेद --

रति हासी अरु सोक पुन
क्रोध मोघ भय ग्लान।
अचरज अरु निर्वेद ए
स्थाई भाव बखान।। ११ ।।[5]

१- बहूनां चित्तवृत्तिरूपाणां भावानां मध्ये यस्य बहुलं रूपं यथोपलभ्यते स स्थायी भाव:।

२- नाट्यशास्त्र गायकवाड़ संस्करण पृष्ठ २८३,२८४,२८५ देखो।

३- रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयन्तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावा: प्रकीर्तिता:।। ३० ।। -- काव्य प्रकाश.

४- शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीर भयानका:।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा: स्मृता:।। २९ ।।
--- काव्य प्रकाश - चतुर्थ उल्लास.

५- रस कल्लोल, पृष्ठ संख्या-६, कवि करन।

भरत और भोज ने आठ स्थायीभावों का इसी क्रम से उल्लेख किया है। केशव ने भी आठ स्थायीभाव माने हैं, रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, निन्दा तथा विस्मय।[१] करन ने निर्वेद को भी स्वीकार किया है जबकि अन्य आचार्यों ने इसे अपने काव्य-सिद्धान्त में स्थान नहीं दिया। स्थल-स्थल पर करन की मौलिकता की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

स्थायीभाव के निरूपण में प्रमुख रूप से भोज, मम्मट, भरत आदि आचार्यों को आधार बनाया गया है, परन्तु स्वयं स्थायीभाव का नाम निर्देश तथा उनके लक्षण करन के अपने हैं। कवि करन ने इन भेदों के उदाहरण भी अपने ही दिये हैं।

स्थायी भाव के भेद

रति-लक्षण :

रति लक्षण का निरूपण करते हुये कवि करन कहते हैं कि जहां प्रियजन को देखकर हृदय में विकार उत्पन्न हो तथा कभी प्रिय के दर्शन हेतु, कभी उसके शब्दों का श्रवण करने के लिये हृदय व्याकुल हो वहां रति भाव समझना चाहिये--

दृस्ट वस्तु हीहा जनित,
मन विकार वह सोइ।
कहु दरसन सुमिरन श्रवन
कारन पूरव सोइ ॥ १२ ॥[२]

यथा :-

सुरत सरित सुखर बिटप
बिरह भार की नीव।
कहो सु कैसे राध
सों अंकुरित प्रफित ॥ १३ ॥[३]

१- रति हासी अरु शोक पुनि, क्रोध उछाह सुजान।
भय निन्दा विस्मय तथा, स्थाई भाव प्रमान ॥ --र०प्रि०,प्र०-६, छं०-६.

२- रस कल्लोल, पृ०सं०- १, कवि करन।

३- रस कल्लोल, पृ०सं०- २, कवि करन।

काव्य-दर्पणकार विद्यावाचस्पति पं०रामदहिन मिश्र 'रति' भावका विवेचन करते हुये लिखते हैं--'किसी अनुकूल विषय की ओर मन की रुझान को रति कहते हैं।' प्रीति, प्रेम अथवा अनुराग इसकी संज्ञायें हैं।

'स्थायीभाव' जब सहायक सामग्री से परिपुष्ट होकर व्यंजित होता है तब रस में परिणत हो जाता है। जैसे- श्रृंगार रस में रति स्थायी भाव होता है। परन्तु जहां परिपोषक सामग्री नहीं रहती वहां स्वतन्त्र रूप से स्थायीभाव ही ध्वनित होता है।

यथा :-क. जासु विलोकि अलौकिक शोभा,

सहज पुनीत मोर मन छोभा।

सो सब कारण जान विधाता,

फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।। --- तुलसी.

सीता की शोभा देख राम के मन में छोभ होने और अंग फड़कने से केवल रति भाव की व्यंजना है।

ख. हृदय की कहने न पाती,

उमंग उमंग उठती बैठ जाती।

मैं रही हूं दूर जिससे,

वह बुलाते पास क्यों। -- महादेवी.

इस प्रकार की डांवाडोल स्थिति में रति भाव की व्यंजना है।[१]

भरतमुनि:- 'तत्र रतिर्नाम आमोदात्मको भाव:।'[२]

दश रूपककार:- 'प्रमोदात्मा रति: सैव यूनोरन्योन्यरक्तयो:।'[३]

पं०राज जगन्नाथ :- स्त्रीपुंसयोरन्योन्यालम्बन: प्रेमाख्यश्चित्तवृत्ति विशेषो रति: स्थायीभाव।[४]

१- काव्य दर्पण-- पृ०सं०-६४ , --- पं०रामदहिन मिश्र।

२- नाट्यशास्त्र ७।८.

३- नाट्यशास्त्र ४।५८.

४- रसगंगाधर: पृ० १३०.

विश्वनाथ :- "रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम् ।"[1]

भोजराज "रति" के 12288 भेदापभेद किये हैं,[2] किन्तु कवि करन ने रति के लक्षण का विवेचन मात्र किया है, उनके भेदापभेद नहीं बताये हैं।

"रति" लक्षणों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि करन ने पंडितराज जगन्नाथ के लक्षण का लगभग अनुसरण किया है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति मौलिक ढंग से की है।

हास्य लक्षण :--

काव्य दर्पणकार हास-भाव का निरूपण करते हुये कहते हैं---

"विकृत वचन, कार्य और रूप-रचना से सहृदय के मन में उल्लास उत्पन्न होता है, उसे हास कहते हैं।[3] जैसे--

दूर क्यों न बांस की है बांसुरी को धर देते,
पास में सिनेमा एक टाकी रख लीजिये ।
छोड़कर पीताम्बर पीला ज्यों दुपट्टा दिव्य,
शर्ट और पैंट बस सबकी कर लीजिये ।
मक्खन, मलाई, दूध, दूध का विचार त्याग,
होल मधुशाला एक साकी रख लीजिये ।
शंख, चक्र, गदा, पद्म छोड़ चारों हाथ बीच,
छड़ी, घड़ी, हैट और हाकी रख लीजिये ।

------ चोंच[4]

काव्य प्रकाश में "हास" लक्षण निम्न प्रकार किया गया है --

"हास"--"वागादिवैकृतैश्चेतो विकासो हास उच्यते ।"[5] हास लक्षण का निरूपण करते हुये करन कहते हैं कि "विकृत वचन, रूप-रचना तथा कार्य से सहृदय के मन में लालित्य उत्पन्न होता है, वहां हास्य समझना चाहिये ।"

1- साहित्य दर्पण 3।176.
2- शृंगार प्रकाश, 11.
3- काव्य दर्पण, पृ०सं० 64. ग्रंथकार -
4- विद्यावाचस्पति पं०रामदहिन मिश्र.
5- काव्य प्रकाश, पृ०सं० 61. ग्रंथकार-भट्टाचार्य.

ख्याल वचन अरु वेष कृत

मन विकार जह हीरन[1]।

अमर पूर विलसत ललित

हास्य कहत कवि गोत ।। १४ ।।[2]

यथा :-- उठे तुरन्त संकुचित[3]

चित्ते औंठ चुनरी वेस ।

लगी निरष नंदलाल के

हिय में हांसी लेस ।। १५ ।।[4]

यहां पर श्रीकृष्ण के संकुचित होने से ।कार्य। उनके शरीर की रूप-रचना को देख कर हृदय में हंसी उत्पन्न होने लगी ।

कवि करन के हास लक्षण को सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकित करने पर ज्ञात होता है कि पं०रामदहिन मिश्र का सामान्य लक्षण करन के सहज `हास` लक्षण का प्रतिरूप है। यही भाव साहित्य दर्पणकार का भी है--

" वांगादिविकृतिश्चैतो विकासो हास इष्यते ।। १७६ ।।[5]

शोक लक्षण :--

रस विन इस्ट वियोग कृत

मन विकार जिहि ठौर ।

अमर पूर विलसत जहां

सोक कहत सिर मौर ।। १६ ।।[6]

१- पाठ भेद प्र० हीस, द्वि० हीह ।

२- रस-कल्लोल -- कवि करन, पृष्ठ संख्या २.

३- पाठ भेद प्र० संचलित, द्वि० संकुचित ।

४- रस कल्लोल -- कवि करन, पृष्ठ संख्या २.

५- साहित्य दर्पण -- विश्वनाथ, पृष्ठ संख्या २२७.

६- रस कल्लोल -- कवि करन, पृष्ठ संख्या २.

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि करन शोक लक्षण का निरूपण करते हुये कहते हैं-- रति की अनुप स्थिति में, अपने प्रिय के वियोग में जो मनोविकार उत्पन्न होता है वहां शोक भाव समझना चाहिये ।

यथा :-- देखत वनता कंस की

रोवत विगत उछाह ।

उपजो ब्रज भूषन ही

ये करुन कली उर माह ।। १७ ।।[१.]

यहांपर कंस की पत्नि को विलख-विलख कर रोता हुआ देख श्रीकृष्ण के हृदय में करुणारस उत्पन्न हो उठा । पं०रामदहिन मिश्र शोक भाव का लक्षण इस प्रकार देते हैं-- "प्रिय पदार्थ" का वियोग, विभवनाश आदि कारणों से उत्पन्न चित्त की विकलता को शोक कहते हैं ।[२.] शोक भाव का उदाहरण इस प्रकार दिया है---

दुख की दीवारों का बंदी निरख सका न सुखी जीवन ।

सुख के मादक स्वप्नों तक से बनी रही मेरी अनबन ।।

------ हरिकृष्ण प्रेमी.

यहां केवल शोक भाव की व्यंजना है । करुणारस की पुष्टि नहीं है । साहित्य-दर्पण में "शोक" का लक्षण इस प्रकार दिया गया है--

"शोक" -- "इष्टनाशादिभिश्चेतोवैक्लव्यं शोक उच्यते ।"[३.]---- साहित्य दर्पण.

करन ने "शोक" लक्षण का उदाहरण प्रस्तुत किया है, लक्षण के साथ-साथ उदाहरण प्रस्तुत करना "करन" की अपनी मौलिकता है ।

१- रस कल्लोल - कवि करन, पृष्ठ संख्या २.

२- काव्य दर्पण, पृष्ठ संख्या ६४-६५.

३- साहित्य दर्पण -- विश्वनाथ, पृष्ठ संख्या २२८.

-- क्रोध --

करन 'क्रोध' लक्षण का विवेचन करते हुये कहते हैं-- जहां आज्ञा का उल्लंघन होने से अप्रसन्नता, हृदय में अपमान जागृत हो वहां क्रोध समझना चाहिये ।

कहत अवज्ञादिक जनित
जह प्रमोद प्रतकूल ।
उठत जाग परमित हिये
क्रोध कहत मत भूल ।। ९८ ।।[1]

यथा :-- देखत छत्रिन की छटा
समर समथ्य भुवाल ।
शोणित लोचन क्रोध कि-
पसीजाद लोचन लाल ।। ९९ ।।[2]

यहां पर युद्ध-भूमि में क्षत्रियों की छटा देखकर नेत्रों में क्रोध उत्पन्न होने लगा ।

काव्य दर्पणकार कहते हैं---'असाधारण अपराध, विवाद, उत्तेजनापूर्ण अपमान आदि से उत्पन्न हुए मनोविकार को क्रोध कहते हैं ।'

उठ वीरों की भाव-रागिनी, दलितों के दल की चिनगारी ।
युग-मर्दित यौवन की ज्वाला, जाग-जाग-री क्रांति कुमारी ।।
----- दिनकर.

यहां कवि की ललकार से क्रोध की ही व्यंजना है । रौद्ररस की पुष्टि नहीं है ।[3]

साहित्य दर्पण में 'क्रोध' का लक्षण इस प्रकार किया है ---

'क्रोध'-- 'प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्य प्रबोधः क्रोध इष्यते ।। १७७ ।।[4]
---- साहित्य दर्पण.

१- रस कल्लोल -- कवि करन, पृष्ठ संख्या २.

२- रस कल्लोल -- कवि करन, पृष्ठसंख्या २.

३- काव्य दर्पण, पृष्ठ संख्या ८५. ग्रन्थकार- विद्यावाचस्पति पं०रामदहिन मिश्र । प्रकाशक- ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना- ४.

४- साहित्य दर्पण-- विश्वनाथ, पृ० २२८.

-- उत्साह --

"कार्य करने का अभिनिवेश, शौर्य आदि प्रदर्शित करने की प्रबल इच्छा को उत्साह कहते हैं।" जैसे--

यदि रोकें रघुनाथ न तो मैं अभिनव दृश्य दिखाऊं ।
क्या है चाप सहित शंकर के मैं कैलाश उठाऊं ।।
जनकपुरी के सहित चाप को लेकर बायें कर में,
मारत भूमि में आऊं नृप, सुनिये पल भर में ।।

------- रा० च० उ०.

'यदि रघुनाथ न रोकें' इस वाक्य के उत्साह भाव मात्र रह जाता है। यहां वीर रस की पूर्णता नहीं होती। [१].

मम्मटाचार्य 'उत्साह' का लक्षण निरूपण करते हुये लिखते हैं---

उत्साह :--'कार्यारम्भेषु संरम्भ: स्थेयानुत्साह उच्यते।' [२].

-------- साहित्य दर्पण.

'करन' ने उत्साह का लक्षण इस प्रकार बताया है ---

आखिल सुर वारन सुभट-
अनिक सन्ध्या भाव ।
कहत अतुरन संकल कवि,
सो उत्साहर गाव ।। २० ।। [३].

यथा:-

सैन सकल साजि लिये-
क्रोध किये दस माथ ।
आइव रघुबर निरख मन-
निश्च लियो धन हाथ ।। २१ ।। [४].

१- काव्य दर्पण --पं०रामदहिन मिश्र, पृष्ठ संख्या ६६.

२- काव्य प्रकाश, पृष्ठ संख्या ६१.

३- रस कल्लोल -- कवि करन, पृष्ठ संख्या २.

४- रस कल्लोल--कवि करन, पृष्ठ संख्या २.

-- भयानक --

"हिंसक जीवों का दर्शन, महापराध, प्रबल के साथ विरोध आदि से उत्पन्न हुई मन की विकलता को भय कहते हैं।"[1].

`भय` -- रौद्रशक्त्या तु जनितं चैक्लव्यं मनसो भयम् ।[2].

साहित्य दर्पणकार ने `भय` का लक्षण इस प्रकार दिया है--

"किसी भीषण वस्तु की विभीषिका-शक्ति से उत्पन्न चित्त के वैकल्य का नाम `भय` है।"[3].

आचार्य करन ने `भयानक` का लक्षण इस प्रकार दिया है--

दीरघ निकरार बसत पूंत
अमर पूर जब होइ ।
जहाँ अन्यथा भाव है
कहत सकल भय सोइ ।। २२ ।।[4].

यथा :--

सुन गरजत दुंदुभि
न नद तरजत गज समदाइ ।
मंद मंदि रन सुभट
जबरिगनी मनौ डराइ ।। २३ ।।[5].

१- काव्य दर्पण, पृष्ठ संख्या-६६, ग्रंथकार-विद्यावाचस्पति पं०रामदहिन मिश्र.

२- काव्य प्रकाश, मम्मटाचार्य, पृष्ठ संख्या-६१.

३- `रौद्रशक्त्या तु जनितं चित्तवैकल्यदं भयम् ।। १९८ ।।
--- साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृ०-२२८.

४- रस कल्लोल - कवि करन, पृष्ठ संख्या-३.

५- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या-३.

-- जुगुप्सा --

"घृणा या निर्लज्जता आदि से उत्पन्न मन आदि इन्द्रियों के संकोच को जुगुप्सा कहते हैं।"

लखि विरूप सूरपनखे रुधिर चरवि चुचुवात।

सिय हिय में घिन की लता, मई सु है-है पात।

------ प्राचीन,

यहां "है-है पात" से घृणा की व्यंजनामात्र होती है। वीभत्स रस का पूर्ण परिपाक नहीं होता।[1] मम्मटाचार्य ने जुगुप्सा का लक्षण निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है--

"जुगुप्सा"--"जुगुप्सा गर्हणार्थानां दोषमाहात्म्यदर्शनात्।[2]

साहित्य दर्पण में विश्वनाथ ने जुगुप्सा का अभिप्राय लक्षण इस प्रकार दिया है-- "जुगुप्सा का अभिप्राय है किसी घृणास्पद वस्तु के दोष-दर्शन आदि-आदि से उत्पन्न अथवा विस्मय जनित घृणा-भाव का।[3] कवि "करन" ने "जुगुप्सा" का लक्षण इस प्रकार दिया है--

कद रूप वस्त्र विलोक

सुन उपजत जहाँ गिलान।

ताहि जुगुप्सा कहत है

पूरन ताकी हान ।। २४ ।।[4]

यथा :-- जाविपद्द मर सोन पंथ

लो पल करदम की ग्लान।

उदर विदारो वृषभ को

न देवीलान ।। २५ ।।[5]

१- काव्य दर्पण, पृ०सं०- ६६, ग्रन्थकार-- विद्यावाचस्पति पं०रामदहिन मिश्र।

२- काव्य प्रकाश, पृष्ठ संख्या-६१, -- मम्मटाचार्य।

३- "दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा ।। १७६ ।।

---- साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृ०सं०-२२८,

४- रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठ संख्या- ३,

५- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ३,

-- विस्मय

`अपूर्व वस्तु को देखने-सुनने या स्मरण करने से उत्पन्न मनोविकार को आश्चर्य कहते हैं।` जैसे--

फट गयी तवा तमाम क्षण भर में,
कैदी वीर काफिर के भीम बाहुबल की ।
कोई कहता था यह जादू का तमाशा है,
कोई कहता था असंभव त्रिकाल में ।
तोड़ देना सात तवे एक-एक मन का,
एक बाणा मार के ------------आर्यावर्त ।

यहाँ तवा तोड़ने की बात में विश्वास न होने के कारण आश्चर्य भाव की ही व्यंजना है। अद्भुत रस नहीं ।[1]

मम्मटाचार्य ने `विस्मय` का लक्षण इस प्रकार दिया है--

`विस्मय`-- `विविधेषु पदार्थेषु लोक सीमातिवर्तिषु ।
विस्मयश्चित्तविस्तारो वस्तु माहात्म्यदर्शनात् ।।`[2]

`विस्मय` लक्षण का निरूपण करते हुये करन कहते हैं--`चमत्कारपूर्ण वस्तु को देखने, सुनने से उत्पन्न मनोविकार को कविगण तथा विद्वान लोग `विस्मय` कहते हैं।`

चमित्कार दरसन श्रवन
जन जु अन्यथा भाव ।
अमर पुर विस्मय कहत
कवि जन सुमत सुभाव ।। २६ ।।[3]

यथा :-- दीपत दिपत संकुलता
लखि विस्मित जग भूप ।
मानो बहुत सुरत नहि
दमयन्ती के रूप ।। २७ ।।[4]

१- काव्य दर्पण, पृ०सं०-९७, ग्रन्थकार--विद्यावाचस्पति पं०रामदहिन मिश्र ।
२- काव्य प्रकाश -- मम्मटाचार्य, पृ०सं०-९१.
३- रस कल्लोल-- कवि करन, पृ०सं०-३.
४- रस कल्लोल --कवि करन, पृ०सं०-३.

यहांपर `विस्मय` का सुन्दर व सरस चित्रण किया गया है। `विस्मय` लक्षण निरूपण में कवि ने पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुसरण किया है। काव्य दर्पणकार के `विस्मय` लक्षण को ज्यों-का-त्यों स्वीकार किया है। विश्वनाथ की उक्ति भी ऐसी ही है-- अलौकिक पदार्थों के दर्शनादि से संभूत चित्त का विस्तार ही `विस्मय` है।[1] `करन` ने आलौकिक पदार्थों के दर्शन को न ले चमत्कारपूर्ण पदार्थों के दर्शन को अपने `विस्मय` लक्षण का विषय स्वीकार किया है। करन के `विस्मय` लक्षण के उदाहरण में विस्मय के स्पष्ट दर्शन मिलते हैं, `अद्भुत रस` की व्यंजना नहीं मिलती।

-- निर्वेद --

तत्व-ज्ञान होने से सांसारिक विषयों में जो विराग-बुद्धि उत्पन्न होती है, उसे निर्वेद कहते हैं।[2] विश्वनाथ एवं मम्मटाचार्य ने `निर्वेद` को स्थायी भाव का भेद न मान कर व्यभिचारी भाव का भेद माना है। स्थायीभाव का नवां भेद `शम` को मानते हैं। करन ने `निर्वेद` को `स्थायीभाव` का नवां प्रकार स्वीकार किया है।

साहित्य दर्पण में निर्वेद तत्वज्ञान आदि से समुद्भूत स्वावमानन अर्थात् अपने संबंध में तुच्छता की बुद्धि निर्वेद है।[3]

`निर्वेद` लक्षण का निरूपण करते हुये `करन` कहते हैं--`संतों की संगति से सांसारिक विषयों में वैराग्य मनोविकार को `निर्वेद` कहते हैं।

१- विविधेषु पदार्थेषु लोक सीमातिवार्तिषु ।। १७६ ।।
विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृत: ।
----- साहित्य दर्पण,पृ० २२८.

२- काव्य दर्पण --विद्यावाचस्पति पं०रामदहिन मिश्र, पृ०-६७.

३- तत्वज्ञानापदीर्ष्यादेर्निर्वेद: स्वावमाननम् ।
----- साहित्य दर्पण-विश्वनाथ,पृ०-२०५.

सब संगादिक विपत ते

उपजति परमित चत्र ।

मन विकार निर्वेद सौं

जान लीज्यौ चत्र ॥ २८ ॥[1]

यथा:-- निरख रैन सब संपदी

जदपति सकल नरेस ।

उपजो क्रा मूण्न क्रिये

त्याग कुंच्य कौ लेस ॥ २९ ॥

कृम ते नाहू रसन मैं

माई परमट होता ।

याही ते सब भात कौ

सुख कौ कहत उदोत ॥ ३० ॥[2]

यहां वैराग्य का मनोविकार होने से "निर्वेद" भाव मात्र माना जायेगा । शान्त रस का पूर्ण परिपाक नहीं होता है ।

काव्य दर्पणकार विद्यावाचस्पति पं०रामदहिन मिश्र का निर्वेद लक्षण निरूपण कवि करन के "निर्वेद" लक्षण से कतिपय सीमातक कुछ साम्य रखता है । मिश्र ने तत्व-ज्ञान होने से, किन्तु करन ने संतों की संगति से सांसारिक विषयों में वैराग्य मनोविकार को "निर्वेद" कहा है ।

१- रस कल्लोल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ३.

२- रस कल्लोल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ३.

-- विभाव --

करन के अनुसार जिनके द्वारा विभिन्न रसों का पुष्टीकरण होता है वह "विभाव" है। विभाव दो प्रकार के होते हैं, एक "आलम्बन" विभाव है तथा दूसरा "उद्दीपन" विभाव है।

मागन माखन कर सदा
होत जुहै परपुष्ट।
रस ताही सौं कहत पै
रस विधान के संतुष्ट ॥ ३१ ॥

तिहि विभाव है भाति कौ
सकुवन कही बखान।
आलम्बन है येक पुन
उद्दीपन इक जान ॥ ३२ ॥[1]

आलम्बन विभाव के लक्षण का निरूपण करते हुये करन कहते हैं-- नवल वधू के मिलन से हृदय में विशेष भाव का उदय होता है। उसे रस का आलम्बन कहते है। जिससे उद्दीपन होते हैं उसे उद्दीपन कहते हैं--

आलम्बन मिल होत है
नवल वधू अनुनाह।
उद्दीपन उपम सुक सनि
चंदन जल वाह ॥ ३३ ॥

होत नाहि आलंब
रस ते आलंबन जान।
पै उद्दीपन करत
रस ते उद्दीपन मान ॥ ३४ ॥[2]

१- रस कल्लोल --कवि करन, पृष्ठ संख्या- ३.
२- रस कल्लोल --कवि करन, पृष्ठ संख्या- ४.

आलम्बन विभाव का उदाहरण प्रस्तुत करते हुये कहते हैं---

सरस सलोनी सुमन गुन सौहत सुपरन बेल ।

जामें मदमातौ सदा करत स्याम कलोल ।। ३५ ।।[1]

उद्दीपन जथा :--

कंटकित गात हौत विपन समाज देख

हरी हरी भूम हेर हियौ लरजत है ।

निपट बवाई भाई बंधु पै बसंत[2]

गावै दाव परै जान केन कौउ बरजत है ।

यै तै पै करन धुन परत मयूरन की

चात्रिक पुकार तेह ताप सरजत है ।

बरसौ न भामी तू नगर जौ चलत

वे रे रे घन वैरी अब काहे गरजत हैं ।। ३६ ।।[1,2]

केशव के अनुसार जिनके सहारे विभिन्न रसों का प्रकटीकरण होता है वह 'विभाव' है । करन के सादृश्य केशव ने भी विभाव के दो प्रकार बताये हैं, एक 'आलम्बन' विभाव है तथा जिनके द्वारा रस उद्दीप्त होते हैं, वह 'उद्दीपन' विभाव है । रस ज्ञान है, वह जिसका सहारा लेता है उसे आलंबन कहते हैं ।[3]

१- रस कल्लौल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ४.

२- रस कल्लौल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ४.

३- जिनके जानत अनेक रस प्रकट होत अनायास ।

तिनसौं विभति विभाव कहि वर्णत केशवदास ।। २ ।।

सौ विभाव द्वै भाँति के, केशवदास बखान ।

आलम्बन इक दूसरौ, उद्दीपन मन आन ।। ४ ।।

जिन्हें ज्ञान अवलंबई, ते आलम्बन जान ।

जिनतै दीपति होत है, ते उद्दीप बखान ।। ५ ।।

---रसिकप्रिया, पृष्ठ० ८९-९०.

करन का यह लक्षण अपने ही ढंग का है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर करन के आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव के लक्षणों में एवं विश्वनाथ के विभाव के सामान्य लक्षण का भी भाव करन से मिलता है[2]। भानुदत्त के विभाव के लक्षणों का भी यही भाव है।[3] (हस्तलिखित: लक्षणों में साम्य है।)

भरतमुनि के विभाव, आलम्बन तथा उद्दीपन के लक्षणों का भी यही भाव है।[4]

केशव के आलम्बनों के अन्तर्गत इन वस्तुओं का उल्लेख किया है-- युवा नायक-नायिका, रूप जाति और लक्षणयुक्त सखियां, कोकिला की कूक, बसन्त ऋतु, फूल, फल, दल, भ्रमर-गुंजार, उपवन, जलयुक्त सरोवर, निर्मल कमल, चातक, मोरों का शब्द, विद्युत, सघन बादल, आकाश, रमणीय सेज, दीपक, सुगन्धित गृह,

---

१- आलम्बनो नायिकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात् ।
--- सा०द०, परि०-३, का० सं०-६५.

उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये ।
--- सा०द०, परि०-३, का०सं०-१६४.

२- रत्याद्युद्बोधका लोके विभावा: काव्यनाट्ययो: ।
---सा०द०, परि०-३, का०सं०-६३.

३- विशेषेण भावयन्त्युत्पादयन्ति ये रसांस्ते विभावा: । ते च द्विविधा: । आलम्बनविभावा उद्दीपन विभावाश्चेति । यमालम्ब्य रस उत्पद्यते स आलम्बनविभाव: । यो रसमुद्दीपयति स उद्दीपनविभाव: ।।
--- रस तरंगिणी, तरंग-२, पृ० ३१-३२.

४- रत्याद्युद्बोधका लोके विभावा: काव्यनाट्ययो: ।
--- नाट्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या- ८४.

आलम्बन उद्दीपनाख्यौ तस्यभेदावुभौस्मृतौ ।। २९ ।।
आलम्बनो नायिकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात् ।
उद्दीपनविभाव वास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये ।। १३१ ।।
--- नाट्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या- १२१.

पान चर्वण, सुन्दर वेशभूषा, नृत्य तथा वीणादि वादन।[1] किन्तु भरत ने शृंगाररस के उद्दीपन-विभावों के अन्तर्गत ऋतु, माला, अनुलेप आदि अलंकार, प्रियजन, गान, काव्य, उपवन-विहार आदि वस्तुओं को गिनाया[2] है। भानुदत्त ने 'रस तरंगिणी' में भरत के इसी श्लोक को उद्धृत करके यह और लिख दिया है कि चन्द्रमा और चन्दन आदि को भी उद्दीपन विभावों के अन्तर्गत समझ लेना चाहिये[3]। विश्वनाथ ने आलम्बन की चेष्टा आदि तथा देशकाल आदि को उद्दीपन विभावों में गिनाया है। चेष्टा आदि में 'आदि' से इनका अभिप्राय रूप, आभूषण से है और देशकाल आदि में 'आदि' से वे चन्द्रमा, चन्दन, कोकिला का आलाप, भ्रमरों की गुंजार समझते हैं[4]। भोज ने इनका कोई उल्लेख नहीं किया।

शिंगभूपाल ने इनका सविस्तार वर्णन किया है। उन्होंने उद्दीपन के चार प्रकार माने हैं, नायक-नायिका के गुण, चेष्टा, अलंकृति और तटस्थ उद्दीपन[5]।

१- दंपति जोवन रूप जाति लच्छण युत सखिजन।
कोकिल कलित बसंत फूलि फल दल अलि उपवन।।
जलयुत जलचर अमल कमल कमला कमलाकर।
चातक मोर सुशब्द तड़ित घन अंबुद अंबर।।
शुभ सेज दीप सौगन्ध-गृह पान खान परिधान मनि।
नव नृत्य-भेद वीणादि सब आलम्बन केशव बरनि।।
--- र०प्रि०, पृ०-६, छं०-६.

२- ऋतु माल्यालंकारैः प्रियजन गान्धर्व काव्यसेवाभिः।
उपवनगमनविहारैः शृंगाररसः समुद्भवति ।।
---ना०शा०, अ०-६, पृ०-६६.

३- चन्द्र चन्दनादय उद्दीपनीयाः। ---रस तरंगिणी, तरंग-२, पृ०-३३.

४- आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा। १६५.
चेष्टाद्या इति आद्यशब्दाद्रूपभूषणादयः।
कालादीत्यादिशब्दाद् चन्द्र चन्दन कोकिलालापभ्रमर झंकारादयः।
--- सा० द०, पृष्ठ- १७७.

५- उद्दीपनं चतुर्धा स्यादालम्बनसमाश्रयम्।
गुणचेष्टालंकृतयस्तट स्थाश्चेति भेदतः।।
---र०सु०, पृ०-३८, श्लोक-१६२.

गुणों के अन्तर्गत भूपाल ने यौवन, रूपलावण्य, सौन्दर्य, अभिरूपता, मार्दव तथा सौकुमार्य को गिनाया है। अलंकृति चार प्रकार की मानी है, वास ।वस्त्र।, आभूषण, ।पुष्प। माला, ।चन्दन। अनुलेप और तटस्थ के अन्तर्गत चन्द्रिका, धारागृह, चन्द्रोदय, कोकिला का आलाप, मन्दपवन, भ्रमर, लता-मण्डप, भूगृह, बावड़ी, मेघों का गर्जन संगीत, क्रीड़ा, पर्वत, सरित आदि वस्तुएं बताई हैं[1]।

करन ने आलम्बनों के अन्तर्गत नवल वधू का ही उल्लेख किया है जो अन्यत्र दुर्लभ है। वस्तुत: ये आलम्बन न होकर उद्दीपन है। भरत ने श्रृंगाररस के उद्दीपन - विभावों के अन्तर्गत नवल वधू से साम्य रखता हुआ प्रियजन शब्द दिया है।

उद्दीपन के अन्तर्गत करन ने उपवन, सुक, ससि, चन्दन तथा जल का उल्लेख किया है। करन द्वारा बताई चन्दन वस्तु ही भानुदत्त से मिलती है, शेष नहीं मिलती।

आलंबन मित होत है नवल वधू अनुनाह।
उद्दीपन उपवन, सुक, ससि, चंदन जल वाह।। ३२ ।।[2]

वस्तुत: करन ने उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नवीन वस्तुओं का उद्घाटन कर अपनी मौलिकता का सुन्दर प्रदर्शन किया है जो उनके आचार्यत्व को दर्शाता है।

१- यौवनं रूपलावण्यं सौन्दर्यमभिरूपता।
मार्दवं सौकुमार्यं चेत्यालम्बनगता: गुणा: ।। १६३ ।।
--- र०सु०, पृष्ठ-३८.

चतुर्धालंकृतिर्वासो भूषामाल्यानुलेपनै:।
तटस्थाश्चन्द्रिका धारागृह चन्द्रोदयावपि ।। १८७ ।।
--- र०सु०, पृष्ठ-४५.

कोकिलालाप मा कन्द मन्द मारुतषट्पदा:।
लतामण्डप भूगेहदीर्घिका जलदारवा: ।। १८८ ।।
प्रासाद गर्भ संगीत क्रीडाद्रिसरिदादय:।
एवमूह्या यथाकालमुपभोगोप योगिन: ।। १८९ ।।
--- र०सु०, पृष्ठ-४५.

२- रस कल्लोल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ४.

--शृंगार रस--

नौ रसों में शृंगार रस की प्रधानता है। भरत आदि आचार्यों ने इसकी प्रथम गणना की है। इसे आदि रस भी कहते हैं, और रसराज भी। क्योंकि इसकी तीव्रता और प्रभावशीलता सब रसों से बढ़ी-चढ़ी है। दूसरी बात यह है कि काम-विकार सर्वजाति- सुलभ-हृदयाकर्षक तथा अत्यन्त स्वाभाविक है। इस रस के प्रभाव से महामुनियों के मन भी चंचल गये हैं। इसी से आचार्य कहते हैं कि नियमत: संसारियों को शृंगार रस का अनुभव होता है। अपनी कमनीयता के कारण यह सब रसों में प्रधान है।[१]

रुद्रट कहते हैं कि शृंगार रस आबाल-वृद्ध में व्याप्त है। रसों में कोई ऐसा दूसरा रस नहीं जो इसकी सरसता को प्राप्त कर सके। सम्यक् रूप से इस रस की रचना करनी चाहिये। शृंगार रस से हीन काव्य नीरस होता है।[२] देव जी तो यहांतक कहते हैं--

> नव रसनि मुख्य सिंगार जहं उपजत बिनसत सकल रस।
> ज्यों सूक्ष्म स्थूल कारन प्रगट होत महा कारन बिवश।।

भरत ने शृंगार से हास्य की उत्पत्ति मानी है। हास्य ही क्यों ? शृंगार की प्रेरणा से करुण, क्रोध, भय, घृणा, आश्चर्य आदि की उत्पत्ति भी हो जाती है। किसी भी महाकाव्य में इसका प्रमाण मिल सकता है।

भोजराज कहते हैं कि रति आदि उन्चासों भाव शृंगार को घेरकर ऐसे समृद्ध करते हैं जैसे किरणें सूर्य की दीप्ति को उद्दीपित करती हैं।[३]

१- शृंगाररसो हि संसारिणां नियमेन अनुभव विषयत्वात् सर्वरसेभ्य: कमनीयतया प्रधानभूत: । —— ध्वन्यालोक.

२- अनुसरति रसानां रस्यतामस्य नान्य: सकलमिदमनेन व्याप्तमाबालवृद्धम् । तदिति विरचनीय: सम्यगेष: प्रयत्नात् भवति विरसमेवानेन हीनं हि काव्यम् । —— का० लं०.

३- रत्यादयोऽर्धशतमेकविवर्जिता हि भावा: पृथग्विविधभावभुवो भवन्ति । शृंगारतत्त्वमभित: परिवारयन्त: सप्तार्चिषं द्युतिचयाइव वर्द्धयन्ति । —— शृंगार प्रकाश.

भोजराज तो शृंगार को ही रस मानते हैं उनके विचार से यही एक पूर्ण रस है। अन्य रस तो इसकी सम्पूर्णता की मध्यवर्ती स्थितियां हैं।[1]

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में शृंगार की परिभाषा इस प्रकार दी है।[2]

नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने कहा है--"संसार में जो कुछ उत्तम शुचि-उज्ज्वल और दर्शनीय है, वही शृंगार है।[3]

शृंगार रस स्वरूप 'शृंगार' शब्द की व्युत्पत्ति ।'शृंग ऋच्छति' इति शृंगार: । से स्पष्ट ही जाता है। 'शृंग' का अभिप्राय है ।कामुक-युगल के उत्पीडक। कामाविर्भाव का और शृंगार का अभिप्राय है उसका जो "इस प्रकार के कामोद्भव से संभूत हो। इस रस के आलम्बन प्राय: उत्तम प्रकृति के ही प्रेमीजन हुआ करते हैं।[4]

करन ने शृंगार रस का लक्षण इस प्रकार किया है-- जहांपर रति स्थायी भाव का प्रकटीकरण होता है,वहां "विभाव" होता है। भावों की सूचना देनेवाला विकार "अनुभाव" है। "मोह" आदि को संचारी भाव समझना चाहिये, इनसे ही "शृंगार" रस उत्पन्न होता है, ऐसा कविजन बखान करते हैं --

रति स्थाई प्रगटे जहां,
　　तिय पिय मिलत विभाव।
दंता विलोकन आद दे,
　　ते सब है अनुभाव ।। ३७ ।।

१- शृंगार वीर करुणाद्भुत हास्य रौद्र,बीभत्स वत्सल भयानकशान्त नाम्न: ।
　आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वयन्तु शृंगारमेव रसनाद्रसमामनाम ।।
　　　　---- भोज कृत शृंगार प्रकाश.

२- "शृंगहि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुक:,
　पुरुषप्रमाभूमि: शृंगार इति गीयते ।"

३- "यत्किंचिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते" । --नाट्यशास्त्र.

४- शृंग हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुक: ।
　उत्तम प्रकृतिप्रायो रस: शृंगार इष्यते ।। १८३ ।।
　　　　---- साहित्य दर्पण - विश्वनाथ.

मोहादिक जे होत है,

वे संचारी जान ।

इनते होत सिंगार रस,

कविजन करत बखान ।। ३८ ।।[१]

करन का यह शृंगार लक्षण मौलिक होने के कारण किसी भी संस्कृत आचार्य से साम्य नहीं रखता ।

१- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ४.

-- श्रृंगार रस का वर्गीकरण --

जिसे श्रृंगार रस कहा जाता है उसके दो भेद हैं-- १. संयोग श्रृंगार, २. विप्रलम्भ श्रृंगार।

श्रृंगार रस एक प्रकार का ही माना जाया करता है। क्योंकि इसके यदि अवान्तर भेदों जैसे कि प्रेमी-प्रेमिका के परस्पर दर्शन, आलिंगन, अधरपान, चुम्बन आदि की गणना की जाने लगे तो न तो इसका कहीं अन्त लगे और न इसके इन-इन स्वसंवेदन सिद्ध भिन्न-भिन्न रूपों का सम्यक् विश्लेषण ही हो पाया है।[१]

श्रृंगार दो प्रकार का है-- पहला विप्रलम्भ और दूसरा संयोग[२]। रीतिकाल के सर्वप्रथम आचार्य केशवदास ने हिन्दी में रीति या लक्षण -ग्रन्थ लिखने की नवीन परम्परा का जो सूत्रपात किया हो, श्रृंगाररस को "रसराज" कह कर उसका स्वरूप और स्थान ही बदल दिया। उनके उपरान्त सभी रीतिकालीन आचार्यों ने श्रृंगार रस की परिभाषाओं में उसे सम्पूर्ण रसों का "सिरताज" सिद्ध किया[३]।

श्रृंगार के रसराजत्व की यह विचारधारा नवीन नहीं है। संस्कृत के आचार्य प्राचीन काल से ही इसका महत्व और शीर्ष स्थान स्वीकार करते आरहे हैं। भरत ने मुख्य रस तीन माने हैं और भोज ने केवल श्रृंगार को ही रस माना है[४]।

१- तत्र श्रृंगारस्य द्वौ भेदौ -- सम्भोगो / विप्रलम्भ।
तत्राद्य: परस्परावलोकनालिंगनाऽधरपान-परिचुम्बनाद्यनन्तत्वादपरिच्छेद्य एक एव गण्यते। काव्य प्रकाश -आचार्य मम्मट.

२- विप्रलम्भोऽथसंभोग इत्येष द्विविधो मत:।
--- साहित्य दर्पण-- विश्वनाथ.

३- द्रष्टव्य - रसिकप्रिया १।१६, रसराज- छन्द संख्या- ३४२, शब्द रसायन, पृष्ठ ३०-३१.

४- सरस्वती कंठाभरण ५।३.

शृंगार के संयोग और वियोग

दो भेद सभी आचार्यों ने किये हैं, किन्तु दोनों के "प्रच्छन्न" तथा "प्रकाश" भेद केशव की विशेषता है ।[1] इन दोनों भेदों को विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रुद्रभट्ट के "शृंगार तिलक" में खोजा है ।[2] भोज ने "सरस्वती कण्ठाभरण" में शृंगार के "प्रच्छन्न" और "प्रकाश" ये दो भेद वर्ण बताये हैं ।[3] केशव के आधार ग्रंथ "शृंगार तिलक" के आधार "काव्यालंकार" में भी ये ही भेद किये गये हैं ।[4] देव ने शृंगार के इन दो भेदों को केशव से अपनाया है, ऐसा विद्वानों का मत है ।[5]

भिखारीदास ने शृंगार रस को दो प्रकार का बतलाया है-- १.नायिका-जन्य तथा २.नायकजन्य ।[6] अन्य किसी भी रीतिकालीन आचार्य ने ये वर्ग नहीं किये, यहांतक कि भिखारीदास ने दूसरे लक्षण ग्रन्थ "शृंगार निर्णय" में भी ये नहीं मिलते । संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में शृंगार के ये दोनों प्रकार उपलब्ध हैं । "काव्य प्रदीप" में शृंगार के संयोग भेद को इन दो वर्गों में विभक्त किया गया है ।[7]

"करन" ने "शृंगार" रस को दो प्रकार का माना है --- १.विप्रलम्भ शृंगार , २.संयोग शृंगार ।

विप्रलम्भ संयोग पुन,

द्वै सिंगार है नांव ।[8]

करन ने "विश्वनाथ" तथा मम्मटाचार्य के "शृंगार" रस के भेदों को अपना आधार बनाया है । करन के शृंगार रस के भेद रुद्रभट्ट, भोज तथा भिखारीदास से साम्य नहीं रखते । विश्वनाथ तथा मम्मट के शृंगार रस के भेदों के क्रम में अन्तर है, करन ने पहले विप्रलम्भ शृंगार को स्थान दिया, तत्पश्चात् संयोग शृंगार को स्थान दिया है ।

१- रसिक प्रिया १।१८.

२- रसिकप्रिया का प्रियाप्रसाद तिलक ।भूमिका ।, पृष्ठ११.

३- सरस्वती कंठाभरण, ५।१७.

४- रस सारांश, छन्द सं०-४५८.

५- काव्यालंकार १२।६.

६- रस सारांश, छन्द सं०-१२.

७- तत्र संयोगो नायिकारब्धो नायकारब्धश्च ।
-- काव्यप्रदीप-श्रीगोविन्द प्रणीत,पृ०-७५

८- रस कल्लोल --कवि करन,पृ०सं०-४.

-- संयोग शृंगार --

परस्पर प्रेम-- पगी नायक और नायिका के परस्पर दर्शन, परस्पर स्पर्शन आदि-आदि की अनुभूति का प्रदाता जो रस है वह "संयोग शृंगार" है।[१] केशव ने "प्रच्छन्न संयोग" और "वियोग" उसे कहा है जो प्रेमी और प्रिया आपस में ही जानते हों अथवा अन्तरंग सखी को भी जिसके बारे में पता हो[२]।

प्रकाश संयोग और वियोग उसे कहते हैं जिसके विषय में अपने मन में सभी लोग जानते हों।[३]

देव ने संयोग शृंगार के सम्बन्ध में प्रचलित परम्परा से पृथक "भवानी-विलास" में नवीन मत दिया है, फिर संयोग और उसके पश्चात् मान प्रवास तथा करुण दशाएं क्रमशः आती हैं।[४]

"सरस्वती कंठाभरण" में संयोग की व्युत्पत्ति तथा उसके भेद-वर्णन में देव की ये सभी उपलब्धियां प्राप्त हो जाती हैं।[५]

साहित्य दर्पणकार ने इसी वर्ग भेद को पुनः प्रस्तुत न करके केवल इतना कह दिया है-- ।[६]

मतिराम, भिखारीदास तथा पद्माकर दम्पति के मिलन को संयोग शृंगार मानते हैं ।[७]

१- दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ ।
यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः ।।
---- साहित्य दर्पण -विश्वनाथ.

२- रसिकप्रिया ३।१६.

३- रसिकप्रिया ३।२१.

४- भवानी विलास २।१-४.

५- द्रष्टव्य, सरस्वती कंठाभरण, पृ० ५।५१ तथा ७६, ८०, ८१ और ८२.

६- कथितश्चतुर्विधोऽसावानन्तर्यात्तु पूर्वरागादेः ।।
---- साहित्य दर्पण.

७- द्रष्टव्य, रसराज, छन्द संख्या-३४४, रस सारांश छंद सं०-२८५, शृंगार निर्णय, छंद सं०-२४३, काव्यविनोद छंद सं०- ६१८.

उनका यह मत अधिकांश रूप में भानुदत्त की `रस तरंगिणी` पर समाश्रित है। उसमें कहा गया है-- तत्र दर्शन स्पर्शन संलापादिभिरितरेतरमनुभूयमानं सुखं परस्पर संयोगोत्पद्यमान आनन्दो वा संयोगः। संयोगो बहिरिन्द्रिय सम्बन्धः। पृ०-१२८.

बहिरिन्द्रिय सम्बन्ध को संयोग बताये जाने के फलस्वरूप प्रायःसभी रीतिकालीन आचार्यों ने संयोग श्रृंगार के उदाहरण भानुदत्त की भांति संभोग के, विशेष रूप से विपरीत रति के रखे हैं।[1] करन ने `संभोग श्रृंगार` का लक्षण इस प्रकार दिया है--

तो संजोग पिय त्रिय,

मिलत केल करत सुभकांत ॥ ३६ ॥

अर्थात् संभोग वहां समझना चाहिये जहां प्रिय और प्रियतम का मिलन हो और दोनों केलि करें। देखकर पुनः-पुनः मिलन हो और मिलकर प्रिय एवं प्रियतम प्रसन्न हों, वहां पर `संयोग` श्रृंगार होता है।

अवलोकत फिर-फिर मिलत,

मिल-मिल विहसत जात।

मोंह विविध मोहन भरत,

सोह पर परभात ॥ ४१ ॥[2]

करन का यह `संभोग` श्रृंगार लक्षण समस्त संस्कृत आचार्यों द्वारा बताये गये लक्षण से साम्य रखता है। पूर्ववर्ती सभी आचार्य भी दर्शन स्पर्शन तथा मिलन आदि से उत्पन्न सुख की अनुभूति को `संभोग` श्रृंगार मानते हैं।

१- द्रष्टव्य - रसमंजरी, पृ०-१६८, रसिकप्रिया ५।२०, रसराज छंद संख्या-३५४, रस सारांश -२४४, काव्य निर्णय सं०, जवाहरलाल चतुर्वेदी -पृ०-८०, जगद्विनोद छंद संख्या- ६९६,

२- रस कल्लोल --कवि करन, पृ०सं०-४.

— विप्रलम्भ श्रृंगार —

नायक-नायिका के परस्परानुराग में मिलन-नैराश्य ही 'विप्रलम्भ' है[1]।

नाट्य दर्पणकार ने इसीलिये कहा है— विप्रलम्भ और संभोग दोनों रतिप्रकर्ष के अवस्थायें हैं जिनका संवलित स्वभाव श्रृंगाररस का स्वरूप है[2]। जैसा कि कहा भी गया है—

"इती । विप्रलम्भ संभोगी । द्वावप्यवस्थाविशेषवात्मा स्वभावी यस्याव-स्थानुदशाद्यानुयायिन आस्वादन्यात्मक रति प्रकर्षरूपस्य श्रृंगाररस्य: तेन श्रृंगाररस्य नैमौ भेदौ गौबलीव शावलेयबाहुलेयावपि तु सम्भोगेऽपि विप्रलम्भसम्भावनासद्भावाद् विप्रलम्भेऽपि मनसा संभोगानुभावानुभवं संवलित स्वभाव: श्रृंगार । उत्कटत्वाच्चै-कदेशेऽपि संभोगश्रृंगारो विप्रलम्भश्रृंगार: इति चौप चारे णोच्यते । अवस्थाद्वयगतिन निबन्धने च सातिशयश्चमत्कार: ।[3]

वियोगावस्था में भी जहां नायक-नायिका का पारस्परिक प्रेम हो, वहां विप्रलम्भ श्रृंगार होता है[4]।

अपरस्तु अभिलाष- विरह- र्ष्या- प्रवास- शापहेतुक इति पंचविध: ।[5]

जहां पर रति स्थायी, स्वप्न, चित्र, प्रत्यक्ष, श्रवण आदि से प्रकट होता है, परन्तु प्रिय से संयोग न होने से और भी तीव्र होता रहता है अथवा मिलन के बाद फिर विछोह के अवसर पर मान, प्रवास आदि के समय विभिन्न दशाओं में प्रकट होता है, वहां पर वियोग श्रृंगार होता है। इसकी स्थितियां

१- संभोग सुखा स्वादलोभेन विशिष्टो- प्रलम्भके आत्माऽस्मीति विप्रलम्भ: ।
—— काव्यानुशासन २ ३०.

२- परस्परानुरक्तयोरपि विलासिनो: पारतन्त्र्यादिरघटनं चित्तविश्लेषो वा विप्रलम्भ: । —— नाट्य दर्पण.

३- नाट्य दर्पण- तृतीय विवेक.

४- काव्य दर्पण- विद्यावाचस्पति पं० रामदहिन, पृ०सं०- ६७५.

५- काव्य प्रकाश- दास और आचार्य मम्मटाचार्य.

या रूप है-- पूर्व राग, मान, प्रवास । करन ने `रस कल्लोल` ग्रन्थ में `विप्रलम्भ शृंगार` का लक्षण नहीं किया है ।

काव्य दर्पणकार ने इसके निम्नलिखित चार भेद बताये हैं -- १.पूर्व राग, २.मान, ३.प्रवास, और ४. करुणा । साहित्य दर्पणकार की भी यही मान्यता है ।[2]

काव्य प्रकाशकार ने इसके पांच भेदों का निरूपण किया है -- १- अभिलाषा ।पूर्व राग अथवा मिलन की उत्सुकता ।, २- विरह ।अनुराग में न्यूनता अथवा अनुरक्ति में भी मिलन -बाधा अथवा संकोचाविवश मिलन का अभाव ।, ३- ईर्ष्या ।मानवश ।, ४- प्रवास ।अनुरक्ति में ही विभिन्न देश-स्थिति । और ५- शाप ।सिद्ध पुरुष वचन से मिलन की निश्चित अवधि का अभाव ।। `करन` ने `विप्रलम्भ शृंगार के पांच प्रकार दिये हैं-- १-विरह, २- ईर्ष्या, ३-शाप, ४- मानिक, ५- विरह विचार ।

विप्रलम्भ शृंगार को कहत सो पांच प्रकार ।
विरह ईरषा श्राप पुन मानिक विरह विचार ।। ४० ।।
--- रस कल्लोल, पृष्ठ-४.

करन ने काव्य दर्पणकार तथा साहित्य दर्पणकार द्वारा बताये `पूर्व-राग` को माना है, अन्य भेदों को छोड़ दिया है । करन के विरह , ईर्ष्या, श्राप तथा पूर्वानुराग काव्य प्रकाश के `विप्रलम्भ शृंगार` भेदों से साम्य रखते हैं, किन्तु उन्होंने `प्रवास` के स्थान पर `मानिक` `विप्रलम्भ` शृंगार भेद को अपनाया है । इनके क्रमों में भी विभिन्नता है ।

`काव्य निर्णय` में दास ने वियोग कापांच प्रकार से होना बताया है-- १-अभिलाषा, २- प्रवास, ३- विरह, ४-असूय और ५- शाप ।[3] ये कारण

१- काव्यशास्त्र - डा०भगीरथ मिश्र, पृ०- २ ३०.

२- स च पूर्वरागमान प्रवास करुणात्मकश्चतुर्धास्यात् ।। १८७ ।।
--- साहित्य दर्पण- विश्वनाथ,पृ०२३२.

३- काव्य निर्णय, पृ०-७६.

मम्मट के काव्य प्रकाश और भानुदत्त की रस तरंगिणी में भी गिनाये गये हैं।[1]

दास ने 'मान'-- प्रवर्जन उपाय के अन्तर्गत साम, दान आदि 'काव्यालंकार' में वर्णित भेदों को ही गिनाया है तथा 'दण्ड' को छोड़ दिया है।[2] किन्तु 'शृंगार निर्णय' में रीतिकालीन आचार्यों की परम्परागत भेद-प्रभेदों की गणना न करके संस्कृत परम्परा का पालन किया गया है। उन्होंने विप्रलम्भ के मूलभूत कारण तीन माने हैं-- पूर्वानुराग, मान तथा प्रवास।

विरह लक्षण :--

करन ने विरह का लक्षण इस प्रकार दिया है--

देण कुंवारी तननुंगट,

बचीन तची अदेह।

छियौ छियौ वारी,

मद भर भर रस सनेह ।। ४२ ।।[3]

ईर्ष्या लक्षण :--

ईर्ष्या का लक्षण 'करन' ने इस प्रकार दिया है--

देखी ते उठ बैठये,

जौ कछु करनी नाहि।[4]

हमैं तुम्हें अब है कहा,

कहौ मनावत काहि[5] ।। ४३ ।।[6]

१- काव्य प्रकाश -अनु०पं०हरिमंगल मिश्र, रस तरंगिणी, पृ०-२४०.

२- रस सारांश, छन्द संख्या- ३७८.

३- रस कल्लोल,-- कवि करन, पृ०सं०-४.

४- पाठ में है-- पृ० में बाह ग्राहि, द्वितीय बाह ग्राह।

५- पाठ में है-- पृ० में बाह ग्राहि, द्वितीय बाह ग्राह।

६- पाठ में है-- पृ० ग्रलीन, द्वि० में ग्रलीन।

६- रस-कल्लोल, कवि करन. पृ. सं.-५।

शाप लक्षण :--

'करन' ने 'शाप' का लक्षण इस प्रकार दिया है--

छिलत मिलत कलरस पगत मन बच सत संजोग ।
विध बस कौ रन कर सकल दिन दिन बढ़त वियोग ।। ४४ ।।

मिलन बिछुरवौ हेक छिन बुहु बिस रचौ प्रयोग ।
विध्वस लिखौ सकुलल दिन दिन बढ़त वियोग ।। ४५ ।।[1]

मानिक लक्षण :--

पीरी सीरी तन परी,
बीरी कौ तबहा न जाव ।
सुन पिय जाव विदेस कौ,
सारे हीय उजाव ।। ४६ ।।[2]

पूर्वानुराग लक्षण :--

सिंह भूपाल ने 'पूर्वानुराग' का लक्षण देते हुये लिखा है कि 'पूर्वानुराग' वह अवस्था है जहाँ प्रेम-संगम से पूर्व नायक-नायिका के हृदय में नायक-नायिका के दर्शन अथवा गुण-श्रवण से अनुराग उत्पन्न हो जाता है।[3] विश्वनाथ द्वारा दिये पूर्वराग के लक्षण का भी यही भाव है।[4] 'पूर्व राग' का अभिप्राय रूप सौंदर्य आदि के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका की उस दशा से है जो कि उनके समागम के पहले की दशा हुआ करती है। रूप-सौंदर्यादि का श्रवण तो दूत, बन्दी, सखी आदि के मुख से सम्भव है और दर्शन संभव है इन्द्रजाल में, चित्र में, स्वप्न में अथवा साक्षात्। इसमें दस काम दशाएं संभव हैं।[5]

१- रस कल्लोल -- कवि करन, पृ० सं०- ५.
२- रस कल्लोल-- कवि करन, पृ०सं०- ५.
३- साहित्य दर्पण- पृ०सं०- १४०.

३.४-रसार्णव सुधाकर, पृ०-१७६.
५-अभिलाषश्चिन्ता स्मृति गुण-कथनोद्वेग संप्रलापाश्च । उन्मा-दोऽथ व्याधि र्जडता मृति रिति-दशात्र कामदशा ।। १९ ।।
-- सा०दर्पण-विश्वनाथ, पृ०सं०-२२२.

करन ने 'पूर्वानुराग' का लक्षण 'रस कल्लोल' में लक्षण मात्र दिया है। उसके भेदों को नहीं दर्शाया है। करन ने 'पूर्वानुराग' का लक्षण इस प्रकार दिया है---

प्रीतिवंत नंद लाल की,
जब तै मिली उदार।
विरह भरति तब तै तहां,
पकर गाढ़ी विकार ।। ४७ ।।[१]

करन का 'पूर्वानुराग' लक्षण 'शिंगभूपाल' तथा 'विश्वनाथ' के 'पूर्वानुराग' लक्षण का ही प्रतिरूप है।

वस्तुत: इससे स्पष्ट है कि करन के 'श्रृंगार' वर्णन में पूर्ववर्ती संस्कृत आचार्यों के काव्य-सिद्धान्तों की स्पष्ट छाप है, किन्तु विभिन्न स्थलों पर अपने मौलिक लक्षणों को निरूपित कर करन ने एक पाण्डित्य प्रदर्शन का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

१- रस कल्लोल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ६.

-- हास्य रस --

हास्य रस एक अपूर्व भावकी सृष्टि करता है। इसका सम्बन्ध मानसिक क्रिया से है।

भरत ने शृंगार से हास्य की उत्पत्ति मानी है।[1] हास्य चित्त का विकास है जो प्रीति का विशेष रूप है।[2] हास्य की विस्तृत सीमा क्षेत्र को देखकर उसे केवल शृंगार में ही सीमित नहीं किया जा सकता। हास्य के विभावों के मूल में अनौचित्य ही एक कारण है और वह कारण प्राय: सभी रसों के विभावादि में हो सकता है। इससे अनौचित्यमूलक रस-परिपोषण से सर्वत्र हास्य रस उत्पन्न हो सकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि हास्य का शृंगार से अधिक सम्बन्ध है, क्योंकि प्रिय चित्तानुरंजक होता है। हास्य रस विकृत आकार, वचन, वेश, चेष्टा आदि से उत्पन्न होता है।[3]

स्पेंसर का मत है कि शरीर-व्यापार में ज्ञान-तन्तुओं की उत्साह शक्ति उच्छ्वसित हो उठती है। वही हास्य है।[4] इसके कई प्रकार हैं-- १. हास्य, २. वाक्य चातुर्य, ३. वक्रोक्ति।

१- शृंगाराद्धि भवेद्धास्य:। भरतमुनि.

२- प्रीतिर्विशेष: चित्तस्य विकासो हास उच्यते। -- भाव प्रकाश.

३- विकृताकार वाग्वेषचेष्टादे: कुहकाद्भवेत्।
-- विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, पृ०सं०-२५१.

४- यदा स्वयं हसति तदा स्मित:।
यदा तु परं हासयति तदा प्रहसन:॥
-- नाट्यशास्त्र.

हास्य दो प्रकार का होता है --आत्मस्थ और परस्थ। जब स्वयं हंसता है तो वह आत्मस्थ और दूसरे को हंसाता है तो वह परस्थ है।[१]

इसमें दूसरा मत भी है। हास्य के विषय को देखने से जो हास्य होता है वह आत्मस्थ और दूसरे को हंसता देखकर जो हास्य होता है वह परस्थ है।[२]

हास्य वह रस है जिसे `हास' स्थायीभाव का अभिव्यंजन कहा जाया करता है। इसका आविर्भाव आकार-विकृति, वाग् विकृति, वेष-विकृति, चेष्टा विकृति किं वा अन्यान्य प्रकार की विकृतियों के वर्णन अथवा अभिनयन से हुआ करता है। इसका वर्ण श्वेत है, इसके अधिष्ठातृदेव प्रमथगण हैं। इसका आलम्बन वह व्यक्ति है जिसमें आकार, वाणी और चेष्टा की विकृतियां दिखायी दिया करती हैं और जिसे देखकर लोग हंसा करते हैं। ऐसे हास्यास्पद व्यक्ति की जो चेष्टाएं हैं वे ही यहां उद्दीपन का काम किया करती हैं। इसके अनुभाव वर्ग में नेत्र-निमीलन, मुख-विकास आदि आदि की गणना है। इसके जो व्यभिचारी भाव हैं वे हैं --निद्रा, आलस्य, अवहित्था आदि-आदि। इसके ६ भेद स्पष्ट हैं ---

१- उत्तम प्रकृतिगत "स्मित" हास्य २- उत्तम प्रकृतिगत "हसित" हास्य

३- मध्यमप्रकृतिगत "विहसित" हास्य ४- मध्यम प्रकृतिगत "विहसित" हास्य

१- यदा स्वयं हसति तदात्मस्थ:।
यदा तु परं हासयति तदा परस्थ:॥

--- नाट्य शास्त्र, चौ. सं., पृ. ६४।

२- आत्मस्थो द्रष्टुरुत्पन्नो विभावेक्षण मात्रत:।
हसन्तमपरं दृष्ट्वा विभावश्चोपजायते।
यो सौ हास्यरस: तज्ज्ञ: परस्थ: परिकीर्तित:।

--- रस गंगाधर.

५- अधमप्रकृतिगत `अपहसित` हास्य ६- अधम प्रकृतिगत अतिहसित हास्य ।[1]

रूप, आकार, वाणी, वेष और कार्य आदि के विकृत हो जाने से हास्य की उत्पत्ति होती है।[2]

हास्य रस के देवता प्रमथ (शिव के गण) और रंग श्वेत माना गया है।[3]

१- विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत् ।
हास्यो हासस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदेवतः ।। २१४ ।।

विकृताकार वाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः ।
तमत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।। २१५ ।।

अनुभावोऽक्षिसंकोचवदन स्मेरतादयः ।
निद्रालस्यावहित्याद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः ।। २१६ ।।

ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसितावहसिते च ।
नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेष षड्भेदः ।। २१७ ।।

ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात् स्पन्दिताधरम् ।
किञ्चिल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः ।। २१८ ।।

मधुरस्वरं विहसितं सांसशिरः कम्पमवहसितम् ।
अपहसितं सास्राक्षं विक्षिप्ताङ्गं च भवत्यतिहसितम् ।। २१९ ।।

--- साहित्य दर्पण --विश्वनाथ, पृ० सं० २५१-२५२.

२- "वागादिवैकृतैश्चेतोविकासो हास इष्यते ।"

-- साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, तृतीय परिच्छेद, पृ०सं०-२५१.

३- हास्यरसस्य श्वेतो वर्णः प्रमथो दैवतम् ।

--- काव्यशास्त्र, पृ०सं०- २५२.

करन 'हास्य' रस के लक्षण का निरूपण इस प्रकार करते हैं ---

कछु विभा छवि रूपता

क्रम ते इनको जान ।

पुलकि कपोलन आदि दे

ते अनुभाव बखान ।। ४८ ।।

जब हित्थादिक होत है

ते संचारी जान ।

जाको स्थाही हास्य है

सो ही हास्य बखान ।। ४९ ।।[1]

अर्थात् इसका आविर्भाव आकार विकृति के वर्णन से हुआ करता है । पुलकित कपोल इसका अनुभाव है तथा हित्थादिक आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं और इसका स्थायीभाव 'हास' है ।

यथा-- तब घर ही जब कर

निकर चिल भ्रम घुसी फाँस ।

कुछ कुमाव मर्र निरख

विहँस गौर गबेस ।। ५० ।।[2]

करन का 'हास्य' रस लक्षण विश्वनाथ के 'हास्य' रस लक्षण से कुछ साम्य रखता है । करन ने विश्वनाथ के सम्पूर्ण लक्षण को न ले एक-एक बात को लेकर अपने लक्षण का स्पष्टीकरण किया है ।

१- रस कल्लोल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ५.

२- रस कल्लोल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ५.

-- करुण रस --

भरत के अनुसार इष्टवध के दर्शन अथवा प्रिय वचनों के श्रवण से करुण रस की उत्पत्ति होती है।[1] 'विप्रिय' शब्द ही आचार्यों के लक्षणों में मिलता है। डा० भगीरथ मिश्र का मत है-- 'प्रिय के विप्रियकरण से आन करुण रस होय।'

विश्वनाथ कहते हैं-- 'करुण रस' वह रस है जिसे शोकरूप स्थायीभाव का पूर्णाभिव्यंजन कहा गया है। इसका आविर्भाव इष्टनाश और अनिष्ट प्राप्ति से सम्भव है। इसका स्थायीभाव 'शोक' है। इसका जो आलम्बन है वह विनष्ट व्यक्ति है। इसके उद्दीपन वर्ग में दाहकर्म आदि की गणना है। दैव-निन्दन, भूमिपतन, क्रन्दन, वैवर्ण्य, उच्छ्वास, नि:श्वास, स्तम्भ:, प्रलपन आदि-आदि इसके अनुभाव माने गये हैं। साथ ही साथ निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद और चिन्ता इसके व्यभिचारी भाव हैं।[2] भवभूति एक करुण रस को ही मानते हैं, अन्य रस पानी के बुलबुले जैसे हैं।[3]

१- नाट्यशास्त्र, पृष्ठ-६६.

२- इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत् ।। २२२ ।।

शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम् ।
तस्य दाहादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुन: ।। २२३ ।।

अनुभावा दैवं निन्दाभूपातक्रन्दितादयः ।
वैवर्ण्योच्छ्वासनि:श्वास स्तम्भ प्रलपनानि च ।। २२४ ।।

निर्वेद मोहाप स्मार व्याधि ग्लानि स्मृतिश्रमा: ।
विषादजडतोन्माद चिन्ताद्या व्यभिचारिण: ।। २२५ ।।

---- साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, पृ० २५३-२५४.

३- 'एको रस: करुण एव निमित्तभेदाद् भिन्न: पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् । आवर्तबुद्बुदतरंगमयान् विकारा नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्सम - स्तम् ।।'

-- भवभूति, उ०रा०-३, पृ०४७-४७.

करुण रस का निरूपण करते हुये, करन कहते हैं, प्रिय के बिछुड़ने को विभाव कहते हैं, अश्रुपात, बार तथा मीड इसके अनुभाव हैं, चिन्तादि इसके संचारी भाव हैं, इसका स्थायीभाव "शोक है, इसे करुण रस कहते हैं --

बिछुरन जो प्रिय वस्तु को

कहत विभाव सुजान ।

अश्रुपात बार मीड को

है अनुभाव प्रमान ।। ५१ ।।

उत्कंठादिक संचारियो

मिलि बान जंह कोइ ।

जाको थायी सोक पुन

कह करुना रस सोइ ।। ५२ ।।[१]

"करन" आगे लिखते हैं-- प्रिय के वियोग में "विप्रलम्भ करुण" होता है। करन ने "वियोग" के दो भेद माने हैं-- १.प्रिय का विदेश गमन, २. प्रिय-की मृत्यु। जहां पर प्रिय से मिलने की आशा रहती है वहां "स्थायीभाव" होता है तथा जहां प्रिय से मिलने की आशा न हो वहां सभी लोग "शोक" मानते हैं।

विप्रलम्भ अरु करुन पुन

प्रिय वियोग तें होत ।

के वियोग करन करो

है विधि को उदोत ।। ५३ ।।

वहै वियोग है भांव को

सकुलन कही वखान ।

इक विदेस गवना

दहि मरन देख पुन जान ।। ५४ ।।

१- रस कल्लोल -- कवि करन, पृष्ठ संख्या-५.

जहं आसा है मिलन

धीरज धाईं तब होय ।

जहं आसा नहि मिलन की

कहत सोक सब कोय ।। ५५ ।।[1]

यथा :— भौरन को कुंजराज हंसन को

मानसर चंद्रमा चकोरन कहत चित गयो ।

मिंदुक कौ कायबर कान ब्रज कुंडल को

स्वाति पपीहन को काहु ने रिते ल्यो ।

दीपन कौ दीप हीरहार दृग पातन को

चौकन कौ वासरेस देखत ही गयो ।

हवा छितपाल छिन मंडल उदार

धीर धरा कौ अधार सो सुमेर सो खिस गयो ।।५६।।[2]

करन 'छत्रसाल' की मृत्यु होने पर उनके वियोग में कहते हैं कि जो भौंरों का कुंजराज, हंसों का मानसर, चकोरों का चन्द्रमा, मिंदुकों का रत्नाक, ब्रजबालाओं का कृष्ण, पपीहों का स्वाति की बूंद, दीपों का दीप, दृगों की हीरहार, पक्षियों का चकोरा, दासियों का छत्रसाल, धीर तथा पृथ्वी का एकमात्र आधार, सुमेरु पर्वत सदृश्य 'छत्रसाल' चला गया । अतः यहां 'करुण' रस का परिपाक है ।

'करन' ने 'करुण' रस का विश्लेषण विभिन्न आचार्यों से भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है । विश्वनाथ के 'इष्टनाश' तथा भरत के 'इष्टवध' को उन्होंने स्वीकार किया है ।

रौद्र लक्षण :—

भरत ने लिखा है कि युद्ध में प्रहार, घात, विकृतच्छेदन, विदारण, संभ्रम आदि से रौद्र रस की निष्पत्ति होती है ।[3]

१- रस कल्लोल- कवि करन, पृ० सं०- ५-६.

२- रस कल्लोल -कवि करन, पृ०सं०-६.

३- नाट्यशास्त्र, पृ०-१००.

विश्वनाथ लिखते हैं -- `रौद्र रस` वह रस है जिसका स्थायी भाव `क्रोध` हुआ करता है। इसमें आलम्बन शत्रु का वर्णन किया जाया करता है और शत्रु की चेष्टाएं उद्दीपन विभाव का काम करती हैं। इसकी विशेष उद्दीप्ति मुष्टि-प्रहार, भूपातन, भयंकर, काट-मार, शरीर विदारण, संग्राम और संभ्रम आदि आदि से हुआ करती है। इसके अनुभाव हैं-- भ्रूभंग, ओष्ठ निदंशन, बाहुस्फोटन, तर्जन, स्वकृत वीर कर्म वर्णन, शस्त्रोत्क्षेपण, उग्रता, आवेग, रोमांच, स्वेद, कम्प, मद, आक्षेप, क्रूर दृष्टि आदि। इसके जो व्यभिचारी भाव हैं इनमें मोह अमर्ष आदि का स्थान है।[1] जिसका स्थायी भाव क्रोध है, डाह, जलन, क्रोध, द्वेष जहां विभाव है, हाथ मसलना आदि जिसके अनुभाव हैं, मोहादि इसके व्यभिचारी भाव हैं, वहां पर कवि करन के अनुसार `रौद्र` रस होता है --

> थायी थाई क्रोध है,
>
> मत्सर जहां विभाव।
>
> हाथ मीड्यौ आदि दै,
>
> वे सब है अनुभाव ।। ५७ ।।
>
> मोहादिक वे होत है,
>
> ते संचारी भाव।
>
> वहां रौद्र रस कहत है,
>
> वान लीजिये भाव ।। ५८ ।।[2]

१- रौद्रः क्रोध स्थायि भावो रक्तो रुद्राधिदैवतः।
आलम्बन मरि स्तत्र तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।। २२७ ।।
मुष्टि प्रहार पातनविकृतच्छेदावदारणैश्चैव ।
संग्राम संभ्रमाद्य रस्यादु दीप्तिर्भवेत् प्रौढा ।। २२८ ।।
भ्रूविभंगोष्ठ निर्दंशबाहु स्फोटनतर्जना: ।
आत्मावदानकथनमायु धोत्क्षेपणानि च ।। २२९ ।।
अनुभावास्तथा क्षेप क्रूर संदर्शनादयः ।
उग्रतावेगरोमांच स्वेदवेपथवो मदः ।। २३० ।।
मोहामर्षादयस्तत्र भावाः स्युर्व्यभिचारिणः ।
-- साहित्य दर्पण- विश्वनाथ,पृ० २६५,तृतीय परिच्छेद ।

२- रस कल्लोल -- कवि करन, पृ० सं० ६

यथा -- मुक्ख पिवठ पवाठ थठ -

भन मारी छितवंत ।

मैर भंड भंडी गगन को -

पारथ वल्वंथ ।। ५६ ।।

गगन गरब वार कर-

अनन भान मैटी सुपवाठ ।

भोज भोज क्वारी विरक-

बचै न छत्री बाठ ।। ६० ।।[1]

यहाँ "रौद्र" रस का सुन्दर दिग्दर्शन है जो करन के आचार्यत्व का प्रतीक है। भरत ने अपने रौद्र लक्षण में रौद्र के स्थायीभाव का उल्लेख नहीं किया, परन्तु करन ने ~~[illegible]~~ विश्वनाथ सादृश्य "क्रोध" स्थायीभाव का नाम लिया है।

--: वीर रस :--

भरत के अनुसार उत्साह, अध्यवसाय, अविषाद, अविस्मय तथा अमोह आदि से वीर रस उत्पन्न होता है।[2]

"समुद्र-सहित" पृथ्वी का बिना विजय किये अनेक यज्ञ बिना किये और याचकों को बिना धन दिये हुए हम कैसे राजा हो सकते हैं। इसमें उत्साह स्थायीभाव अपनी विवृता से वीर रसात्मक हो गया। इससे यह इस कथन को रसवत् बना सका है।[3]

१- रस कल्लोल-- कवि करन, पृ० सं०- ६.

२- नाट्यशास्त्र, पृ०-१०१.

३- अजित्वा सार्णवामुर्वीम निष्ट्वा विविधैर्मखैः ।
अदत्वा चार्थमर्थिभ्यो भवेयं पार्थिवः कथम ।। २८४ ।।
इत्युत्साह प्रकृष्टात्मा तिष्ठन् वीररसात्मना ।
रसवत्त्वं गिरमासां समर्थयितु मीश्वरः ।। २८५ ।।
--- काव्यादर्श, दूसरा परिच्छेद ।

'विश्वनाथ'[1] ने भी 'वीर' रस का स्वरूप प्रस्तुत किया है।

करन 'वीर रस' का लक्षण देते हुये कहते हैं-- जिसका स्थायीभाव 'उत्साह' कहा गया है जिसे विभाव कहते हैं, वही इसका विभाव है, दानादिक इसके अनुभाव हैं तथा धृति आदि इसके संचारी भाव हैं।

थाई मोद विभाव जह -

कहत विभाव विचार।

दानादिक अनुभाव जह-

धर्मादिक संचार ।। ६१ ।।[2]

रौद्र वीर लक्षण का भेद :-

'रौद्र' और 'युद्धवीर' का भेद स्पष्ट है, क्योंकि 'रौद्ररस' में तो मुख लाल हो उठता है तथा आँखें जलने लगती हैं, किन्तु 'युद्धवीर रस' में ये सब बातें नहीं होने पातीं।[3] भरत ने लिखा है कि युद्ध में प्रहार, घात, विकृतछेदन, विदारण, संभ्रम आदि से रौद्र की निष्पत्ति होती है।[4]

१- उत्तम प्रकृति वीर उत्साह स्थायि भावक: ।
महेन्द्र देवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृत: ।। २३२ ।।
आलम्बनविभावास्तु विजेतव्यादयो मता: ।
विजेतव्यादि चेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिण: ।।
अनुभावास्तु तत्र स्यु: सहायान्वेषणादय: ।। २३३ ।।
संचारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्क रोमांचा: ।
स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्च तुर्धास्यात् ।। २३४ ।।
-- साहित्य दर्पण - तृतीय परिच्छेद -विश्वनाथ, पृ०-२५७.

२- रस कल्लोल-- कवि करन, पृष्ठ०- ६.

३- रक्तास्यनेत्रता चात्र भेदिनी युद्धवीरत: ।। २३१ ।।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ-तृतीय परिच्छेद, पृ०-२५६.

४- नाट्यशास्त्र, भी, पृ०- ७६.

'युद्धवीर' और 'रौद्र' का पारस्परिक स्वरूप भेद काव्यानुशासनकार के शब्दों में[1] इस प्रकार मिलता है --'युद्धवीर में तो मोहरहित अध्यवसाय का प्राधान्य रहा करता है, किन्तु रौद्र में मोह विस्मय की प्रधानता रहा करती है। असंमोह और मोह का एकरूप्य कहां ? युद्धवीर और रौद्र भी एक कैसे।'

करनेस रौद्रवीर का लक्षण निम्न प्रकार किया है --

समता की सुध है जहां -
वीर जानियो सोइ ।
जहं मति सुध सम असम -
तहां रौद्र रस होइ ।। ६३ ।।[2]

जहां पर शक्ति, सामर्थ्य की सुधि हो वहां वीर रस होता है तथा जहां असमत्व और अशुद्ध की सुधि हो वहां रौद्र रस होता है।

वीर रस के भेद :--

वीररस के 'विश्वनाथ' ने चार भेद स्पष्ट किये हैं---- १.दानवीर, २.धर्म वीर, ३.युद्धवीर तथा ४. दया वीर ।[3]

प्राचीन काव्य आचार्यों का इस सम्बन्ध में मतभेद है। 'दशरूपककार' ने ही दया-युद्ध और दान के सम्बन्ध से तीन प्रकार का ही वीर रस माना है।[4]

१- 'इह ।युद्धवीरे। पापपंकनिमग्नानां स्वल्पसन्तोषम्, मिथ्याज्ञानं चापास्य, यस्तत्त्वनिश्चयस्तोऽसंमोहाध्यवसायः, स एवं प्रधानतयोत्साह हेतुः। रौद्रे तु ममताप्राधान्यादशादिश्लेषानु चित्तमुद्दामतीति मोहविस्मय प्राधान्यमिति विवेकः।'
— काव्यानुशासनकार, पृ०सं०- २५६.

२- रस कल्लोल- कवि करन, पृ० सं०- ६.

३- स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् ।। २३४ ।।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ-तृतीय परिच्छेद,पृ०-२५६.

४- 'वीरः' प्रतापविनयाध्यवसाय सत्त्व मोहाविषादनय विस्मयविक्रमाद्यैः।
उत्साह भूः स च दया-रण-दानयोगात् त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः ।।'
--दशरूपककार.

काव्यानुशासन-कार आचार्य हेमचन्द्र ने भी तीन प्रकार का वीर रस माना है।[१]
किन्तु जहाँ दशरूपककार ने दयावीर, युद्धवीर और दानवीर को वीर प्रकार बताया है वहीं काव्यानुशासनकार के अनुरूप धर्मवीर, दानवीर और युद्धवीर ही वीर रस के भेदत्रय के रूप में सिद्ध होते हैं।

नाट्य दर्पणकार ने वीर रस के प्रकारों की संख्या और भी बढ़ादी है।[२]

अतएव `वीररस` के भेद चार हैं -- १. युद्धवीर, २. दयावीर, ३. धर्मवीर तथा ४. दानवीर।

अतः ने `वीररस` के चार भेद तो विश्वनाथ से लिये हैं, किन्तु उनके क्रमों में अन्तर है।

---: युद्ध वीर :---

`भाव प्रकाशन` में `युद्धवीर` का लक्षण दिया गया है।[३]

१- `नयादिविभाव: स्थैर्याद्यनुभावो धृत्यादिव्यभिचार्युत्साहो-धर्म-दान-युद्ध भेदो वीर: ।`
--काव्यानुशासन--हेमचन्द्र, अ०-२, सू०-१४, पृ०-११७.

२- `स चाभिकथा युद्ध -धर्म-दान-गुण-प्रतापावर्जनाद्युपाधिभेदात् ।`
--नाट्य दर्पण-- भरतमुनि, श्लोक-११८.

३- `निरायुधस्याप्येकस्य हीनस्यापि परिच्छदै: ।
अभीतिरद्भुर्युद्धं व्यवसायो रणे मद: ।
हर्ष: शस्त्रास्त्रघातेषु समरादपलायनम् ।।
भीता भय प्रदानं च प्रपन्न स्यातिमंजनम् ।
एवं युद्धात्मको वीर स्वज्ञै: कविभिरीरित: ।।
--भाव प्रकाशन: २ य अधिकार ।

विश्वनाथ ने `युद्धवीर` के लक्षण निरूपण में `बलरामायण` में अंकित राम के युद्धोत्साह की अभिव्यंजना की है।[1] करन ने `युद्धवीर` की अभिव्यंजना इस प्रकार की है ---

समद सेर अरु जन हनौ-

महमह प्रगट प्रभाव।

दल दंगल उमिटत लखत-

चढत चौगनौ चाव ।। ६४ ।।

---रस कल्लोल, पृष्ठ- ६.

---: दया वीर :---

करन `दयावीर` का लक्षण निरूपण करते हुये कहते हैं--

वचन दलीपत को लहे-

करौ धेन मन सुख्य।

नाथ देह दे राख हौ-

तौ तन मेरौ सुख्य ।। ६५ ।।

---रस कल्लोल, पृष्ठ- ६.

भाव प्रकाशनः में `दयावीर` लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है--।[2]

१- `भो लंकेश्वर। दीनतां वनकथा रामः स्वयं याचते कोऽयं ते मतिविभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किंचिद्गतम्। नैवं चेत् खरदूषण त्रिशिरसां कण्ठासृजा पंकिलः पत्री नैष सहिष्यते मम धनु ज्याबन्ध बन्धू कृतः।।`

--बलरामायण-विश्वनाथ,पृ०सं०-३५१.

२- अर्थिनामीप्सितादर्थात् प्रदायिभ्यो धिकं वसु।
अर्थिनः पुनरायातान् स्ववनानितरामपि।।
यन्मानयति दानेन वाक्येन मधुरेण च।
स्वदानात्मको वीरः कथ्यते वाक्सीतिभिः।।
--भाव प्रकाशनः २ य अधिकार।

---: धर्म वीर :---

करन ने "धर्मवीर" का लक्षण इस प्रकार दिया है-- जब देश, कोष (धन) तथा तन (भौतिक सुख या शारीरिक सुख) यह तीनों अत्यन्त वेग से छूट जाते हैं, और सत्य का ज्ञान हो जाता है, तब व्यक्ति इस रन (पृथ्वी) को छोड़ देता है वहां धर्म वीर होता है --

देस कोस तन सकल ये-
छूट जाहि इह वेग।
बूझ अकथो सत्य-
पुन तजी नरन[1] ये वेग ।। ६६ ।।[2]

---: दान वीर :---

करन कृत "दानवीर" लक्षण निरूपण -- ~~मुकुंदन वेरी रको करो~~ देखिये :-

मुकुंदन वेरी रको करो--
न लाग अभाव[3]।
मेरु खींच दे याचकन-
जस जिन करो दयाव[4]. ।।६७ ।।[5]

१- पाठ में है - प्र० रन द्वि० नरन।
२- रस कल्लोल--कवि करन, पृ०सं०-७.
३- पाठ में है- प्र० अभाव, द्वि० अभाउ।
४- पाठ में है- प्र० दयाव, द्वि०-दरपाउ।
५- रस कल्लोल--कवि करन, पृ०सं०-७.

करने में 'दया वीर' का हृदय स्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है।

'भाव प्रकाशन' में 'दानवीर' का लक्षण इस प्रकार किया गया है[1]।

भयानक रस--

काव्य दर्पणकार कहते हैं--'भय दायक वस्तु के देखने व सुनने से अथवा प्रबल शत्रु के विद्रोह आदि करने से जब हृदय में वर्तमान भय स्थायी भाव होकर परिपुष्ट होता है तब भयानक रस उत्पन्न होता है।' तब भयानक रस होता है। साहित्य दर्पणकार ने 'भयानक रस' का निरूपण इस प्रकार किया है---

'भयानक वह रस है जिसे 'भय' रूप स्थायीभाव का आस्वाद कहा जाया करता है। इसका वर्ण कृष्ण है और इसके देवता- 'काल' ।कृतान्त। हैं। काव्य कोविदों ने स्त्री किंवा नीच प्रकृति के लोगों को इसका आश्रय माना है। इसका आलम्बन भयोत्पादक पदार्थ है और ऐसे भयोत्पादक पदार्थों की भीषण चेष्टायें इसके उद्दीपन विभाव का काम करती हैं। विवर्णता, गद्-गद् भाषण, प्रलय, स्वेद, रोमांच, कम्प, इतस्ततः, अवलोकन आदि-आदि इसके अनुभाव हैं। इसके व्यभिचारी भावों में जुगुप्सा, आवेग, संमोह, संत्रास, ग्लानि, दीनता, शंका, अपस्मार, संभ्रम, मरण आदि- आदि आते हैं।[2]'

१- व्याधि-दारिद्र्य-शस्त्रास्त्र-क्षुत्पिपासादि-पीडितान् ।
अनुगृह्णाति यः प्रीत्या: स वीर: स्याद् दयात्मक: ।।
--भाव प्रकाशन: ३ य अधिकार।

२- भयानको भयस्थायिभावो भूताधिदैवत: ।
स्त्रीनीचप्रकृति: कृष्णो मतस्तत्त्वविशारदै: ।। २३५ ।।
यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम् ।
चेष्टा,घोरत रास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुन: ।। २३६ ।।
अनुभावो त्र वैवर्ण्य गद्गद् स्वर भाषणम् ।
प्रलयस्वेदरोमांचकम्पदिक्प्रेक्षणादय: ।। २३७ ।।
जुगुप्सावेगसंमोह संत्रासग्लानि दीनता: ।
शंका पस्मार सम्भ्रान्तिमृत्य्वाद्या व्यभिचारिण: ।। २३८ ।।
--साहित्य दर्पण,कृष्ण०,विश्वनाथ, पृष्ठ- २५६.

कवि करन के अनुसार -- सांप, व्याघ्र आदि इसके विभाव हैं, कम्पादि इसके अनुभाव हैं, जहां पर मोहादि हो वहां संचारी भाव समझना चाहिये। इसका स्थायीभाव 'भय' है। कवि करन के अनुसार भयानक रस का लक्षण निम्नवत् है--

पन्नग बाघ विभाव जहं -
कंपादिक अनुभाव।
मोहादिक रे होत है-
तहं संचारी भाव ।। ६८ ।।

भय थाई जामें जहां-
व्यंग करे गुनवान ।
हहै भयानक रस सरस-
कविजन कहत बखान ।। ६९ ।।[1]

भरत लिखते हैं कि विकृत (घोर) शब्द करने वाले जीव के दर्शन, संग्राम, अरण्य और शून्य गृह में जाने एवं गुरु और नृप के अपराध करने के फलस्वरूप उत्पन्न भय से भयानक रस की उत्पत्ति होती है।[2] करन की अपेक्षा विश्वनाथ का लक्षण अधिक पूर्ण है।

करन ने 'भयानक' रस का उदाहरण इस प्रकार दिया है--

दनुज दीह दुध्धर-
समर भाजन भ्रमर मयंक ।
कमल गात पग डगमगत -
भाजन संक ।। ७० ।।[3]

१- रस कल्लोल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ७.
२- नाट्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या- १०९.
३- रस कल्लोल--कवि करन, पृष्ठ संख्या- ७.

विभिन्न जीवों को देखकर शरीर कांपने लगे, पग डगमगाने लगे तथा बोलना कठिन हो गया, अत: यहां 'भयानक रस' की अभिव्यक्ति है।

----: वीभत्स रस :----

'वीभत्स' वह रस है जिसे 'जुगुप्सा' के स्थायीभाव का अभिव्यंजन माना गया है। इसका वर्ण नील है। इसके देवता महाकाल हैं। इसके आलम्बन दुर्गन्धमय मांस, रक्त, मेद (चर्बी) आदि आदि हैं। इन्हीं दुर्गन्धमय मांसादि में कीड़े पड़ने आदि को इसका उद्दीपन विभाव माना जाता है। निष्ठीवन (थूकना), आस्यवलन (मुंह फेरना), नेत्र संकोचन (आंखें मींजना) आदि आदि इसके अनुभाव हैं और मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि तथा मरण आदि व्यभिचारी भाव हैं।[1]

भरत किसी अनीप्सित वस्तु के दर्शन, उसकी गंध, रस, स्पर्श अथवा शब्द-दोष से एवं अन्य बहुत-सी उद्वेगजनक वस्तुओं से 'वीभत्स रस' की उत्पत्ति मानते हैं।[2]

१- जुगुप्सास्थायिभावस्तु वीभत्स: कथ्यते रस: ।
नीलवर्णो महाकालदैवतोऽयमुदाहृत: ।। २३९ ।।

दुर्गन्धमांसरुधिरमेदांस्यालम्बनं मतम् ।
तत्रैव कृमिपातद्यमुद्दीपनमुदाहृतम् ।। २४० ।।

निष्ठीवनास्यवलननेत्रसंकोचनादय: ।
अनुभावास्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिण: ।। २४१ ।।

मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादय: ।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ,पृ०सं०-२६१, तृतीय परिच्छेद ।

२- नाट्यशास्त्र, पृ०-१०२.

थूकना आदि इसके अनुभाव हैं, मोहादि इसके संचारी भाव हैं, जिससे लार वस्त प्रगट हो वह `वीभत्सरस` कहलाता है। कवि करन ने वीभत्स रस की अभिव्यंजना इस प्रकार की है --

अदरज वस्त्र विगे अयो-
वासों कहत विभाव।
कहत थुंक वे आदि दे-
ते सब है अनुभाव ।। ७१ ।।

मोहादिक संचारीयो मिलि-
आन जह कोइ।
लार वस्त जामे प्रगट -
सो वीभत्स विलोह ।। ७२ ।। [1]

यथा :-- लेन लरत छत्रसाल की
असरत संगर जौन।
जुर जुगिन कर कुंभ-
ते पीयत गले लन मौन ।। ७३ ।। [2]

करन के `वीभत्सरस` का लक्षण विश्वनाथ के लक्षण से साम्य तो रखता है, किन्तु यह लक्षण करन की अपेक्षा अधिक पूर्ण है।

----: अद्भुत रस :----

`अद्भुत` वह रस है जिसे `विस्मय` के स्थायीभाव का अभिव्यंजन कहते हैं। इसका वर्ण पीत है। इसके देवता गन्धर्व हैं। इसका आलम्बन अलौकिक वस्तु है। अलौकिक वस्तु का गुण -कीर्तन इसका उद्दीपन है। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच,

---

१- रस कल्लोल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ७.

२- रस कल्लोल-- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ७.

गद्गद् स्वर, संभ्रम, नेत्र-विकास आदि आदि इसके अनुभाव हैं। इसके वितर्क, आवेग, संभ्रम, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव परिपोषण का काम करते हैं।[1] नारायण पण्डित अद्भुत रस को ही प्रधानता देते हैं ।

अभिनव गुप्त के मत से "चमत्कार शब्द के तीन अर्थ हैं। एक अर्थ है- प्रसुप्त वासना के साथ साधारणीकरण का मिलन-जनित व परिचयजनित एक विशिष्ट चेतना का उद्बोध है, दूसरा है- चमत्कारजनित अलौकिक आह्लाद, और तीसरा -- चमत्कार द्वारा ही उद्भूत कम्प पुलकादि शारीरिक विकार।"

"उसको साक्षात्कार कहा जा सकता है अथवा मन का अध्यवसाय निश्चयात्मिका वृत्ति भी उसे कह सकते हैं, संकल्प व स्मृति कह सकते हैं अथवा स्फूर्ति व प्रतिभा कह सकते हैं।"[2]

मम्मट ने चमत्कार शब्द का आस्वाद व चर्व्य-मानता यही अर्थ किया है। किसी-किसी ने सौंदर्यात्मक विशिष्ट बोध को चमत्कार कहा है। पर विश्वनाथ चमत्कार का अर्थ हृदय-विस्तार कहते हैं। उसे आश्चर्य भी कहते हैं।[3]

१- अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्व दैवत: ।। २४२ ।।

पीतवर्णो वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम् ।
गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुन: ।। २४३ ।।
स्तम्भ: स्वेदोऽथ रोमान्चगद्गदस्वर संभ्रमा: ।
तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावा: प्रकीर्तिता: ।। २४४ ।।
वितर्कावेगसंभ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिण: ।

--साहित्य दर्पण:, तृतीय परिच्छेद, पृ०सं०- २६२.

२- नाट्यशास्त्र - टीका, पृष्ठ-२८१, --- गायकवाड़ संस्करण ।

३- चमत्कारश्चित्त-विस्तार-रूपोविस्मयापरपर्याय: ।

--साहित्य दर्पण- विश्वनाथ, पृ०सं०- २६३.

वैष्णवों ने चार प्रकार के अद्भुत माने हैं। १- दृष्ट, २- श्रुत, ३- संकीर्तित, ४-अनुमति।

करन ने `अद्भुत रस` का लक्षण निरूपण इस प्रकार किया है-- जहां माया विभाव है, रोमांच अनुभाव है, भ्रमादि इसके संचारी भाव हैं, विस्मय इसका स्थायीभाव है। जहां क्रम से भावादि समूह आये और कविगण का हृदय मग्न हो उठे वहां अद्भुत रस समझना चाहिए।

माया जहां विभाव है-
रोमादिक अनुभाव।
भ्रमादिक संचारीयो विस्मय-
थाई भाव ।। ७४ ।।

जहं क्रम तैसे आ कही-
भावादिक समदान।
कवराजन को मगन मन -
अद्भुत कल्प बखान ।। ७५ ।।[१]

अद्भुत :-- कहा कहौ कहत न बनै-
सुनौ अरसात।
देख्यो दिवो गोप सुत गिरवर -
राखे हाथ ।। ७६ ।।[२]

क्या कहें कुछ कहते भी नहीं बनता है, जरा अरसात हमारी बात तो सुनो। देखा दिन में गोपिका श्रीकृष्ण की गोद में सो रही थी और गिरधारी उस पर हाथ रखे हुये थे। आश्चर्यचकित बात होने से यहां `अद्भुत रस` है।

१- रस कल्लोल--कवि करन, पृष्ठ संख्या--७.

२- रस कल्लोल--कवि करन, पृष्ठ संख्या--७.

यद्यपि करन ने 'अद्भुत रस' लक्षण विश्वनाथ के साहित्य दर्पण से उद्धृत किये हैं, किन्तु विश्वनाथ का लक्षण अपने में पूर्णता लिये हुये है। करन ने आदि-आदि लिखकर सभी का अलग-अलग नामोल्लेख नहीं किया है।

----: शान्त रस :----

'शान्त' वह रस है जो कि 'शम' रूप स्थायी भाव का आस्वाद होता है। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति हैं। इसका वर्ण कुन्द श्वेत अथवा चन्द्र-श्वेत है। इसके देवता श्री भगवान् नारायण हैं। अनित्यता किं वा दुःखमयता आदि के कारण समस्त सांसारिक विषयों की निःसारता का ज्ञान अथवा साक्षात् परमात्म-स्वरूप का ज्ञान ही इसका 'आलम्बन' विभाव है। इसके उद्दीपन हैं - पवित्र आश्रम भगवान् की लीलाभूमि, तीर्थ स्थान, रम्य कानन, साधु-संतों के संग आदि आदि। रोमांच आदि इसके अनुभाव हैं और इसके व्यभिचारी भाव हैं-- निर्वेद, हर्ष, स्मृति, मति, जीवदया आदि।[1]

१- शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः ।। २४५ ।।
कुन्देन्दु सुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः ।
अनित्यत्वादिनाशेषवस्तुनिःसारता तु या ।। २४६ ।।
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते ।
पुण्याश्रमहरि क्षेत्र तीर्थ रम्यवनादयः ।। २४७ ।।
महापुरुष संगाद्यास्तस्योद्दीपन रूपिणः ।
रोमांचाद्यानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः ।। २४८ ।।
निर्वेद हर्ष स्मरणमति भूत दयादयः ।
---साहित्य दर्पणः तृतीय परिच्छेद, पृष्ठ०-२६३.

नाट्य दर्पणकार के भी अनुसार 'शम' ही शान्त का स्थायीभाव है।[1] भरत शान्त रस का उदाहरण देते हुए लिखते हैं कि बुद्धि बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के सम्यक् निरोध के द्वारा अध्यात्म संस्थित एवं सब जीवों के सुख और हित का चिन्तन करने वाली, सब प्राणियों पर समदृष्टि रखनेवाली तथा जहां न सुख हो, न दुख हो, न द्वेष हो और न मत्सर हो इसी में शान्त रस होता है।[2]

काव्यानुशासनकार ने 'शम' को ही शान्त का स्थायीभाव माना है और शम का अभिप्राय 'तृष्णाक्षय' लिया है।[3]

भरत ने 'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः' कह कर शान्त रस को पृथक कर दिया। इस रस में मन का कोई विकार नहीं रह जाता -- न क्षोभ, न उद्वेग। चित्त में शान्ति आ जाती है। इसी से किसी ने शान्त को रस ही नहीं माना है।[4] शम को भी किसी-किसी ने रस माना है पर नाटक में इसकी

१- 'संसारभय वैराग्य तत्व शास्त्रविमर्शनः।
शान्तो भिनयनं तस्य क्षमा ध्यानोपकारतः।।'
— नाट्य दर्पण: ३ य विवेक.

२- नाट्यशास्त्र- पृष्ठ संख्या- १०४.

३- 'वैराग्यादिविभावो यमाद्यनुभावो धृत्यादि व्यभिचारि शमः शान्तः' --
वैराग्य संसारभीरुतातत्वज्ञानवीतराग परिशीलन परमेश्वरानुग्रहादिविभावो यमनियमाध्यात्म शास्त्रचिन्तनाद्यनुभावो धृतिस्मृति निर्वेद मत्यादिव्यभिचारी तृष्णाक्षयरूपः शमः स्थायिभावश्चर्वणां प्राप्तः शान्तो रसः।'
--- काव्यानुशासन - २-१७.

४- शान्तस्य निर्विकारत्वात् न शान्तं मे निरे रसम्।
---नाट्यशास्त्र,पृ०सं० २५१६१.

पुष्टि नहीं होती[1]। भरत ने 'शान्तो पि नवमो रस' इत्यादि कह कर शान्तरस भी निरूपित किया है। वे शान्त रस से ही सब रसों की उत्पत्ति और उसी में इनका अवसान होना भी मानते हैं।[2] कोई यह कहे कि शान्त रस सर्वजन सुलभ नहीं, इससे उसका निराकरण कर देना चाहिये, यह उचित नहीं।[3] मम्मट आदि अनेक आचार्यों ने 'निर्वेद' को ही शान्तरस का स्थायीभाव माना है। इन्होंने इसके दो रूप माने हैं, विषयों में तत्व-ज्ञान से जहां निर्वेद उत्पन्न होता है वहां स्थायी होता है और जहां इष्ट-वियोग तथा अनिष्ट प्राप्ति से निर्वेद उत्पन्न होता है वहां संचारी होता है।[4]

भरत ने जो विभाव दिये हैं उनसे यही विदित होता है कि रोग, शोक, दरिद्रता, अपमान जैसे क्षुद्र विभावों द्वारा उत्पन्न निर्वेद संचारी ही होता है।

शान्त रस के स्थायी एक नहीं, अनेक माने गये हैं। किसी ने विस्मय-शम को माना है। दूसरे ने उत्साह को माना है। किसी ने जुगुप्सा को और किसी ने सभी को स्थायी माना है। किन्तु तत्व ज्ञानोत्पन्न निर्वेद ही इसका स्थायी है। भोज ने 'धृति' को स्थायी भाव माना है।[5]

१- शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य।
——दशरूपक, पृ०-१६५.

२- स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भावः प्रवर्तते पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते।
——नाट्यशास्त्र, पृ०सं०-६। ९०.

३- यदि नाम सर्वजनानुभवगोचरता तस्य नास्ति नैतावतासौ--प्रतिक्षेप्तुं शक्यः।
—ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ० ३६४.

४- स्थायी स्याद्विषयेष्वेव तत्वज्ञानोद्भवो यदि।
इष्टानिष्ट वियोगाप्ति कृतस्तु व्यभिचार्यसौ।
——संगीत रत्नाकर.

५- तत्र शान्तस्य स्थायी विस्मय शम इति केचित्पठितः। उत्साह एवास्य स्थायी इत्यन्ये। जुगुप्सेति कश्चित् सर्वे इत्येके। तत्वज्ञानजो निर्वेदो एव स्थायी।
——नाट्यशास्त्र, पृ०सं० १०१.

आनन्दवर्द्धन शान्त रस को तो मानते हैं, पर उसका स्थायी भाव 'तृष्णाक्षय' मानते हैं।[१]

अभिनव गुप्त कहते हैं कि शान्त का स्थायी भाव तत्वज्ञान है, तत्वज्ञान का अभिप्राय आत्मज्ञान है वही मोक्ष का साधन है।[२]

भरत ने शान्त रस का यह रूप प्रस्तुत किया है-- जहां न दु:ख है, न सुख है, न द्वेष है, न मात्सर्य है, और जहां पर सब प्राणियों में सम भाव है वहां शान्त रस होता है।[३]

युक्तदशा अर्थात् योगी के ध्यानमग्न होने की अवस्था, वियुक्त अर्थात् योगी को योग सिद्धियां प्राप्त हो जाने की अवस्था और युक्त-वियुक्त अर्थात् योगी के अतीन्द्रिय विषयों के ज्ञान की अवस्था में जो शम रहता है वही शान्त रस का स्थायी भाव है।[४]

१- शान्तश्च तृष्णाक्षयसुखस्य य: परिपोषस्तल्लक्षणो रस: प्रतीयत एव।
--- ध्वन्यालोक, पृ०सं०- ३९२.

२- इह तत्वज्ञानमेवतावन्मोक्षसाधन मिति तस्यैव मोक्षे स्थायिता युक्ता। तत्वज्ञानं नाम आत्मज्ञानमेव।
--- नाट्यशास्त्र, पृ० सं०-३०१.

३- न यत्र दु:खं सुखं न द्वेषो नापि मत्सर:।
सम: सर्वेषु भूतेषु स शान्त: प्रथितो रस:।
---भरत मुनि, नाट्यशास्त्र, पृ०सं०-३०५.

४- युक्त वियुक्त दशायामवस्थितो य: शम: स एव यत:।
रसतामेति तदस्मिन् संचार्यादि: स्थितिश्च न विरुद्धा।। २५०।।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, तृतीय:परिच्छेद:, पृ०सं०-२४५.

करन ने शान्त रस को रसों में नवां स्थान दिया है, उसका लक्षण निरूपण करते हुये लिखे हैं --- कि शांत का विभाव सन्तों की संगति है, जिसके क्षमाशीलता आदि अनुभाव हैं, थम्हादिक इनके संचारी भाव होते हैं, निर्वेद इसका स्थायी भाव है। शान्त रस सन्तों को सुख प्रदान करने वाला, पुण्यकारी है--

संत संगादि विभाव जहां,
छमा आदि अनुभाव।
थम्हादिक है होत है,
तह संचारी भाव ।। ७७ ।।

प्रगट व्यंग निर्वेद जहं,
कहो सु करन विचार।
संत सुखद सो सांत रस,
परम पुनीत निहार ।। ७८ ।।[1]

यथा-- माया ही कांत रवि फची च्छंह मंडल मे स्याम सेत,
लाख फूल कपट महामरी ।
बोरे हम देखे देखो याही में मगन होत,
बाग बन पंदर मे ही दारुन[2] लगी परी।
करन मनत बैठी लोभ के मतंग ही पे मान्त ना,
सीघ यह जान यो कहाछटी[3]।

भ्रमत रहत विन कहूं न थिर होत ये,
रे मन भ्रमरकोह प्रकृत कहापरी ।। ७९ ।।

१- रस कल्लोल -- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ८.
२- पु० ये दारु मठ पीयरी। पाठ में है।
३- पु० परी, द्वि० परी। पाठ में है।

करन ने "माया" का बहुत सरस चित्र प्रस्तुत किया है, कवि कहता है कि माया ने अपने जाल में ऐसा फंसा रखा है कि भ्रमर की तरह बार-बार मन वहीं चला जाता है। इस "माया" रूपी संसार में कवि फंसा हुआ है।

विश्वनाथ ने निर्वेद को "शान्तरस" का व्यभिचारी भाव माना है, और "शम" को स्थायी भाव। नाट्य दर्पणकार काव्यानुशासनकार ने भी इसे स्वीकार किया है। भरत ने "निर्वेद" को संचारी माना है। भोज ने धृति को, आनन्द वर्द्धन ने "तृष्णाक्षय" को शान्त रस का स्थायीभाव माना है, किन्तु मम्मटाचार्य ने करन के सादृश्य "निर्वेद" को "शान्तरस" का स्थायीभाव माना है।

करन ने १० वां रस "माया" को स्वीकार किया है। इसके बाद "वात्सल्य" और "भक्ति" रस को भी माना है।[१] भरतमुनि ने १०वां रस "वात्सल्य" माना है। यह "वात्सल्य" करन ने भरतमुनि से ही लिया है।

—: रसों के रंगों का भेद एवं वर्गीकरण :—

विश्वनाथ ने "श्रृंगार" तथा "हास्य" के इतर रसों के लक्षण के अन्तर्गत रस विशेष के स्थायीभाव, वर्ण तथा देवता का उल्लेख किया है। भरतमुनि ने लक्षण के अन्तर्गत इन बातों को न लिखकर रसों के वर्ण का पृथक वर्णन किया है। करन ने भी भरतमुनि को अपना आधार बनाया और उन्होंने भी लक्षण के अन्तर्गत इन बातों को न लिखकर रसों के वर्ण का पृथक वर्णन किया है।

विश्वनाथ ने "वीर-रस" का वर्ण "हेम" लिखा है।[२] करन के अनुसार वीर रस का वर्ण गौर है। भरतमुनि ने भी "वीर-रस" का वर्ण गौर ही माना है। भरत के अनुसार श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा

१- माया वह वत्सलह लीन भक्ति रस और ॥ ८० ॥
—रस कल्लोल -कवि करन, पृष्ठ संख्या- ८०

२- "उत्तमप्रकृति वीरः उत्साह स्थायिभावः ।
महेन्द्रदेवतो हेमवर्णो यं समुदाहृतः ॥ २३२ ॥
—साहित्य दर्पण, पृष्ठ संख्या- १५५

अद्भुत रस का वर्ण क्रमशः श्याम, श्वेत, कपोत, रक्त, गौर, कृष्ण, नील तथा पीत होता है।[1]

करन ने भी क्रमानुसार विभिन्न रसों का यही वर्ण बतलाया है--

स्व स्व सेत कपोत रंग,
चित्र लाल अरु गौर।
धूम स्याम अनुगौर पित,
क्रम से छवि सिर मौर ।। ८० ।।[2]

--: रसों के देवताओं का निरूपण :--

करन ने `रसों` के देवताओं का निरूपण इस प्रकार किया है-- विष्णु, अधिष्ठातृदेव, यम, शिव, प्रजापति विष्णु, महाकाल, ब्रह्म तथा परब्रह्म हैं।

विष्नु कहत वरु पवन सिव,
यक प्रजावह वान।
महाकाल धाताहि,
परब्रह्म पहचान ।। ८२ ।।[3]

१- श्यामो भवति शृंगारः सितो हास्य प्रकीर्तितः।
कपोतः करुणश्चैव रक्तो रौद्रः प्रकीर्तितः ।। ४७ ।।

गौरो वीरस्तु विज्ञेयः कृष्णश्चैव भयानकः।
नीलवर्णस्तु बीभत्सः पीतश्चैवाद्भुतः स्मृतः ।। ४८ ।।
--नाट्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-३००.

२- रस कल्लोल -कवि करन, पृष्ठ संख्या- ८.

३- रस कल्लोल -कवि करन, पृष्ठ संख्या- ८.

विश्वनाथ ने शृंगार रस के देवता विष्णु, हास रस के देवता अधिष्ठान देव (प्रमथ देव), करुण रस के देवता यम, रौद्रस के देवता रुद्र, वीर रस के देवता महेन्द्र, भयानक रस के देवता काल, अद्भुत रस के देवता गन्धर्व तथा शान्त रस के देवता श्री भगवत् नारायण हैं।[१]

भरत के रसों के देवताओं का निरूपण विश्वनाथ कृत निरूपण कुछ हद तक साम्य रखता है। भरत ने देवताओं का क्रमानुसार नामोल्लेख नहीं किया है।

१६- सात्विक भाव :-

'सत्व के उद्रेक से उत्पन्न जो मनोविकार हैं उन्हीं को सात्विक भाव कहा करते हैं।'[२]

१- स्थायिभावो रति: श्यामवर्णो यं विष्णुदैवत: ।।
हास्यो हास स्थायिभाव: श्वेत: प्रमथ दैवत: ।। २१४ ।।

वीर: कपोतवर्णो यं कथितो यमदैवत: ।। २२२ ।।

रौद्र: क्रोध स्थायिभावो रक्तो रुद्राधिदैवत: ।। २२७ ।।

महेन्द्र देवतो हेमवर्णो यं समुदाहृत: ।। २३२ ।।

भयानको भयस्थायिभावो भूताधिदैवत: ।
महाकाल देवतो यमुदाहृत: ।। २३५ ।।

अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्व दैवत: ।। २४२ ।।

शान्त:शम स्थायिभाव ----- श्रीनारायण दैवत: ।। २४५ ।।
--साहित्य दर्पण -विश्वनाथ,तृतीय परिच्छेद, पृ०सं०-क्रमश: २११, २१३, २१५, २१७, २२०, २२२, २२३,

२- विकारा: सत्वसंभूता: सात्विका: परिकीर्तिता: ।। १३५ ।।
--साहित्यदर्पण: तृतीय परिच्छेद:आचार्य विश्वनाथ,पृ०सं०-२०१,

निम्नलिखित जो सत्व संभूत आठ मनोविकार हैं वे ही आठ सात्विक भाव हैं-- १-स्तम्भ, २-स्वेद, ३-रोमांच, ४-स्वरभंग, ५-वेपथु, ६-वैवर्ण्य, ७-अश्रु और ८-प्रलय ।[१]

सत्व का अर्थ रजोगुण और तमोगुण से रहित मन है ।[२] भरतमुनि ने ४९ भावों की परिगणना में स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरसाद अथवा स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलय नामक आठ भावों की पृथक रूप से सात्विक संज्ञा दी है। इनका कथन है कि समाहित मन से सत्व की निष्पत्ति होती है। मन के समाहित बिना रोमांच आदि स्वाभाविक रूप से उत्पन्न नहीं हो सकते। उदाहरणत: दु:ख तथा सुख की वास्तविकता के बिना रोदन-रूप दु:ख तथा हर्ष-रूप सुख कोई प्रकट नहीं कर सकता।[३] 'दशरूपक',[४] 'प्रतापरुद्रीयम्'[५] तथा 'रसरत्न प्रदीपिका'[६] में भी भरत के इस मत का समर्थन किया गया है।

१- स्तम्भ: स्वेदोऽथ रोमांच: स्वरभंगोऽथ वेपथु: ।। १३५ ।।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विका: स्मृता: ।
--साहित्य दर्पण: तृतीय परिच्छेद आचार्य-विश्वनाथ, पृ०सं०-२०१.

२- रजस्तमोभ्याम् स्पृष्टं मन: सत्वमिहोच्यते ।
-- सरस्वती कण्ठाभरण, पृ० सं० ५।२०.

३- ना० शा०, चौं०, पृ०- ६५.

४- सत्वादेव समुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम् । --द०रू०, पृ०-१२४.
परगतदु:खहर्षादि भावनायामत्यन्तानुकूलान्त: करणत्वं सत्वं ।
--द० रू०, पृ०-१२५.

५- परगतदु:खादि भावना भाविलान्त: करणत्वं सत्वम् । ततो भवा: सात्विका: ।
-- प्र० रु०, पृ०- ३३६.

६- यद्यपि एते यथा संभवं सर्वेषु रसेषु व्यभिचरन्ति तथापि व्यभिचारित्वमनादृत्य सत्वमात्रसंभवा भवन्ति इति सात्विका इति भिन्नतया भणिता। तच्च सत्वं पर गतदु:खादि भावनायां अत्यन्तानुकूलान्त: करणत्वं मन: प्रभाव: । तेन सत्वेन वृत्ता: सात्विका: ।

-- र० र० प्र०, पृष्ठ७।१०.

सत्व के योग से उत्पन्न भाव सात्विक कहे जाते हैं। सात्विक का एक अर्थ है जीवन-क्रिया से सम्बन्ध रखनेवाले भाव जैसा कि तरंगिणीकार ने कहा है।[1] अभिनव गुप्त ने अपने काव्य दर्पण में आठ सात्विक भावों की गणना की है।

करन ने 'सात्विक' भावों का लक्षण न देकर केवल नामोल्लेख ही किया है। करन ने आठ सात्विक भाव माने हैं, जिनके नाम ये हैं -- १- कंप, २-स्वेद, ३-अश्रु, ४-प्रलय, ५-विवरन (विवर्ण्य), ६-स्वर भंग, ७-पंमादिक, ८-रोमांच।

भरत, धनंजय, भोज, शिंगभूपाल और विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने सात्विक भाव तो आठ ही स्वीकार किए हैं, परन्तु उन्होंने करन के 'पंमादिक' के स्थान पर 'स्तम्भ' का उल्लेख किया है। भरत और विश्वनाथ के श्लोक भी कुछ पाठान्तर से परस्पर मिलते हैं और दोनों ग्रन्थों में सात्विक भावों के लिये जाने का क्रम भी एक ही है। विश्वनाथ, भरत तथा भूपाल के क्रम केवल से नहीं मिलते।

कंप स्वेद अंसुवा प्रलय,
विवरन अरु सुरभंग।
पंमादिक रोमाच यह,
आठौ सात्विक अंग।। ५५०।।[2]

उद्द यथा :- कंपत सौ गात कछू,
छाये उर स्वेद कन।
आंसुवा कुमल नैन,
मौद छवि छाये है।

जड़ता समेत कछू बदन कदलि मन छीव सुरभंग कछू कंठ छिंदुराये है।
सुमन कदंब जैसे मौच तन कंटकित कर से रचि है छछ तन परम सुहाये है।
अंग छवि छाये मिल कौन चित चाये स्याम मौद मन भाये स्याम सुन्दर सुहाये है।।[3]
।।५५२।।

१- सत्वं जीवच्छरीरं तस्य धर्माः सात्विका। -- रसतरंगिणी, पृ०सं०-५८.
२- रस कल्लोल-कवि करन, पृ०सं०-१४.   ३-रस कल्लोल-कवि करन, पृ०सं०-१५.

५- संचारी भाव (व्यभिचारी भाव) :--

काव्य दर्पणकार के अनुसार "संचरणशील अर्थात् अस्थिर मनोविकारों या चित्तवृत्तियों को संचारी भाव कहते हैं।" ये सब भाव रस के उपयोगी होकर जलतरंग की भांति उसमें संचरण करते हैं। इससे ये संचारी भाव कहे जाते हैं। इनका दूसरा नाम व्यभिचारी है। विविध प्रकार से अभिमुख -अनुकूल होकर चलने के कारण इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहते हैं।[१]

वे भाव व्यभिचारी भाव कहे जाया करते हैं जो (विभाव और अनुभाव की अपेक्षा) विशेष उत्कटता किं वा अनुकूलता से (वासनारूप से सामाजिक हृदय में सदा विराजमान) रत्यादि स्थायी भावों को रसास्वाद में परिणत किया करते हैं तथा जिन्हें स्थायी भावों के समुद्र में बुदबुद (बुलबुले) की भांति उन्मज्जित किं वा निमज्जित होते हुए देखा जाया करता है।[२] तात्पर्य यह है कि रत्यादि-रूप स्थायी भाव तो हृदय में सदा स्थिर रूप से प्रवाहित हुआ करते हैं और निर्वेदादि भाव ऐसे हैं जो रत्यादि भावों से ही उद्भूत होते और उन्हीं में तिरोभूत होते हैं उनकी रस-रूप से अभिव्यक्ति विशेषतया सहायक होती है।

भरत नाट्यशास्त्र में "व्यभिचारी भाव" की यह व्युत्पत्ति दी है।[३]

"रसार्णवसुधाकर" (द्वितीय विलास) की ये पंक्तियां "व्यभिचारीभाव" की बड़ी सुन्दर परिभाषा है।[४] साहित्य दर्पणकार ने निम्न व्यभिचारीभाव के

१- काव्य दर्पण, विद्यावाचस्पति पं०रामदहिन मिश्र, पृ०- ५७.

२- विशेषादाभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिणः ।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्च तद्भिदाः ।। १५० ।।
—साहित्य दर्पण: तृतीय परिच्छेद: आचार्य विश्वनाथ, पृ०सं०-२०३.

३- विविधमाभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः ।
—भरतमुनि- नाट्यशास्त्र, चौ० पृ०-८५.

४- व्यभी इत्युपसर्गौ द्वौ विशेषाभिमुखत्वयोः ।
विशेषेणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति ।।
वागंगसत्त्वसूच्या ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिणः ।
संचारयन्ति भावस्य गतिं संचारिणोऽपि ते ।।
उन्मज्जन्तो निमज्जन्तः स्थायिन्यमृतवारिधौ । ऊर्मिवद्वर्धयन्त्येनं यान्ति तद्रूपतां च ते ।। — रसार्णवसुधाकर, द्वितीय विलास ।

प्रकारों का निर्देश किया है -- १-निर्वेद, २-आवेग, ३-दैन्य, ४-श्रम, ५-मद, ६-जड़ता, ७-औग्र्य, ८-मोह, ९-विबोध, १०-स्वप्न, ११-अपस्मार, १२-गर्व, १३-मरण, १४-अलसता, १५-अमर्ष, १६-निद्रा, १७-अवहित्था, १८-औत्सुक्य, १९-उन्माद, २०-शंका, २१-स्मृति, २२-मति, २३-व्याधि, २४-त्रास, २५-लज्जा, २६- हर्ष, २७-असूया, २८-विषाद, २९-धृति, ३०-चपलता, ३१-ग्लानि, ३२-चिन्ता और ३३-वितर्क।[1]

दशरूपककार ने भरत की परिभाषा को स्वीकार करते हुए जहां यह कहा कि विशेष रूप से अभिमुख होकर संचार करने के कारण भाव व्यभिचारी कहे जाते हैं, वहां इन्होंने यह भी कहा कि स्थायीभाव तथा संचारी भावों का परस्पर ऐसा संबंध है जैसा वारिधि के साथ कल्लोल का सम्बन्ध होता है। जिस प्रकार तरंगें वारिधि में उठती और निमग्न होती रहती हैं वैसे ही स्थायी भाव रूपी वारिधि में संचारी भावरूपी तरंगें उठती और मग्न होती रहती हैं। स्थायीभाव के अनुकूल ही संचारी भावों का आविर्भाव-तिरोभाव होता रहता है।[2] काव्य प्रकाशकार ने इन्हें स्पष्टतः स्थायी भाव का सहकारी कहा है।[3]

१- निर्वेदावेगदैन्यश्रममदजड़ता औग्र्यमोहौ विबोधः,
स्वप्नापस्मारगर्वा मरणमलसतामर्षनिद्रा वहित्थाः।
औत्सुक्योन्मादशंकाः स्मृतिमति सहिता व्याधिसन्त्रासलज्जा,
हर्षासूयाविषादाः सधृतिचपलता ग्लानिचिन्तावितर्काः ।। १४१ ।।
--साहित्य दर्पण: आचार्य विश्वनाथ, पृष्ठ संख्या-२०५.

२- विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ ।।
--- द० रू०, ४।७.

३- कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
विभावा अनुभावास्तत कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।।
--काव्य प्रकाश, ४।२७-२८ ।पृ० ४३।

काव्य प्रकाशकार ने संचारी भाव के ३३ भावों की गणना मात्र की है।

करन के अनुसार संचारी भाव का लक्षण यह है -- मोह आदि को संचारी भाव कहते हैं। उनके अनुसार संचारी भाव की संख्या ३१ हैं। करन ने संचारियों के ३१ भावों का लक्षण निरूपण भी किया है, जो उनके ~~संस्कृत-ग्रन्थों-में~~ पाण्डित्य का प्रदर्शन है।

संचारी भावों में उन्होंने-- १-निर्वेद, २-ग्लानि, ३-असूया, ४-शंका, ५-मद, ६-श्रम, ७-आलस्य, ८-चिन्ता, ९-दीनता, १०-स्मृति, ११-व्रीडा, १२-जड़ता, १३-हर्ष, १४-गर्व, १५-विषाद, १६-औत्सुक्य, १७-आवेग, १८-निद्रा, १९-अपस्मार, २०-अमर्ष, २१-सुप्त, २२-विबोध, २३-त्रास, २४-अवहित्था, २५-उग्रता, २६-व्याधि, २७-धैर्य, २८-शान्त, २९- तर्क, ३०-उन्माद, ३१- चपलता को गिना है।

संस्कृत आचार्यों द्वारा दिए मोह, मति तथा मरने को "करन" ने छोड़ दिया है तथा "शान्त" का उल्लेख किया है। यह करन की निजी कल्पना है।

निर्वेद-लक्षण :--

"निर्वेद" का अभिप्राय है। स्वावमानन। अपने आपको धिक्कारने का। इसके कई निमित्त हो सकते हैं -- जैसे कि तत्वज्ञान, आपत्ति, ईर्ष्या आदि-आदि। इसके होने से दीनता, चिन्ता, अश्रु, निःश्वास, विवर्णता और उच्छ्वास आदि उत्पन्न हुआ करते हैं[१]।

१- तत्वज्ञानापदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम्।
दैन्यचिन्ताश्रुनिःश्वासवैवर्ण्योच्छ्वसितादिकृत ।। १४२ ।।
--साहित्य दर्पण--विश्वनाथ, पृष्ठ०-२०५.

नाट्याचार्य भरतमुनि ने `निर्वेद` का विशद् लक्षण दिया है[१]। यहां यह भी स्पष्ट किया है कि निर्वेद का अभिप्राय `स्वावमानन` अथवा `आत्माधिक्षेप` का ही है।

`करन` कहते हैं कि जहां तत्वज्ञान, आपत्ति एवं ईर्ष्या के निमित्त हृदय में दुख उत्पन्न हो, और अपने आपको धिक्कारें वहां `निर्वेद` होता है।

ग्यान विपत्त तें इरिषा,
करै जो जीय को खेद।
जहां अपुन पे निंदबो,
ताहि कहत निर्वेद ।। ८३ ।।[२]

यथा :- तन संपत तरुनीतनय,
प्रभुता के मद मांह।
गौरीपति के चरन तज,
भटकत फिरत वृथाहि ।। ८४ ।।[३]

तरुणी स्वयं को धिक्कार रही है कि गौरीपति के चरन कमल को छोड़ कर इधर-उधर भटक रही है, अतः यहां निर्वेद है। इसका निमित्त ईर्ष्या तथा इसके होने से दुःख उत्पन्न हो रहा है।

करन का `निर्वेद` लक्षण निरूपण विश्वनाथ के `निर्वेद` लक्षण का प्रतिरूप है, इसमें कोई मौलिकता का प्रदर्शन नहीं है।

१- `इष्टजनविप्रयोगाद् दारिद्र्याद् व्याधितस्तथा दुःखात्।
परवृद्धिं वा दृष्ट्वा निर्वेदो नाम संभवति ।।
बाष्पपरिप्लुतनयनः, पुनश्च निःश्वासदीनमुखनेत्रः।
योगीव ध्यानपरो भवति हि निर्वेदवान् पुरुषः ।।`
--भरतमुनि -नाट्यशास्त्र, पृ०सं०- ७, २९, ३०,

२- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ संख्या- ८.
३- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ संख्या- ८.

ग्लान लक्षण ।ग्लानि। :--

'ग्लानि' कहते हैं शारीरिक दुर्बलता को जो कि रतिश्रम, अन्यविध परिश्रम, मनस्ताप, भूख, प्यास आदि आदि से हुआ करती है। इसमें कंपकंपी हुआ करती है, काम करने में जी नहीं लगता और ऐसे ही अन्य उत्पात हुआ करते हैं।[1]

'ग्लानि' का अभिप्राय है शरीर, वाणी और मन के व्यापारों में 'ग्लपन' दुर्बलता का ।वाङ्मनः कायकर्माणि ग्लानिर्ग्लपयतीति यत्। ग्लानि और निष्प्राणता एक ही मनोदशा है। महाकवि कालिदास की यह सूक्ति व्याधिजन्य 'ग्लानि' का सुन्दर निदर्शन है।[2]

'करन' ग्लानि का लक्षण बताते हैं-- 'शारीरिक दुर्बलता या रोगादि को जो कि रतिश्रम आदि से हुआ करती है, इसमें कार्य-क्षमता कम हो जाती है, उसे सभी 'ग्लानि' कहते हैं।

आधि व्याधि रत्याश्रम,
रन ते बल की हान।
कवि पंडित ये सकल,
पुन तासों कहत गिलान ।। ८५ ।।[3]

१- रत्यायासमनस्तापक्षुत्पिपासादि संभवा ।
ग्लानिर्निष्प्राणताकम्प कार्श्यानुत्साहतादिकृत् ।। १७० ।।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, पृष्ठ-२२४.

२- तस्य पाण्डुवदनाल्पभूषणा सावलम्बगमना मृदुस्वना ।
राजयक्ष्म परिहाणिराययौ कामयान समवस्थया तुलाम् ।।
--कालिदास, पृष्ठ संख्या-१३५.

३- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ संख्या- ८.

यथा :-- छूटे बार भूषन बसन,

स्वासा स्वेदतु भंग ।

रति प्रियाह जाकी बरन,

सिथल भये प्रत्यंग ।। ८६ ।।[1]

यहां नायिका के शरीर, वाणी और अन्त:करण में रतिश्रम से दुर्बलता उत्पन्न होने के कारण 'ग्लानि' भाव है। 'ग्लानि' लक्षण विश्वनाथ के लक्षण का अनुसरण मात्र है।

असूया लक्षण :--

'असूया' कहते हैं स्वभाव की उद्धतता के कारण, दूसरे की गुण समृद्धि के सहन न कर सकने को। इसमें दूसरे के दोष का उद्घोषण किया जाया करता है, भौंहें चढ़ जाया करती हैं, दूसरे को तिरस्कृत किया जाया करता है, क्रोध भरी चेष्टायें होने लगती हैं और इसी भांति के अन्यान्य विकार पैदा हो जाते हैं।[2]

'करन' 'असूया' लक्षण का निरूपण करते हुये बताते हैं-- अपने स्वभाव के कारण , दूसरों का गुण-गान असहनीय हो, वहां 'असूया' होता है। इसमें दूसरे के प्रति ईर्ष्या, क्रोधयुक्त चेष्टायें होने लगती हैं।

होत असूया और को यहां,

न भावै सुभाउ ।

गरब हीरखा कोप चित,

ए सब प्रगट सुभाउ ।। ८७ ।।[3]

यथा :-- कहत सबै ब्रजनागरी,

दै दै बोठन हाथ ।

आप कुटिल कित कूबरी,

बनी है साथ ।। ८८ ।।[4]

१- रस कल्लोल-कवि करन,पृष्ठ०-८.

२- असूयान्यगुणर्द्धीनामौद्धत्यादसहिष्णुता ।दोषोद्घोषभ्रूविभेदावज्ञा क्रोधेंगितादिकृत् ।।१६६ ।। -- साहित्य दर्पण -विश्वनाथ, पृष्ठ- २२१.

३- रस कल्लोल-कवि करन,पृष्ठ०-९.   ४- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ०-९.

यहां पर `असूया` भाव स्पष्ट है। करन का असूया का लक्षण विश्वनाथ के लक्षण से साम्य रखता है।

शंका लक्षण- ।शंका। :--

करन ने `शंका` का लक्षण इस प्रकार दिया है-- जहां पर किसी वस्तु की हानि का भय हो, ।अनर्थ चिंता। वहां शंका होती है। इसमें कंप,शोक तथा स्वरभंग हुआ करते हैं --

वस्तु भावती हान को,
जहां सानु डर होइ।
कंप सोक सुरभंग पुन,
संका कथित सोइ ।। ८६ ।।[1]

यथा :-- कंपत गात दौरी फिरत,
व्याकुल सब ब्रज बाल।
देखा अब हरि है कहा,
दुह में गिरो गुपाल ।। ९० ।।[2]

यहां पर अनर्थ चिन्तन का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है। इसमें शरीर का कम्पन,इधर-उधर दौड़ना आदि भी सम्मिलित हैं।

विश्वनाथ--`शंका` का अभिप्राय है अनर्थ-चिन्तन का, और यह किसी दूसरे के क्रूराचरण,आत्मदोष आदि आदि के कारण हुआ करती है। इसमें वैवर्ण्य, कम्प, स्वरभंग, इधर-उधर देखना, मुंह सूखना आदि हुआ करते हैं[3]।

१- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ संख्या- ६.
२- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ संख्या- ६.
३- परक्रौर्यात्मदोषाद्यैः शंकाऽनर्थस्य तर्कणम्।
वैवर्ण्य कम्प वैस्वर्य पार्श्वा लोकास्य शोषकृत् ।। १६१ ।।
---साहित्य दर्पण- विश्वनाथ, पृष्ठ-२९८.

'अनर्थ चिन्तन' को इसलिये 'शंका' कहा जाया करता है, क्योंकि इसके द्वारा मानसिक सुख में विघ्न पड़ जाया करता है।[1] करन के 'शंका' का भी यही लक्षण है।

मद लक्षण :--

करन के 'मद' का लक्षण है--- जहां हर्ष और उत्कर्ष की वृद्धि हो वहां विद्वान और कविगण 'मद' मानते हैं --

> बढ़त हर्ष उत्कर्ष जहं,
>
> कहत सुमद कविराइ।
>
> वचन बहान मे कछ,
>
> विकल और अंग सुभाइ ।। ६१ ।।[2]

यथा :--

> सब ही बिच ब्रज लाड़ लै,
>
> पिचिराई उर माल।
>
> प्रेम छाक छाकी फिरत,
>
> मुकता फिरत ब्रज बाल ।। ६२ ।।[3]

'मद' कहते हैं संमोह और आनन्द के सम्मिश्रण को। इसकी उत्पत्ति मद्यपान से हुआ करती है। उत्तम प्रकृति के लोग तो 'मद' से सो जाया करते हैं और मध्यम प्रकृति के लोग हंसने अथवा गाने लगते हैं और जो लोग नीच प्रकृति के हुआ करते हैं वे तो मद-परवश होने पर गाली-गलौच करने लगते हैं या रोने-धोने लगते हैं।[4]

1- 'शं सुखं कुत्सयति या सा शंका स्यादिमीयते।'
---भाव प्रकाशन - २ य अधिकार.

2- रस कल्लोल-कवि करन, पृ०सं०- ६.

3- रस कल्लोल-कवि करन, पृ०सं०- ८.

4- संमोहानन्दसंभेदो मदो मद्योपयोगज ।। १९६ ।।
अमुना चोत्तमः शेते मध्यो हसति गायति।
अधमे प्रकृतिश्चापि परुषं वक्ति रोदिति ।। १९७ ।।
---साहित्य दर्पण- विश्वनाथ,पृ०-२००---२०६.

मद शब्द की व्युत्पत्ति से भी 'मद' का अभिप्राय निकलता है।[1]

मद का विशद वर्णन भरत नाट्यशास्त्र में किया गया है।

करन का मद लक्षण विश्वनाथ के मद लक्षण से साम्य नहीं रखता।

श्रम लक्षण :--

कार्य के अवावलेपन से उत्पन्न शिथिलता को श्रम कहते हैं । इसके कारण दु:ख, शरीर पर पसीना आदि की उत्पत्ति होती है। करन का श्रम-लक्षण इस प्रकार है--

अधिक अवाल्ह काज ते जहां,
सिथलता होइ ।
जौह स्वेद तन प्रगट ही,
श्रम कहियत पुन सोइ ।। ६३ ।।[2]

यथा :-- रहत कहूं गोलत कहूं,
कहूं कहत कहूं जात ।
कुलत स्वेद तथा सिथलता,
आवत भीधी रात ।। ६४ ।।[3]

रहती कहीं है और खेलती कहीं है तथा कुकती कहीं है जाती है। इस प्रकार कार्य के अवावलेपन के कारण शैथिल्य उत्पन्न होने से यहां 'श्रम' हुआ ।

'श्रम' का अभिप्राय रति प्रसंग, मार्गगमन आदि आदि कारणों से उत्पन्न स्वेद का है। इसमें कारण श्वास, निद्रा आदि आदि की उत्पत्ति और वृद्धि हुआ करती है।[4]

१- 'म सम्वार्थो मतिमांस्तवदानात् कदनान्मद: ।'
-- भाव प्रकाशन, २-५.

२- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ६.

३- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ संख्या- ६.

४- खेदो रत्यध्वगत्यादे: श्वास निद्रादिकृच्छ्रम: ।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, पृष्ठ-२०८.

करन का 'श्रम' लक्षण विश्वनाथ, मम्मट, हर्षवर्द्धन तथा महाकवि भवभूति के श्रम लक्षण से भिन्न हैं। करन का श्रम लक्षण अपने में अपूर्ण है।

--: अग्नि लक्षण ।आलस्य। :--

करन ने 'आलस्य' के स्थान पर 'अग्नि' शब्द का प्रयोग किया है। काम की अधिकता से ।गर्भाधान है। जहाँ कष्ट उत्पन्न हो, वहां आलस्य समझना चाहिये, इसमें एक स्थान पर बैठे रहना पड़ता है ----

मदन विथादि करति जो,
            जहां उठी नहीं जाइ।
ताही सौं सब कहत है,
            आलस पंडित राइ ।। ६५ ।।[1]

यथा :--
क्यौं कहा अनुराग अत,
            दृग मूदत जाराइ।
उठत न जिम जाइ अलन,
            मिलन न कियौ लगाइ ।। ६६ ।।[2]

क्रीड़ाशीलता की अधिकता के कारण ।गर्भ धारण है। मुग्धा को कष्ट उत्पन्न हो रहा है जिसके कारण वह नेत्र मूंद कर जम्हाई ले रही है, बार-बार बैठ-बैठ कर केवल जंभाई लिया करती है, अतः यहां 'अग्नि' है।

विश्वनाथ[3] ने भी 'आलस्य' का यही लक्षण दिया है।

१- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ६.
२- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ६.
३- आलस्य श्रमगर्भाद्यैर्जाड्यं जृम्भासितादिकृत ।। १४५ ।।
--साहित्य दर्पण- विश्वनाथ, पृष्ठ- २१४.

--: चिन्ता लक्षण :--

करन `चिन्ता` का लक्षण निरूपण करते हुये कहते हैं---`अभीष्ट वस्तु की अप्राप्ति पर जब हृदय में चिन्ता उत्पन्न होती है, उसे समस्त कविगण चिंता कहते हैं।

वस्तु भावती मिलन की,
सो मन फिकर जो होइ।
वाही सों चित कहत है,
कवि कोविद सब कोइ ।। ९९ ।।[1]

यथा :-- रीती निसि बीती अवध,
पिय कंत लघु जीव,।
जम बरसौ बरसौ जलय,
रसौ जान चित होव ।। १०० ।।[2]

विश्वनाथ[3] का चिंता लक्षण, करन के चिंता लक्षण के अनुरूप है। विश्वनाथ ने ध्यान करने को भी चिंता माना है, किन्तु करन ने इसे छोड़ दिया है। `भाव प्रकाशन` में दारिद्र्य, द्रव्यहानि, ऐश्वर्य भ्रंश आदि आदि कारणों से ध्यान करने का नाम `चिन्ता` कहा है।[4]

--: दीनता लक्षण :--

करन `दीनता` का लक्षण बताते हैं-- जहां दुःख (दैन्य) अत्यधिक बढ़ जाता है, उसे दीनता कहते हैं। इसका प्रकटीकरण शारीरिक पीड़ा में होता है।

१- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- १०.
२- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- १०.
३- ध्यानं चिन्ता हितानाप्तेः शून्यताश्वासतापकृत्।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, पृष्ठ-२२४.
४- `यया चिन्तायतेऽभीष्टं सा चिन्तेत्यभिधीयते।`
--भाव प्रकाशन: द्वितीय अधिकार.

सरन दु:ख बड़ जात जब -

---: हाव लक्षण :---

'करन' के 'हाव' का लक्षण इस प्रकार है--

अथ हाव लक्षण निरूपते दोहा,-

बनिता बन श्रृंगार कीरत मैं चेष्टा जान।[1]

भरतादिक भाषत सकल हाव वाखियै तत्र ।।

भरत, धनंजय, शिंग-भूपाल और विश्वनाथ[2] से यह लक्षण नहीं मिलता। करन ने हाव के ११ प्रकार माने हैं, विक्षिप्त, विभ्रम, किलकिंचित, लीला, विलास, कुट्टमित, ललित, विहृत, तपन, विलोक, मद, विक्षेप, मोह, हेला और मोट्टाइत। करन ने "हाव" भेदों के लक्षण सोदाहरण लिखे हैं।

धनंजय ने भरत के समान ही स्त्रियों के २० अलंकारों का उल्लेख किया है।[3] भाव, हाव और हेला अंगज अलंकार हैं, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य अयत्नज हैं तथा लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, विब्बोक, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, ललित और विहृत स्वभावज हैं।[4]

१- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ११.

२- भ्रूनेत्रादिविकारैस्तु संभोगेच्छाप्रकाशक: ।
भाव एवाल्पसंलक्ष्यविकारो हाव उच्यते ।। ९४ ।।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, पृष्ठ-१७८--१७९.

३- नाट्यशास्त्र, अ० २२, श्लोक- ५, ६, २४ तथा १२, १३। क्रमश: ।

४- यौवने सत्वजा: स्त्रीणामलंकारास्तु विंशति: ।
भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजा: ।।
शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता ।
औदार्यं धैर्यमित्येते सप्त भावा अयत्नजा: ।।
लीला विलासो विच्छित्तिविभ्रम: किलकिंचितम् ।।
मोट्टायितं कुट्टमितं बिब्बोको ललितं तथा ।
विहृतं चेति विज्ञेया दश भावा: स्वभावजा: ।
-- दश रूपक, पृ०-२, श्लोक- ३०--३३.

भरत ने स्वभावज अलंकारों तथा हेला को हाव का ही भेद माना है और अयत्नज अलंकारों को छोड़ दिया है। भरत के विहृत, तपन, विक्षेप तथा मौग्ध का भरत और धनंजय दोनों ने ही उल्लेख नहीं किया है। शिंगभूपाल ने सत्वज अलंकारों के अन्तर्गत भाव, हाव तथा हेला[1] और गात्रज में लीला, विलास और विहृत का निरूपण किया है।[2] भरत के विहृत, तपन, विक्षेप तथा मौग्ध भूपाल में नहीं मिलते। भोज ने स्त्रियों के स्वभावज अलंकारों के अन्तर्गत लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, विहृत, क्रीड़ित और केलि को लिया है।[3] इनमें से विहृत, क्रीड़ित और केलि भरत में नहीं मिलते। भरत के ललित, विहृत, तपन, मद, विक्षेप तथा मौग्ध नहीं मिलते। भोज ने भरत के हेला को स्वभावज अलंकारों में नहीं लिया है। विश्वनाथ ने नायिकाओं के २८ अलंकारों का वर्णन किया है, जिनमें से तीन अंगज हैं, सात अयत्नज और शेष अठारह सात्विक।[4]

१- र० सु०, पृष्ठ- ५८.

२- र० सु०, पृष्ठ- ५२--५६.

३- लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिंचितम् ।
मोट्टायितं कुट्टमितं बिब्बोको ललितं तथा ।।
विहृतं क्रीड़ितं केलिरिति स्त्रीणां स्वभावजाः ।
— स० कं०, कण्ठाभरण, पृ० ५५८.

४- यौवने सत्वजास्तासामष्टाविंशतिसंख्यकाः ।
अलंकारास्तत्र भावहावहेलास्त्रयोऽंगजाः ।।
शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता ।
औदार्यं धैर्यमित्येते सप्तैव स्युरयत्नजाः ।
लीला विलासो विच्छित्तिर्बिब्बोकः किलकिंचितम् ।
मोट्टायितं कुट्टमितं विभ्रमो ललितं मदः ।।
विहृतं तपनं मौग्ध्यं विक्षेपश्च कुतूहलम् ।
हसितं चकितं केलिरित्यष्टादश सत्वजाः ।।
—सा० द०, परि० ३, का०सं० १२६.

इनके भाव आदि तीन अंगज, शोभा आदि सात अयत्नज तथा लीला, विलास, विच्छित्ति, बिब्बोक, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित और विहृत नामक दस सात्विक अलंकारों का आधार `नाट्यशास्त्र` तथा `दशरूपक` ग्रन्थ है। तपन, मुग्धता, मद, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित तथा केलि, ये अलंकार इन्होंने अपनी ओर से जोड़े हैं। करन ने विश्वनाथ द्वारा बतलाए इन सात्विक अलंकारों में से तपन, मद तथा विक्षेप का उल्लेख किया है। अत: स्पष्ट ही करन ने इन सात्विक अलंकारों को विश्वनाथ से लिया है। `विहृत` तथा मोद को छोड़ कर `हाव` के शेष भेद करन ने भरत तथा धनंजय के आधार पर ही लिखे हैं, इनका उल्लेख विश्वनाथ ने भी नहीं किया है। इसको करन ने कौन-से ग्रन्थ के आधार पर लिखा है, कहा नहीं जा सकता।

करन ने भिन्न-भिन्न हावों के लक्षण भी दिए हैं।

---: लीला भाव :---

भरत के अनुसार अंग-संचालन, अलंकार तथा प्रेमालाप के द्वारा प्रिया की अनुकृति `लीला` है।[1]

विश्वनाथ अंग-संचालन, वेश, अलंकार तथा प्रेम-सूचक मधुर वचनों के द्वारा प्रिय प्रिया की अनुकृति को लीला कहते हैं।[2] धनंजय के अनुसार प्रिय के वचन तथा वेश आदि की चेष्टाओं का प्रिया द्वारा अनुकरण `लीला` है।[3] करन ने भी प्रियतम के द्वारा प्रिय का रूप धारण कर लीलाएं करने को `लीला` बतलाया है :--

लीला हाव :-- कौतुक चलन विलास की,
बहुत भाँति कर प्रवीन।
करै जौ पिय कौ स्वांग,
तिह सौ लीला की रीत ।। ४६ ।।[4]

१- नाट्यशास्त्र अ० २२, श्लोक -१५.
२- साहित्य दर्पण, परि० ३, का०सं० १४०.
३- दशरूपक ,प्र० २, पृ०-४१.
४- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ संख्या-६५.

यथा :-- वह तान कही सुरन,

वह बीन वह ग्राम ।

उदै अहीरी रागिनी,

निरखत बिलसत बाम ।। १६० ।।[1]

यहां पर प्रिय का स्वांग बनाती हुई प्रियतमा का निरूपण किया गया है ।

केशव ने भी प्रिय के द्वारा प्रिया का तथा प्रिया के द्वारा प्रियतम का रूप धारण कर लीलायें करने को 'लीला' बतलाया है[2]।

करन के अनुसार बोल कर, चलकर अर्थात् अंग संचालन तथा प्रेमालाप के द्वारा प्रिया अनुकृति 'लीला' है । यहां करन के 'लीला' लक्षण का वही भाव है जो भरत, धनंजय तथा विश्वनाथ के लक्षणों का है ।

--: ललित हाव :--

विश्वनाथ तथा धनंजय दोनों का 'ललित' का लक्षण करन के लक्षण से साम्य रखता है । धनंजय और विश्वनाथ के अनुसार अंगों का मृदुसंचालन 'ललित' हाव कहलाता है[3]। करन के विचार से अंगों की सुकोमलता 'ललित' भाव कहलाती है ---

वह अंग की सुकुमारता,

उपजत अंग बाढ ।

ताही सों सब कहत है,

ललित कवित्त केरार ।। १६१ ।।[4]

१- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ संख्या- ३१.
२- करत जहां लीलान को प्रीतम प्रिया बनाय ।
उपजत लीला हाव तहं,बरनत केशवराय ।।
---र० प्रि०, प्र० ६, पृ० २१.
३- सुकुमारांग विन्यासः मसृणो ललितं भवेत् ।-- दशरूपक, प्र० २, पृ० ५६.
सुकुमारतयांगानां विन्यासो ललितं भवेत् । --सा०द०,परि० ३, का०सं० १९८.
४- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या-१६.

यथा :-- इतौली तन सुकुमारता,

भूषन पिहरन कान ।

उरन भार लचकी परत,

ललित लंक ली पान ।। १६६ ।।[1]

यहां पर अंग अंग इतने सुकुमार हैं कि आभूषणों के भार से अंगों में लचक उत्पन्न होने लगी है ।

-- : मद लक्षण : --

`करन` के `मद` हाव का आधार विश्वनाथ ही है, जैसा कि उन्होंने लक्षण भी दिया है । विश्वनाथ सौभाग्य, यौवन आदि के गर्व से नायिका में उत्पन्न विकार को `मद` कहते हैं ।[2] करन के अनुसार भी तारुण्य के गर्व से उत्पन्न विकार "मद" हाव है ---

जहं मतवारी-सी तरुन,

यौवन के मद होइ ।

मद ताही सों कहत,

है कवि कोविद सब कोइ ।। १७३ ।।[3]

यथा :-- जोवन छाक छकी रहत,

मद के मद इतरात,।

सुख पायो जब ते तरुन,

तब ते कहीं न जात ।। १७४ ।।[4]

यहां पर तरुणी अपने यौवन के गर्व में समस्त सुखों का अनुभव कर रही है । अतः मद हाव की छटा विद्यमान है । विश्वनाथ तथा करन दोनों के लक्षण लगभग एक से ही हैं ।

१- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ सं०-१६.
२- मदो विकारो सौभाग्य यौवनाद्यवलेपजः । "सा०द०,परि० ३,का०सं० १३८.
३- रस कल्लोल-कवि करन,पृ०सं०-१७.
४- रस कल्लोल-कवि करन,पृ०सं०-१७.

--: विभ्रम हाव :--

धनंजय[1] से विश्वनाथ के 'विभ्रम' हाव का लक्षण अधिक पूर्ण है। विश्वनाथ के अनुसार 'विभ्रम' हाव वहां होता है जहां प्रिय के आगमन पर हर्ष अथवा प्रेमवश नायिका जल्दी में आभूषणादि, जो जिस अंग में पहनने चाहिए उससे भिन्न अंग में पहन लेती है[2]। करन के लक्षण का भी लगभग ऐसा ही भाव है --

होत और को और कछु,
काज उतावल मांह।
और ठौर चित के लगे,
कह विभ्रम कवि नाह ॥ १९५ ॥[3]

अर्थात् उतावले में कुछ-का-कुछ कार्य हो जाता है और चित्त वश में नहीं रहता, वहां 'विभ्रम' हाव समझना चाहिये। जैसे --

छुटकी रहत न हर सुनत,
अपनि को उत्साह।
दौरिया हक दे दृगन,
अंजन पगन लगाह ॥ १९६ ॥[4]

यहां पर नायिका ने उतावलेपन में नेत्रों में अंजन न लगा कर पैरों में अंजन लगा लिया, यहांपर 'विभ्रम' हाव है।

१- विभ्रमस्त्वरया काले भूषा स्थान विपर्यय: ।
--दशरूपक, प्र० २, पृ० ५४.

२- त्वरया हर्षरागादेर्दयितागमनादिषु ।
अस्थाने विभ्रमादीनां विन्यासो विभ्रमो मत: ॥ १०४ ॥
--साहित्य दर्पण, परि० ३, का०सं० १४०.

३- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ संख्या- ६५.

४- रस कल्लोल-कवि करन, पृष्ठ संख्या- ६५.

-- : विलास हाव : --

विश्वनाथ के `विलास` हाव का लक्षण भरत और धनंजय की अपेक्षा अधिक पूर्ण है। विश्वनाथ के अनुसार प्रिय के दर्शन के कारण उठने-बैठने और चलने तथा मुख, नेत्र आदि की चेष्टाओं में उत्पन्न वैचित्र्य, `विलास` हाव है[१]। करन के लक्षण का भी यही भाव है, उनके अनुसार प्रिय के दर्शन के कारण जो विभिन्न चेष्टाएं उत्पन्न हुईं, वे `विलास` हाव हैं :--

पति विलोक मन हरन के,
बरनी विरचित हाव।
सो विलास पहिचानी है,
कवि कुल कुमुद सुभाव ।। १६१ ।।[२]

यथा :-- कुचत कम्कत सकुचत बदन,
कम्कत तक मुसुक्याह।
बहुर भाव तिय को लिखें,
सके न कछु पतिनार ।। १६२ ।।[३]

यहां पर प्रिय दर्शन से विभिन्न चेष्टाएं उत्पन्न हुईं अतः यहां पर `विलास` हाव है। करन का विलास हाव लक्षण विश्वनाथ के `विलास` हाव लक्षण से साम्य रखता है।

१- यथास्थानासनादीनां मुखनेत्रादि कर्मणाम् ।। ९९ ।।
विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसन्दर्शनादिना।
--साहित्य दर्पण, परि० ३, का०सं० १४१.

२- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- १९.

३- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- १९.

-- : किलकिंचित हाव : --

धनंजय के अनुसार क्रोध, रुदन, हर्ष तथा भय आदि का सम्मिश्रण 'किलकिंचित' हाव कहलाता है[1]। भरत ने धनंजय की अपेक्षा अधिक बातों का उल्लेख किया है। भरत ने लिखा है कि हर्षातिरेक के कारण उत्पन्न स्मित (मुस्कराहट), रुदन, हास, भय, दु:ख, गर्व, श्रम और अभिलाषा का एक ही साथ सम्मिश्रण 'किलकिंचित' हाव है[2]। विश्वनाथ ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है :--

स्मित शुष्क रुदित हसितत्रास क्रोधश्रमादीनाम् ।
सांकर्यं किलकिञ्चितमीष्टतमसंगमादिजाद्धर्षात् ।। १०१ ।।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, पृष्ठ-१८६.

करन ने धनंजय के अनुसार बतायी बातों का उल्लेख किया है, इससे जान-पड़ता है कि यह सामग्री उन्हें धनंजय द्वारा प्राप्त हुई है । करन के अनुसार जहां भय, हंसी तथा क्रोध का सम्मिश्रण हो, वहां 'किलकिंचित' हाव समझना चाहिये ।

हौव जहां इक बारही,
डर,हांसी अरु रोस ।
किल किंचित तासौ कहत,
कवि कोविद निरदोस ।। ६७ ।।[3]

यथा :-- लाल कहू ललचाइ दृग,
गही कंचुकी धाइ ।
हसी अरुण भ्रुकुटी नटी,
ससिक सकुच सतराइ ।। ६८ ।।[4]

१- क्रोधाश्रुहर्ष भीत्यादे: संकर: किलकिञ्चितम् ।
--दशरूपक, प्र० २, पृ० ५५.
२- नाट्यशास्त्र, अ० २२, श्लोक १८.
३- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ११.
४- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ११.

यहां पर भय, हंसी तथा क्रोध तीनों का सम्मिश्रण है अत: `किलकिंचित' हाव हुआ। करन का `किलकिंचित' हाव लक्षण धनंजय के `किलकिंचित' हाव लक्षण से साम्य रखता है।

-- : विच्छित्ति हाव : --

धनंजय तथा विश्वनाथ शरीर के सौंदर्य की वर्धक किंचित् वेश-रचना को `विच्छित्ति' हाव मानते हैं।[१] भोजराज ने लिखा है- जहां आभूषणों की सज्जा के प्रति अनादर होता है वहां `विच्छित्ति' हाव होता है।[२]

करन लिखते हैं कि वेश-रचना या श्रृंगार से शरीर की शोभा दुगुनी बढ़ जाय तो उसे `विच्छित्ति' हाव समझना चाहिये।

अति ही दुत बढ़वात जह,
　　　　कीरौ कियो सिंगार।
ताह कहत विछिप्त है,
　　　　कवि कोविद सरदार॥ ९९३॥[३]

यथा :-- मोहर की सादी हरत,
　　　　वेंदी मैनहू देत।
सिगरी सोहन की गरम,
　　　　अतसिगरे हर लेत॥ ९९४॥[४]

१- आकल्परचनाल्पापि विच्छित्ति: कान्तिपोषकृत्।
　　　　— दशरूपक, पृ० २, पृ० ५४.

स्तोकाऽप्याऽकल्परचना विच्छित्ति: कान्तिपोषकृत्।
　　　　— सा०द०,परि० ३,का०सं० १४२.

२- विभूषणानां दीनामनादर विन्यासो विच्छित्ति:।
　　　　— सर०कु० कण्ठाभरण, पृ० ६१८.

३- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ११.

४- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ११.

प्रस्तुत पंक्तियों में शृंगार ने सौंदर्य में वृद्धि करदी है इसलिये यहां पर 'विच्छित्ति' हाव है। करन का 'विच्छित्ति' हाव लक्षण धनंजय एवं विश्वनाथ के 'विच्छित्ति' हाव लक्षण से साम्य रखता है। भोजराज के लक्षण से नहीं मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि करन ने यह 'विच्छित्ति' हाव लक्षण धनन्जय एवं विश्वनाथ से लिये हैं।

--: मोट्टायित हाव : --

विश्वनाथ द्वारा दिया 'मोट्टायित' हाव लक्षण धनन्जय[1] के अपेक्षा अधिक पूर्ण है। विश्वनाथ के अनुसार प्रिय की कथा आदि के प्रसंग में प्रेम से चित्त व्याप्त होने पर प्रेमिका की कान खुजाने आदि की चेष्टा 'मोट्टायित' है।[2]

करन लिखते हैं कि पति के मिलन की बात सुन नायिका की विभिन्न चेष्टायें 'मोट्टायित' हाव हैं :--

पति मिलाप की बात सुन,
उपजत सुकल सुभाउ।
मोट्टाइत तासों कहत,
कवि कोविद समुदाउ ।। ९८१ ।।[3]

यथा :-- कंचन चाबक तिलक दिय,
विहस विहस अन्हात।
रही दई मह में दई,
मकरी भूषण पात ।। ९८२ ।।[4]

१- मोट्टायितं तु तद्भाव भावनेष्ट कथादिषु ।
—दशरूपक, प्र० २, पृ० ५५.

२- तद्भावभाविते चित्ते वल्लभस्य कथादिषु ।
मोट्टायितमिति प्राहुः कर्णकण्डूयनादिकम् ।। १०२ ।।
—साहित्य दर्पण, परि० ३, का०सं० १५१.

३- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ९५.

४- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठ संख्या- ९८.

करन ने प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति को प्रदर्शित न होने देने के लिये नायिका द्वारा विभिन्न चेष्टाओं का चित्रण किया है। करन का 'मोट्टायित हाव' लक्षण विश्वनाथ के 'मोट्टायित हाव' लक्षण का प्रतिरूप है। विश्वनाथ ने प्रेमाभिव्यक्ति को प्रदर्शित न करने के लिये नायिका का कर्ण खुजलाना दर्शाया है।

कुट्टमित हाव :--

'कुट्टमित' हाव-लक्षण के विषय में केशव ने लिखा है कि जहां केलि-कलह में कलह का ऊपरी दिखावा हो वहां 'कुट्टमित' हाव होता है।[1] केशव के इस लक्षण का तात्पर्य धनंजय, भोज तथा विश्वनाथ से मिलता है।[2]

करन का 'कुट्टमित' हाव लक्षण धनन्जय, भोज तथा विश्वनाथ के 'कुट्टमित' हाव लक्षण से कुछ साम्य रखता है। इनका कहना है कि जहां केलि-कलह में रूठने का झूठा बहाना हो और उससे तरुणी का मन एवं शरीर सुख की अनुभूति करे, वहां 'कुट्टमित' हाव होता है :---

उरज पान नीवी छुवत,
झूठे रूसनी होइ।
सुख पावे तन मन तरुन,
कहत कुट्टमित सोइ ॥ १०३ ॥[3]

१- केलिकलह में शोभिये, केलिकलह पट रूप।
उपजत है तहं कुट्टमित, हाव कहत कवि भूप ॥
-- र०प्रि०, पृ० ६, छं० ५१.

२- केशस्तनाधरादीनां ग्रहे हर्षेऽपि सम्भ्रमात् ।
आहुः कुट्टमितं नाम शिरः करविधूननम् ॥ १०३ ॥
-- साहित्य दर्पण,-विश्वनाथ, पृ०-१८७.

३- रस कल्लोल- कवि करन पृ०छं०-१६.

करन ने इसके लक्षण निरूपण में लिखा है कि इस केलि-कलह में नायिका द्वारा रूठने का झूठा बहाना करने पर नायिका या यौवना का मन एवं शरीर सुख की अनुभूति करता है। विश्वनाथ, धनन्जय एवं भोज ने ऐसा नहीं लिखा है।

यथा :-

मन मन्दिर सुन्दर परी,
　　　　　　　　आये जहं नन्दलाल।
मुंह नहीं बाही गहत,
　　　　　　　　मन माची आनंद ।। १६४ ।।[1]

यहांपर राधिका का मुंह रखने का झूठा बहाना करने, हृदय में आनन्द उत्पन्न होने से 'कुट्टमित' हाव है।

—: हेला हाव :—

विश्वनाथ ने 'हेला' का लक्षण इस प्रकार दिया है :— 'हेला' का अभिप्राय वस्तुतः वह भाव ही है जिसे । नायक-नायिका के हृदय में रत्युद्बोध के अनन्तर । अंग-प्रत्यंग का एक ऐसा विकार कहा करते हैं जो सत्वर प्रकट हो जाय।"[2]

काव्यानुशासनकार आचार्य हेमचन्द्र ने 'हेला' की यह परिभाषा की है- 'हाव' का ही विकास 'हेला' है।[3] जिसी [illegible] द्विज के उपनयन की भांति

१- रस कल्लोल-कवि करन, पृ०सं०-२६.

२- हेलात्यन्तसमालक्ष्यविकारः स्यात् स एव तु ।
　　　　　　—साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, पृ०-१०९.

३- "यदा तु रतिवासनाप्रबोधाच्चां प्रबुद्धां रतिमभिमन्यते केवलं समुचितविभावोग्रह विरहान्निर्विषयतया स्फुटीभावं प्रतिपद्यते तदा तज्जनित बहुतरांगविकारात्मा हेला, हावस्य सम्बन्धिनी क्रिया। प्रसरता वेगवाहित्वमित्यर्थः। वेगेन हि गच्छन् हेलयेत्युच्यते लोक इति। एवं चोद्भिन्नो ह्यभिनय क्रियाभ्यन्तु हावः। स एव प्रसरणैक स्वभावो हेलेति। तदेतद् ब्राह्मणस्योपनयनमिव भविष्यत् पुरुषार्थोपपीठ बन्धत्वेन योषितामामनन्ति।"
　　　　　　—काव्यानुशासन- हेमचन्द्र, पृ०सं०-११८.

नारी की `हेला` पुरुषार्थवृत्ति का पोषक है।

करन ने `हेला` का लक्षण दिया है :--

प्रौढ़ भेस तिय रव समं,
पति सों दीठी देह।
हेला तासों कहत है,
सुरत किये हर ठेर ॥ १७९ ॥

यथा :--

प्यारी रति विपरीत में,
पति सों अति इठलात।
कर नचावत स्तन मुख,
रस रुद न हरत नाव ॥ १८० ॥[1]

करन का `हेला` लक्षण भरत, धनञ्जय, शिंगभूपाल, तथा विश्वनाथ आदि किसी आचार्य से नहीं मिलता।

--: तपन हाव :--

विश्वनाथ ने `तपन` हाव का लक्षण इस प्रकार दिया है--`तपन` का अभिप्राय प्रियतम के वियोग में कामवेश सम्बन्धी चेष्टाओं का है।[2]

`तपन` भी भरतमुनि - सम्मत नायिका का अलंकार नहीं, किन्तु `अभिनव-भारती` में उद्धृत मतान्तर के अनुसार इसे भी विश्वनाथ कविराज ने यहां स्थान दे दिया है।

१- रस कल्लोल- कवि करन, पृष्ठसं०- ३७.
२- तपनं प्रियविच्छेदे स्मरावेशोत्थचेष्टितम् ॥ १७६ ॥
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, पृष्ठ-१६०.

करन का कथन है कि जहां प्रियतम के वियोग में कामदेव अपनी सीमा को लांघ जाये अर्थात् कामोत्तेजना तीव्र हो जाय, वहांपर 'तपन' हाव होता है --

जहं संताप बढ़े तरुन,
पति वियोग तें आइ ।
ताही सों सब कहत हैं,
तपन कामिनि के राइ ।। १६६ ।।

यथा:--

जारे डारत चांदिनी,
सोंधे छेत समीर ।
कहा पीर अबुधीर मे,
तजी सुरति बेपीर ।।[1]

यहां प्रियतम के वियोग में नायिका अत्यन्त कामोत्तेजित हो रही है अत: 'तपन' हाव हुआ ।

--- :मद हाव :---

विश्वनाथ सौभाग्य, यौवन आदि के गर्व से नायिका में उत्पन्न विकार को 'मद' कहते हैं ।[2]

भरत नाट्यशास्त्र में नायिका के स्वभावज यौवनालंकारों में 'मद' का उल्लेख नहीं है मिलता । 'काव्यानुशासन' कार हेमचन्द्र सूरि तथा 'भाव प्रकाशन' कार शारदातनय ने भी 'मद' की लक्षण -परिभाषा नहीं की है । आचार्य अभिनव गुप्त की 'अभिनव भारती' में 'मद' का संकेत अवश्य है, किन्तु मतभेद के रूप में है[3].

१- रस कल्लोल--कवि करन, पृष्ठ०-१६.

२- मदो विकार:सौभाग्य यौवनाद्यवलेपज: ।। १७५ ।। -सा०दर्पण,विश्वनाथ,पृ०-१८६.

३- 'एतावत एवेत इत्यत्र नियमो विवादित: । तेन मौग्ध्य मद-भाव विकृत परितपना-दीनामपि शाक्याचार्य राहुलादिभिरभिधानं विरुद्ध मित्यलं बहुना ।'
--अभिनव भारती- नाट्यशास्त्र - २२, २१.

विश्वनाथ कविराज ने 'अभिनव भारती' के आधार पर ही अलंकारों में मद की गणना की है।

करन के अनुसार भी तारुण्य के गर्व से उत्पन्न विकार 'मद' हाव है --

जहं मतवारी सी तरुन,
जोवन के मद होइ।
मद ताही सों कहत है,
कवि कोविद सब कोइ ।। १७३ ।।[१]

दोनों लक्षण लगभग एक-से ही हैं। अन्य आचार्यों की तुलना में करन ने 'मद' हाव का अत्यन्त सांगोपांग वर्णन किया है :--

जोवन हाक छमी रहत,
मद के मद स्वरात।
सुख पायो अब ते तरुन,
सब दें कही न जात ।। १७४ ।।[२]

कवि करन ने उपर्युक्त उदाहरण में यौवन व गर्व का बहुत ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। तरुणी समस्त यौवन-सुखों का भोग कर गर्व का अनुभव कर रही है, अतः यहां 'मद' हाव है।

-- : विक्षेप हाव ।विक्षेप। : --

जिसे 'विक्षेप' कहा करते हैं वह प्रियतम के आगे, प्रियतमा का असम्पूर्ण भूषण-परिधान, अकारण इतस्ततः अवलोकन और धीरे-धीरे रहस्यमय वार्तालाप है।[३]

१- रस कल्लोल--कवि करन, पृ०सं०-३७.
२- रस कल्लोल--कवि करन, पृ०सं०-३७.
३- भूषाणामर्धरचना मिथ्या विष्वगवेक्षणम् ।
रहस्याख्यानमीषच्च विक्षेपो दयितान्तिके ।। १०८ ।।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, पृ०-१९१.

भरत-मत से भिन्न मत जैसे कि रुद्रभट्ट, सागरनन्दी किंवा मातृगुप्ताचार्य आदि के मत में नायिका के स्वभावज अलंकारों में 'विक्षेप' की भी गणना है।

करन ने "विक्षेप" हाव लक्षण का इस प्रकार विवेचन किया है -- प्रिय के प्रेम में जब प्रियतमा अपनी सुध-बुध भूल जाती है वहां "विक्षेप" भाव होता है :--

> पति सनेह रस रीत,
>
> > तिय सुधन कछू तन माँह ।
>
> ताही सौं विक्षेप कह,
>
> > वरनत है कवि नाह ।। १७५ ।।

<u>यथा :--</u>

> कहूं चित्रचितवन कहूं परत,
>
> > परत कहूं पाइ ।
>
> पालन दे अग्यन्नता,
>
> > मन मौं कैंं जाइ ।। १७६ ।।[1]

नायक या प्रियतम के सम्मुख प्रियतमा का चित्त दृश्य वस्तु की ओर न लग कर कहीं और लगा हुआ है, पैर कहीं के कहीं पड़ रहे हैं तथा वह मूर्खतापूर्ण व्यवहार कर रही है, इसलिये यहां 'विक्षेप' हाव है।

करन का 'विक्षेप' हाव लक्षण विश्वनाथ के 'विक्षेप' हाव लक्षण से भिन्न है। यह हाव लक्षण कवि की निजी सम्पत्ति है जो उन्होंने इतस्ततः से प्राप्त न कर स्वयं परिभाषित की है।

-----: : -----

१- रस कल्लोल-- कवि करन, पृ० सं०- ६८.

-- : विहुत हाव :--

करन ने 'विहुत' को 'हाव' का एक भेद स्वीकार किया है। करन का 'विहुत' हाव भरत, धनन्जय, शिंगभूपाल तथा विश्वनाथ आदि किसी आचार्य ने नहीं माना है। 'विहुत' भाव का लक्षण निरूपण करते हुये करन कहते हैं :--

पतिहू सों कछु कहन मित,
सकुच न पौलत नाह ।
ताही सों विहुत कहत,
जो विदग्ध कवि आह ।। १६७ ।।

यथा :--

सिवे सिवे पच पच मरत,
कर कर मरत इलाज ।
पति मुंगासन मुंग होत,
ही करत विमुंग हह लाज ।। १६८ ।।[1]

-- : विव्वोक हाव :--

धनंजय कहते हैं कि जहां अति गर्व के कारण इष्ट वस्तु के प्रति भी अनादर प्रदर्शित किया जाता है वहां 'विव्वोक' हाव होता है।[2] केशव कहते हैं कि जहां रूप तथा प्रेम के गर्व से कपटपूर्ण अनादर होता है वहां 'विव्वोक' हाव है।[3]

१- रस कल्लोल--कवि करन, पृष्ठसं०- १६.

२- गर्वाभिमानादिष्टे पि विव्वोको नादर क्रिया ।
--दशरूपक, प्र० २, पृ० ५५.

३- रूप प्रेम के गर्व ते, कपट अनादर होय ।
तहं उपजत विव्वोक रस, यह जानि सब कोय ।।
--र०प्रि०, प्र० ६, छं० ४२.

करन ने भी 'बिब्बोक' हाव का यही लक्षण दिया है, जहां अति कपट के कारण प्रिय वस्तु के प्रति अनादर प्रदर्शित किया जाता है वहां 'बिब्बोक' हाव होता है।

करत अनादर कपट मय,
जहां नेह ते नार।
ताह कहत बिबोक सब,
कवि कोविद निरधार ।। १७१ ।।

यथा :--

कहत कहा लखही रही,
कहीं कहा सु बीर।
हमैं देह मेरी कहूं,
ढूंढत स्याम तन गौर ।। १७२ ।।[1]

करन ने 'बिब्बोक' हाव लक्षण धनंजय के 'बिब्बोक' हाव लक्षण से लिया है।

—: मौग्ध हाव :—

'मौग्ध' हाव भेद करन का अपना है, इन्होंने 'मौग्ध' हाव का लक्षण इस प्रकार दिया है :--

कहै कछू कछु जान,
जह मुग्धता की बात।
मौग्ध हाव तासों कहत,
जे पति मति अवदात ।। १७३ ।।

१- रस कल्लोल--कवि करन, पृष्ठ०-१७.

यथा :--

पशु पालन की रीत यह,

गरब भरे इठलात ।

कहि न जाति भाव कछु,

होवे सुन्दर गात ।। १७८ ।।[१]

वस्तुत: करन ने 'हाव' लक्षण एवं 'हाव' के विभिन्न भेदों के लक्षणों के विवेचन में विश्वनाथ, धनंजय, शिंगभूपाल, भोज तथा भरत आदि आचार्यों की सहायता प्राप्त की है, किन्तु विधुत एवं मोद हाव का स्वतन्त्र लक्षण निरूपण किया है ।

— : + : —

१- रस कल्लोल--कवि करन, पृ० सं०- १७.

पंचम् अध्याय

-- ध्वनि वर्गीकरण --

शब्द यंत्र के संयोग और वियोग से जो स्फुट उत्पन्न होता है वही शब्द विद्वानों द्वारा ध्वनि कहलाता है।[1] ध्वनि की व्याख्या करते हुए ध्वनिकार ने लिखा है -- जहां अर्थ स्वयं को शब्द के अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके उस अर्थ को प्रकाशित करते हैं उस काव्य विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है।[2]

एक दूसरे श्लोक में भी यही बात दूसरे ढंग से प्रकट की गयी है-- "उस स्वाद अर्थ को बिखेरती हुई बड़े-बड़े कवियों की सरस्वती आलौकिक तथा प्रतिभा विशेष को व्यक्त करती है।"

रीति और वक्रोक्ति सिद्धांत की भांति "ध्वनि सिद्धांत" भी काव्य की आत्मा का अनुसन्धान करनेवाला सिद्धांत है। इसके अनुसार काव्य की आत्मा "ध्वनि" है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है[3] "वाच्यार्थ से अधिक उत्कृष्ट व्यंग्य ही विद्वानों के द्वारा ध्वनि कही गयी है।[4]

१- "य:संयोगवियोगाभ्याम् कारणैरुपजन्यते।
स:स्फोट: शब्दज: शब्दो ध्वनिरिति उच्यते बुधै: ।।"
--- वाक्यपदीय--महाराज भर्तृहरि.

२- यत्रार्थ: शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ।
व्यंग्य: काव्यविशेष: स ध्वनिरिति सूरिभि: कथित: ।।
प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु ।।
--- ध्वन्यालोक १ :१३, ४ .

३- काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्य: समाम्नातपूर्वस्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।
केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयं तेन ब्रूम: सहृदयमन: प्रीतये तत्स्वरूपम् ।।१।।
--ध्वन्यालोक आनन्दवर्धन, प्रथम उद्योत , पृष्ठ०१।१.

४- इदमुत्तममतिशायिनि व्यंग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधै: कथित: ।। १-४.
---काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट, ४।४२।

'वाच्यार्थ से अधिक चमत्कार व्यंग्यार्थ ध्वनिकाव्य है।

व्यंग्य ही ध्वनि का प्राण है। वाच्य से इसकी प्रधानता का अभिप्राय है वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारक होना । चमत्कार के तारतम्य पर ही वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का प्रधान होना निर्भर है। कहने का अभिप्राय यही है कि जहां शब्द या अर्थ स्वयं साधन होकर साध्य विशेष किसी चमत्कारक अर्थ को अभिव्यक्त करे वह ध्वनि काव्य है। वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थ से ध्वनि वैसे ही ध्वनित होती है जैसे चोट खाने पर घड़ियाल से निकली घनघनाहट की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर या सूक्ष्मतम ध्वनि।[१]

ध्वनि दार्शनिक आनन्दवर्धन ने स्पष्ट किया है-- इस काव्य में 'ध्वनि' संज्ञक काव्य, जिसे सर्वोत्तम काव्य-प्रकार कहा गया है, वह है जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा, 'व्यंग्य' रूप अर्थ अधिक सुन्दर ।अतिशय चमत्कार जनक। हुआ करता है।[२]

आचार्य करन ने ध्वनि को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-- कि जो सुनाई देता है वह शब्द है और उसके अर्थ को हृदय से जाना जाता है वही अर्थ है। --

'जो सुनिय सो शब्द है अर्थ हिये पहचान।
घुन अनुवरन विमाम कर जल्द जुगल जियजान।।
घुन रूप मरजाद है जान लीजिये चित्त।
आगम उक्त विभक्त रुत परनातम गुन मित्त।।
सो सुन तीन प्रकार को वरन रूप जो आह।
रूठर जौगक वीसरो जोग रूठ मन ताह।।[३]

१- क-चारुत्वोत्कर्ष निबन्धना हि वाच्यव्यंग्ययो: प्राधान्यविवक्षा।
— ध्वन्यालोक- आनन्दवर्धन, पृ०सं० ३,२८.

२- प्रकारोऽन्यो गुणीभूतव्यंग्य:काव्यस्य दृश्यते।
यत्र व्यंग्यान्वये वाच्यचारुत्वं स्यात् प्रकर्षवत् ।। ६ ।।
— ध्वन्यालोक ३,३४ — आनन्दवर्धन.

३- रस कल्लोल, हस्तग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० १८.

करन कृत ध्वनि लक्षणा --

मूल लक्षणा है जहां गूढ व्यंग पर बान ।
अर्थ न काहू को सो धुन जानहु जान ।। २३८ ।।[1]

ध्वनि भेदों का लक्षण निरूपण

'ध्वनि' काव्य के दो भेद बताये गये हैं-- १-लक्षणामूलक ध्वनि काव्य और २- अभिधामूलक ध्वनि काव्य । इन दोनों भेदों में लक्षणा मूलक ध्वनि काव्य को तो 'अविवक्षितवाच्यध्वनि' काव्य कहा गया है और अभिधामूलक ध्वनि-काव्य का नाम 'विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि' काव्य है ।[2]

करन ने ध्वनि के तीन भेदों का निरूपण किया है जो स्वयं में मौलिकता लिये हुये है-- १- रूढ़ २-जौगक ३-जौग रूढ़ --

सो सुन तीन प्रकार को बरन रूप जो आइ ।
रूढ़र जौगक तीसरो जौग रूढ मन लाइ ।।
-- रस कल्लौल,करन कवि- पृ०सं०-१८.

आचार्यों ने, लक्षणामूलक ध्वनि के बाद अभिधामूलक ध्वनि-काव्य-निर्देश इसलिये किया गया है क्योंकि अभिधामूलक ध्वनि का विषय ।लक्षणामूलक ध्वनि की-अपेक्षा । कहीं अधिक व्यापक है ।

वह ध्वनि काव्य जिसे 'अविवक्षित-वाच्य ध्वनि काव्य' कहा जाया करता है, ऐसा हुआ करता है जिसमें वाच्यार्थ या तो 'अर्थान्तर संक्रमित' रहे या अत्यन्त तिरस्कृत' रहे ।[3]

१- रस कल्लौल, हस्तग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- २२.

२- भेदौ ध्वनेरपि द्वावुदीरितौ लक्षणाभिधामूलौ ।
अविवक्षितवाच्योऽन्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्च ।। २ ।।
--साहित्य दर्पण:,आचार्य विश्वनाथ,चतुर्थ:परिच्छेद: पृ०सं०- १-२.

३- अविवक्षितवाच्यस्य ध्वनेर्वाच्यं द्विधा स्थितम् ।
अर्थान्तरे संक्रमितमत्यन्तं वा तिरस्कृतम् ।। २४ ।।
--ध्वन्यालोक आनन्दवर्धन, ३।२.

ध्वनिकार ने लक्षणामूलक व्यंजना की दृष्टि से ध्वनि काव्य के ये ही दो प्रकार बताये हैं। उनका कथन है-- कि 'अविवक्षित वाच्यध्वनिकाव्य' ऐसा काव्य है जिसमें वाच्यार्थ या तो 'अर्थान्तर संक्रमित' रूप रहा करे या 'अत्यन्तीतरस्कृत' रूप और ऐसा इसलिये कि यहां जो भी विशेषता और रमणीयता है वह ऐसे वाच्यार्थ की नहीं अपितु इससे अभिव्यंग्य अर्थ की ध्वनि रूप अर्थ की।[1]

ध्वनिकार की इसी मान्यता का स्पष्टीकरण लोचनकार ने भी किया है जिनका यही कथन है कि 'अविवक्षितवाच्य ध्वनि' काव्य में व्यंग्यार्थ की महिमा से वाच्यार्थ का प्रभाव नष्टप्राय रहा करता है, क्योंकि यहां जो वाच्यार्थ है वह या तो अपने रूप को छोड़ता हुआ रूपान्तर का ग्रहण किये प्रतीत हुआ करता है या अपने से भिन्न अर्थ का प्रत्यायन करा कर स्वयं वहां से खिसक जाया करता है।[2] करन का ध्वनि वर्गीकरण भिन्नता लिये हुये है। उन्होंने तीनों भेदों को अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है--

---

१- अर्थान्तरे संक्रमितमत्यन्तं वा तिरस्कृतम्।
अविवक्षितवाच्यस्य ध्वनेर्वाच्यं द्विधामतम्।।
'तथाविधाभ्यां च ताभ्यां व्यंग्यस्यैव विशेष:' -- ध्वन्यालोक २,१.

२- ।अर्थान्तरे। संक्रमितमितिणिचा व्यंजनाव्यापारे य: सहकारिवर्गस्तस्यायं प्रभाव इत्युक्तम्। अर्थान्तरात्। तिरस्कृत शब्देन च। येन वाच्येनाऽविवक्षितेन सता विवक्षित वाच्यो ध्वनिर्व्यपदिश्यते तद्वाच्यं द्विधेति सम्बन्ध:। योऽर्थ उपपद्यमानोऽपि तावतैवाऽनुपयोगा दर्थान्तर संवलनयाऽन्यतामिव गतो लक्ष्यमाणोऽनुगतधर्मी सूत्रन्यायेनास्ते स रूपान्तर-परिणत उक्त:। यस्त्वनुपपद्यमान उपायता मात्रेणार्थान्तरप्रतिपत्तिं कृत्वा पलायत इव स तिरस्कृत इति। ननु व्यंग्यात्मनो यदा ध्वनेर्भेदो निरूप्यते तदा वाच्यस्य द्विधेति भेदकथनं न संगतमित्याशंक्याह- तथा विधाभ्यां चेति-को यस्मादर्थे। व्यंजकवैचित्र्याद्धि युक्तं व्यंग्यवैचित्र्यमिति भाव:। व्यंजकत्वर्थे यदि ध्वनि शब्द स्तदा न कश्चिद्दोष इतिभाव:।

--ध्वन्यालोक लोचन २, १.

१- रूढ़ लक्षण :-

रूढ़ लक्षण को सोदाहरण स्पष्ट करते हुये लिखते हैं --

वर्णौ सक्तहि कर जहां -

अर्थ बोध जहं येउ ।

रूढ़ नाम तासो कहत-

कविजन करन अतेउ ।। १६१ ।।

--रस कल्लोल,करन कवि,पृ०सं०-१८.

यथा :- जग में दीन दयाल प्रभु गावत निगम निदान ।
थल प्योज पग राखरै सेवत करन सुजान ।। १६२ ।।
देखी जात निहार पौ करके बुध विवेक ।
घरा धीस जानी करन कालिदास कवि ऐक ।। १६३ ।।[१]

२-जौगक लक्षण :-

जौग लक्षण को करन ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है--

अवयव सक्र सपेक्षा जहं-

एक अर्थ को बोध ।

जौगिक तासो कहत है-

जिनके करन प्रबोध ।। १६४।।[२]

अर्थात् जहां वाक्य के पांच अंगों में से एक उपकरण प्रतिज्ञा,हेतु, उदा, उपनयन, निगमन सपेक्षा हो और एक अर्थ का बोध प्रदान करते हों, करन कवि कहते हैं बुद्धिमान या ज्ञानी व्यक्ति उसी को 'जौगिक' कहता है।

३- जौग रूढ़ :-

जौग रूढ़ लक्षण का निरूपण करते हुये करन कवि कहते हैं--कि जहां वाक्य के पांच अंगों में से एक उपकरण -प्रतिज्ञा,हेतु, उदा०, उपनयन, निगम और जहां शब्द समूह अपेक्षित है, उसी को, करन कवि का कथन है कि कविजन जौग रूढ़ कहते हैं--

---

१- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- १८.

२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- १८.

अवयव अरु समुदाय है शक्ति-
अपादित जत्र ।
जौगरुढ़ तासौ कहत करन-
सुकवि जनतत्र ।। १६५ ।।[1]

आचार्य करन कवि ने उपर्युक्त भेदों के भी उपभेदों का वर्णन किया है जो उनके आचार्यत्व को प्रस्तुत करता है । ऐसी मौलिकता हमें अन्य आचार्यों में दृष्टिगोचर नहीं होती है । करन ने 'रूढ़' के भेदों को स्पष्ट करते हुये लिखा है-- १- जौग २- मुधौ जौग ३- जौगाभ्यास इन्हें प्रथम भेद समझना चाहिये--

एकौन जौग अरु दूसरौ मुधौ जौग लख लेउ ।
तीजौ जौगाभ्यास है प्रथम भेद चित देउ ।। १६६ ।।[2]

तत्पश्चात् रूढ़ के तीन भेद और निरुपित किये हैं-- १- भू २- वृक्ष तथा ३- मंडप ।

तीन भेद यह रूढ़ के-
भू अरु वृक्ष बखान ।
मंडप है पुनि तीसरौ-
उदाहरण जिय जान ।। १६७ ।।[3]

करन 'रस कल्लौल' ग्रन्थ में कहते हैं कि इसी प्रकार जौगक के भी तीन प्रकार होते हैं, किन्तु उन्होंने उनका नाम निर्देश नहीं किया है । तत्पश्चात् जौगरूढ़ के भी तीन भेद बताये हैं, किन्तु उनका कथन है कि जो नवीन बुद्धि वाला है वह इसके नव प्रकार को समझ सकता है--

यौं ही जौगक तीन विधि-
जौगरूढ़ पुनि तीन ।
नव प्रकार जानौ सुमति -
जिनकी बुद्धि नवीन ।। १६८ ।।[4]

१- रस कल्लौल, ह०ग्रन्थ,कवि करन, पृ०सं०-१६.
२- रस कल्लौल, ह०ग्रन्थ,कवि करन, पृ०सं०-१६.
३- रस कल्लौल, ह०ग्रन्थ,कवि करन, पृ०सं०-१६.
४- रस कल्लौल, ह०ग्रन्थ,कवि करन, पृ०सं०-१६.

तत्पश्चात् जौगिक के भेदों का निरूपण करते हुये उन्होंने जौगिक के तीनों भेदों का नाम निर्देश किया है-- १- भ्रांत २- कांतमय ३- दास रथी --

शब्द कहत तन मूल एक-
इसके भिन्न प्रकार ।
जौगिक तीन प्रकार कौ-
जानै सुमत उदार ।। १९९ ।।

भ्रांत कांत मय दूसरौ दास-
रथी पुनि और ।
तीनौं जौगिन जानिये-
उदाहरण सिर मौर ।। २०० ।।[1]

'जौग रूढ़' के भेदों को करन ने अत्यन्त मौलिक रूप में व्यक्त किया, जो उनके सच्चे पांडित्य का सूचक है ।

करन का कथन है कि पंकज, भूरुह, नीर, निधि इसे प्रथम भेद समझना चाहिये । क्षीर नीर निधि, दुग्धनिधि, सागर को 'जौगरूढ़' के तीन भेद समझना चाहिये--

पंकज भूरुह नीर निधि-
प्रथम भेद यह जान ।
मिथ सामान्य विशेष के करमन-
उर में आनु ।। २०१।।
क्षीर नीर निधि दुग्धनिधि-
सागर समता एक ।
जौगरूढ़ के तीन यह-
जानौ सुमत विवेक ।। २०२ ।।[2]

१- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-१९.
२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-१९.

वृत्त भेद :-

रस भावादि की अनुभूति के विश्लेषण के लिए मानना अति आवश्यक है कि 'व्यंजना' नाम की एक नयी वृत्ति है, क्योंकि रस भावादि की अनुभूति ऐसी है जहां क्या अभिधा, क्या तात्पर्याख्या और क्या लक्षणा सभी वृत्तियां विरत व्यापार। असमर्थ। रहा करती हैं।[1]

करन कवि ने वृत्ति की परिभाषा का निरूपण न करके उनके भेदों के नाम निर्दैशित करके सोदाहरण प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि वृत्ति के तीन भेद होते हैं-- १- वाचक २- लक्षक ३ अर्थ।

इसके पश्चात् वाचक की परिभाषा स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि वाचक वह है जो बिना सहायता के अर्थ को प्रगट कर देता है। जैसे- चन्दा को कहने से सुधा का अर्थ बोध हो जाता है --

वृत्त भेद कैते तीन यह सुनहु सकल कवि नाह।
वाचक लक्षक अर्थ को समुझत सकल उदाह ।। २०३ ।।
वाचक सो जो सहाय बिनु आपु अरथ कहि देत।
जैसे चन्दा को कहत सुधा करहिं गहि लेत ।। २०४ ।।[2]

अभिधा वर्गीकरण :-

'विवक्षितान्यपरवाच्य' ध्वनि या अभिधा के दो भेद हुआ करते हैं --
१- वह जिसमें ।व्यंग्यार्थ की अनुभूति के समय। वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का पौर्वापर्य ।रहते हुए भी। प्रतीत नहीं हुआ करता और दूसरा वह जिसमें वाच्यार्थ बोध और व्यंग्यार्थ चमत्कार की क्रमिकता पता चल जाती है। तात्पर्य यह है कि 'विवक्षितान्य-परवाच्य' ध्वनि के ये दो भेद हैं :- १- असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि २- संलक्ष्यक्रम व्यंग्य-ध्वनि।[3]

१- वृत्तीनां विश्रान्तेरभिधातात्पर्य लक्षणाख्यानाम्।
अंगीकार्या तुर्या वृत्तिर्बोधे रसादीनाम् ।। १ ।।
--साहित्यदर्पण, आ०विश्वनाथ, पंचम: परिच्छेद: पृ०३३७.

२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- १६.

३- विवक्षिताभिधेयोऽपि द्विभेद: प्रथमं मत:।
असंलक्ष्यक्रमो यत्र व्यंग्यो लक्ष्यक्रमस्तथा ।।
--साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, चतुर्थ परिच्छेद, पृ०सं०-२५५.

विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि में वाच्यार्थ केवल अपने ही अर्थ को प्रस्तुत न करके उसमें निहित अतिविशेष भूत अर्थ को प्रकाशित करने की इच्छा रखता है। यहां भी द्विविध व्यंग्यार्थ -प्रकाशक स्थिति के दर्शन होते हैं।[1].

आचार्य मम्मट ने भी इन्हीं भेदों का निरूपण किया है --इसका पहला तो प्रकार यह है जिसे वस्तुत: एक अनिर्वचनीय चमत्कारकारी काव्य कहा करते हैं और जिसका नाम है अलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनिकाव्य अथवा असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनिकाव्य और दूसरा वह जिसे 'लक्ष्यक्रमव्यंग ध्वनिकाव्य अथवा 'संलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनिकाव्य कहा जाता है।[2].

'असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि' तो रसभावादि रूप ध्वनि है और इसे एक प्रकार का ही माना जाया करता है, क्योंकि यदि इसके भेद किये जायं तो एक-एक भेद में अनन्त भेद सम्भव हो जाते हैं, जिनकी गणना असंभव बन जाती है।[3].

आनन्दवर्धन ने असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि के ८ भेद बताये हैं- १- रस काव्य २-भाव-काव्य ३-रसाभास काव्य ४- भावाभास काव्य ५- भावशान्ति काव्य ६- भावोदय-काव्य ७- भावसन्धि काव्य ८- भावशबलता काव्य।[4].

१- असंलक्ष्यक्रमोद्योत: क्रमेण द्योतित: पर:।
विवक्षिताभिधेयस्य ध्वनेरात्मा द्विधामत:।।
मुख्यतय प्रकाशमानो व्यंग्यार्थो ध्वनेरात्मा।
स च वाच्यार्थापेक्षया क्वचिदलक्ष्यक्रमतया प्रकाशते क्वचित् क्रमेण इति द्विधा मत:।।
--ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, द्वितीय परिच्छेद, पृ०सं०-१.

२- कोऽप्यलक्ष्यक्रमव्यंग्यो लक्ष्यव्यंग्यक्रम: पर:।।
—काव्य प्रकाश- मम्मटाचार्य, ४।४०।

३- तत्राद्यो रसभावादिरेक एवात्र गण्यते।
एकोऽपि भेदोऽनन्तत्वात् संख्येयस्तस्य नैवयत्।।
--साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, चतुर्थ परिच्छेद, पृ०सं० २८६-२८७.

४- रस-भाव तदाभास - तत्प्रशान्त्यादिरक्रम:।
ध्वनेरात्मांगिभावेन भासमानो व्यवस्थित:।।
--ध्वन्यालोक - २।३।

आचार्य मम्मट ने भी असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य के ८ भेद बताये हैं।[1]

काव्य दर्पणकार विद्यावाचस्पति पं०रामदहिन मिश्र ने असंलक्ष्यक्रम ध्वनि की अभिव्यक्ति छह प्रकार से मानी है। ये ही अभिधामूलक असंलक्ष्यक्रम ध्वनि के छह भेद कहलाते हैं-- १- पदगत २- पदांशगत ३-वाक्यगत ४-वर्णगत ५-रचनागत और ६- प्रबन्धगत।

संलक्ष्यक्रम व्यंग्य के काव्य दर्पणकार ने तीन भेद निरूपित किये हैं-- शब्द शक्त्युद्भव-अनुरणन-ध्वनि, अर्थशक्त्युद्भव अनुरणन-ध्वनि और शब्दार्थोभयशक्त्युद्भव-अनुरणन-ध्वनि।

'संलक्ष्यक्रम व्यंग्य' नामक जो अभिधामूलक ध्वनि है वहां व्यंग्यार्थ ऐसा हुआ करता है जैसे अनुरणन। इसके तीन प्रकार बताये गये हैं-- १- वह, जहां व्यंग्यार्थ शब्द-शक्ति से अनुरणित हुआ करता है। २-वह, जहां व्यंग्यार्थ अर्थशक्ति से अनुरणित हुआ करता है और ३-वह, जहां व्यंग्यार्थ शब्द और अर्थ की शक्तियों से अनुरणित हुआ करता है।[2]

आचार्य करन ने अभिधा के ६ भेद बताये हैं- जात, क्रिया, गुण, वस्तु, संज्ञा तथा निदेश। इससे ज्ञात होता है, करन व्याकरण वेत्ता थे जिन्होंने अभिधा के मौलिक भेदों का निरूपण कर अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है--

जात क्रिया गुन वस्तु जुत संज्ञा अरु न निदेश।
कवि कुल छत्र भाषत सकल षट्विधि अभिधावेश।। २०५।।[3]

१- रसभावतदाभास भावशान्त्यादिरक्रमः।
भिन्नो रसाद्यलंकारादलंकार्यतया स्थितः।।
-- काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, पृ०सं०-३८.

२- शब्दार्थोभयशक्त्युत्थे व्यंग्येऽनुस्वानसन्निभे।
ध्वनिर्लक्ष्यक्रम व्यंग्यस्त्रिविधः कथितो बुधैः।। ६।।
--साहित्यदर्पण: आचार्य विश्वनाथ, चतुर्थ: परिच्छेद:। पृ०संख्या- २८८.

३- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, करन कवि, पृ०सं०-१६.

उदाहरणार्थ :-

छात्री पाठक पीठ पर डीगुर ठाकुर चंद ।
उदाहरण यह जानिये कवि कुल आनंदवृंद ।। २०६ ।।

--रस कल्लोल -पृ०सं० १९, कवि करन.

अभिधा मूल व्यंग । अभिधामूलक व्यंजना । :-

अभिधामूलक व्यंजना शब्द की वह शक्ति है जो कि संयोगादिरूप अभिधा-नियामकों में से किसी के द्वारा कहीं किसी अनेकार्थक शब्द के किसी एक प्राकरणिक अर्थ में नियन्त्रित कर दिये जाने पर एक ऐसे अर्थ की उपस्थित किया करती है जो कि वाच्यार्थ से सर्वथा विलक्षण अर्थ हुआ करता है । [1].

ऐसे प्रसंगों में, जहां किसी । अनेकार्थक । शब्द के अर्थ का परिच्छेद अथवा निर्णय न हो रहा हो, जिन कारणों से किसी अर्थ-विशेष का ज्ञान संभव है वे हैं-- संयोग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोधिता, अर्थ-प्रकरण, लिंग, शब्दान्तर सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश-काल, व्यक्ति और स्वर आदि । [2].

संयोग आदि के द्वारा अनेकार्थ शब्द के प्रकृतोपयोगी एकार्थ के नियन्त्रित हो जाने पर जिस शक्ति द्वारा अन्यार्थ का ज्ञान होता है वह अभिधामूला शब्दी व्यंजना है । [3].

१- अनेकार्थस्य शब्दस्य संयोगाद्यैर्नियन्त्रिते ।
एकत्रार्थेऽन्यधीहेतुर्व्यञ्जना साऽभिधाश्रया ।। १४ ।।
--साहित्यदर्पण:-द्वितीय परिच्छेद:, आ०विश्वनाथ, पृ०सं०-७६.

२- संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता ।
अर्थ: प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य संनिधि: ।।
सामर्थ्यमौचिती देश: कालो व्यक्ति: स्वरादय: ।
शब्दार्थ स्यानवच्छेदे विशेष स्मृतिहेतव: ।। इति ।
--साहित्यदर्पण:-आचार्य विश्वनाथ, द्वितीय परिच्छेद:, पृ०सं०-७७.

३- काव्य दर्पण विद्यावाचस्पति पं० रामदहिन मिश्र, पृ०सं०-३३.

'अभिधामूलक व्यंजना' वह व्यंजना हुआ करती है जो अनेकार्थक पद प्रयोगों में उनकी वाचकता के संयोग आदि के द्वारा नियन्त्रण हो जाने पर, एक ऐसे अर्थ का प्रत्यायन करा दिया करती है जिसे कभी भी वाच्य-साक्षात् संकेतित अभिधावो व्यरूप अर्थ नहीं कहा जा सकता है।[1]

'अभिधा शक्ति' द्वारा अनेकार्थी शब्दों में एक अर्थ निश्चित् हो जाने पर जिस शक्ति के द्वारा अन्यार्थ का ज्ञान होता है, उसे अभिधामूला-शब्दी व्यंजना कहते हैं[2]। करन कवि ने अभिधामूलक व्यंजना को इस प्रकार परिभाषित किया है --

बहुत अरथ के शब्द को-
जोगादिक अनुकूल।
अरथ नियम जहं कीजिये-
व्यंग सो अभिधामूल ।। २०७ ।।[3]

अभिधामूल व्यंग का वर्गीकरण करते हुये लिखा है कि समय, देश और अर्थ के साथ संयोग, वियोग, प्रकरण, विरोध, चिन्ह तथा समूह ही अभिधामूलक व्यंजना के भेद हैं--

समय देश अरु अर्थ-
संग कहुं संजोग वियोग।
प्रकरनि अरु इक रोध ते-
चिन्ह ~~समूह~~ सो अर्थ प्रयोग ।। २०८ ।।[4]

संपतो-।समय। जिस समय प्रियतम ने पदार्पण किया उस समय वन में पुष्प खिल गये अत: प्रिय किस प्रकार धैर्य को धारण कर सकता है। ठंडी-ठंडी वायु मन्द गति से तथा सुगन्धित होकर बहने लगी।

१- अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।
संयोगाधैरवाच्यार्थधीकृद्व्यापृति रंजनम् ।। १६ ।।
--काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, २।१६, मम्मटाचार्य।
२- काव्यशास्त्र -भगीरथ मिश्र, पृ०सं०- २४५।
३- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-१९।
४- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-१९।

आयो मधु फूली विपिन कह-

विवि घरी पति भीर।

शीतल मंद सुगन्ध सन-

विमलत सरस समीर। २०६।[१]

देश यथा :-

करन कवि ने उस देश काल का वर्णन प्रस्तुत किया है जब सीताजी रामचन्द्र के साथ वन को जाती हैं। वहां के कष्टों को देखकर उनका हृदय करुणा से भर जाता है और चित्रकूट के वन में उन्हें कन्द-मूल खाने को विवश होना पड़ता है-- सीत: देखत दुसह दुख बाढ़त हिये अपार। चित्रकूट के विपिन में फल दल मूल अहार।। २१०।[२]

अर्थ संगति :-

करन ने अर्थ संगति को अत्यन्त मार्मिक एवं मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है - कि व्यक्ति संसार में मुक्ति की तलाश में इधर-उधर भटकता फिरता है। वास्तव में जो व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करना चाहता है उसे हरि के चरण कमलों को भजना चाहिये--

करत कहा भटकत कहा-

सरजत कहा पुकार।

चाहत हो मन मुक्त-

जो हरि पद भजो उदार। २११।[३]

१- संयोग :-

जैसे कि, `सशंख चक्रो हरि:।` यहां। अनेकार्थक। `हरि` शब्द इसलिये केवल भगवान विष्णु का ही अर्थ दे सकता है, क्योंकि शंख और चक्र का सम्बन्ध इसी अर्थ में उत्पन्न है। न कि अन्य अर्थों जैसे कि यम, अनिल, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, सिंह, भेक आदि-आदि में।[४]

१- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- २०.

२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- २०.

३- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- २०.

४- "सशंखचक्रो हरि:" इति शंख चक्रयोगेन हरिशब्दो विष्णुमेवाभिधत्ते।
--साहित्यदर्पण: द्वितीय परिच्छेद, पृ०-७७, आचार्य विश्वनाथ.

आचार्य करन कवि ने संयोग को इस प्रकार व्यक्त किया है--

आन अंग को बरनिये पूरन परमा चित्त।

कर कंगन जुत आम्मत,प्रात विलौकत चित्त। २१२।[1]

वियोग :-

जैसे कि 'अशंखचक्रो हरि:।' यहां शंख और चक्र के विश्लेष के कारण 'हरि' शब्द एकमात्र विष्णुवाचक ही बन रहा है। क्योंकि जैसे शंख और चक्र का संयोग विष्णु से ही स्वभावत:सिद्ध है वैसे ही इनका विश्लेष अथवा वियोग भी विष्णु से ही सम्भव है, न कि यमादि से।[2]

करन ने वियोग को इस प्रकार स्पष्ट किया है--

पर चक्रन ते चोर ते -

काके पेट समात।

बिना धरन धीर धरन-[3]

यह कैसी राखी जात। २१३।[4]

प्रकरन :-

जैसे कि 'सर्व जानाति देव:' यहां 'देव' पद, जो कि अनेकार्थक है,प्रकरण के कारण एकमात्र 'आप' इस अर्थ का ही उपस्थापक हो रहा है, न कि देवता आदि-आदिका।[5]

१- रस कल्लोल-ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-२०.

२-'अशंखचक्रो हरि:' इति तद्वियोगेन तमेव। --साहित्यदर्पणे:द्वितिय परिच्छेद-पृ०सं०-७७, आचार्य विश्वनाथ।

३- प्र०बिना धरन धर धरन यह द्वि०बिना धरन पर धरन इह।

४- रस कल्लोल-ह०ग्रन्थ, पृ०सं०-२०, कवि करन.

५- 'सर्व' जानाति देव:'इति देवो भवान्।

--साहित्यदर्पणे:-द्वितीय परिच्छेद,पृ०सं०-७८, आचार्य विश्वनाथ.

करन ने लिखा है--

अर्जुन कर्ण विलोकिये जदापि, सुभट अनूप ।
कान भांति को कह सके आचारज[1] के रूप ।। २१४।।[2]

विरोध :-

जैसे कि "कर्णार्जुनौ ।" यहां विरोधिता अर्थात् पारस्परिक वैरविरोध के भाव के कारण "कर्ण" पद का अर्थ केवल सूत-पुत्र कर्ण ही हो सकता है । न कि कान आदि-आदि ।[3]

करन ने विरोध को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि चकवा चन्द्रमा के भय से छिप गया--

कोक कलानिधि के डरन -
छप्यौ दलन के बीच ।
हाय विपत यह देखिये-
करै कहा धौ नीच ।। २१५।।[4]

यहां पर विरोधिता के कारण 'कोक' का अर्थ केवल चकवा ही हो सकता है ।

चिन्ह :-

जाम्या जाम्या जाम्गत -
कला कुराल सिर नेत ।
देखो हरि आवत गगन-
अरुन किरन छवि देत ।। २१६।।[5]

१- पृ०आपारज के रूप द्वितीय [illegible] आचारज के रूप ।
२- रस कल्लोल-ह०ग्रन्थ, पृ०सं०-२०, कवि करन.
३- "कर्णार्जुनौ इति कर्णः सूतपुत्रः ।"--साहित्यदर्पणे-द्वितीय परिच्छेद,पृ०सं०-७७,विश्वनाथ
४- रस कल्लोल-ह०ग्रन्थ -पृ०सं०-२०, कवि करन.
५- रस कल्लोल-ह०ग्रन्थ-पृ०सं०-२०, कवि करन.

यहां पर कवि करन ने हरि के आगमन पर आकाश में लाल किरणें सुशोभित होने लगतो हैं, इस प्रकार प्रस्तुत किया है--

समूह-- सुन्दर सरस सुहावनो -

बिलसत मत्त अमदात ।

रामा लदामन अदा नलतत-

धन हियो सिहात् । २१७। [1]

रुढ़ि यौगिक लदाणा एवं वर्गीकरण :--

लदाणा:--लदाणा शक्ति वह शब्द-शक्ति है जो वहां मुख्यार्थ के । अन्वय बोध के । बाधित अथवा अनुपपन्न हो जानेपर वहां एक ऐसे अर्थ का अवबोधन करवाया करती है जो कि मुख्यार्थ से किसी-न-किसी रूप से सम्बद्ध तो अवश्य रहा करता है, किन्तु मुख्यार्थ के स्वभाव से भिन्न स्वभाव का ही हुआ करता है और ऐसे होने का कारण या तो `रुढ़ि` है । जो वक्ता के वश में नहीं । या `प्रयोजन-विवदा` । जो वक्ता के अधिकार की बात है । [2]

लदाणाशक्ति की मान्यता का इतिहास ब्राह्मणयुग से क्रम-रूप से मिलता चला आ रहा है । निरुक्तकार यास्क ने ब्राह्मणग्रन्थों में `भक्तिवाद` का प्राय:सर्वत्र आश्रयण स्वीकार किया है ।

मीमांसा सूत्रकार भगवान् जैमिनि के कतिपय सूत्र `लदाणा` की मान्यता किंवा उपयोगिता के सूचक हैं । न्याय दर्शनकार महर्षि गौतम का यह सूत्र [3]।

१- रस कल्लोल-ह०ग्रन्थ-पृ०सं०- २०, कवि करन.

२- मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययान्योऽर्थ: प्रतीयते ।

रूढ़े: प्रयोजनाद्वाऽसौ लदाणा शक्तिरर्पिता ।।

--साहित्यदर्पण-द्वितीय परिच्छेद-पृ०सं०-४८, विश्वनाथ.

३- "सहचरणस्थानतादर्थ्यवृत्तमानधारणसामीप्य-

योगसाधनाधिपत्येभ्यो ब्राह्मणमंचकटराजसक्तु-

चन्दनगंगाशाटकान्नपुरुषेष्वतद्भावे पि तदुपचार: ।

-- न्याय दर्शन २-२-६४.

लक्षणा के लक्षण में काव्य प्रकाशकार ने यह कहा है-- ।[1]

लक्षणा के भेद :-

१- उपादान लक्षणा २- लक्षण-लक्षणा ।

उपादान लक्षणा:- जिस शक्ति के द्वारा किसी शब्द का मुख्यार्थ, किसी वाक्यार्थ में, अपने स्वरूप का परित्याग किये बिना भी, अपने अन्वय अर्थात् अन्य पदार्थ के साथ युक्ति-युक्त सम्बन्ध की सिद्धि के लिये, अपने से भिन्न किसी अर्थ का आक्षेप अथवा प्रत्यायन किया करता है वह शक्ति "उपादान लक्षणा" कही जाया करती है ।[2]

--लक्षण लक्षणा तथा उसका वर्गीकरण --

"जिस शक्ति के द्वारा किसी शब्द का मुख्यार्थ, किसी वाक्यार्थ में, अपने स्वरूप का इसलिये सर्वथा परित्याग कर दिया करता है जिससे वहां उससे भिन्न ।किन्तु-किसी न किसी सम्बन्ध से सम्बद्ध। किसी अर्थ का युक्तियुक्त समन्वय स्थापित हो जाय और ऐसा करते हुये वह ।मुख्यार्थ। स्वमात्र लक्ष्यार्थ का उपलक्षक बन जाया करता है, वह शब्द शक्ति "लक्षण लक्षणा" कही जाया करती है ।"[3]

१- मुख्यार्थ बाधे तद्योगे रुढितो थ प्रयोजनात् ।
अन्यो थों लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया ।।"
--काव्य प्रकाश,द्वितीय उल्लास, आचार्य मम्मट, पृ०सं०- ६.

२- मुख्यार्थस्येतराक्षेपो वाक्यार्थेऽन्वयसिद्धये ।
स्यादात्मनोऽप्युपादानादेषोपादान लक्षणा ।। ६ ।।
-- साहित्यदर्पण: द्वितीय परिच्छेद: -विश्वनाथ, पृ०सं०-५२.

३- अर्पणं स्वस्य वाक्यार्थे परस्यान्वयसिद्धये ।
उपलक्षणहेतुत्वादेषा लक्षणलक्षणा ।। ७ ।।
--साहित्यदर्पण:द्वितीय परिच्छेद:-आ०विश्वनाथ, पृ०सं०-५४.

'अविवक्षितवाच्यध्वनिकाव्य' ऐसा काव्य है जिसमें वाच्यार्थ या तो 'अर्थान्तर-संक्रमित' रूप रहा करे या 'अत्यन्ततिरस्कृत' रूप और ऐसा इसलिये कि यहां जो भी विशेषता और रमणीयता है वह ऐसे वाच्यार्थ की नहीं अपितु इससे अभिव्यंग्य अर्थ की ध्वनिरूप अर्थ की ।[1]

ध्वनिकार की इसी मान्यता का स्पष्टीकरण लोचनकार ने भी किया है । जिनका यही कथन है कि 'अविवक्षितवाच्यध्वनि' काव्य में व्यंग्यार्थ की महिमा से वाच्यार्थ का प्रभाव नष्टप्राय रहा करता है, क्योंकि यहां जो वाच्यार्थ है वह या तो अपने रूप को छोड़ता हुआ रूपान्तर का ग्रहण किये प्रतीत हुआ करता है या अपने से भिन्न अर्थ का प्रत्यायन कराकर स्वयं वहां से खिसक जाया करता है ।[2]

जहां पर मुख्यार्थ की बाधा होने पर वाक्यार्थ की सिद्धि के लिए प्रसंगानुकूल मुख्यार्थ का नितान्त त्याग कर, सादृश्य के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धों के सहारे भिन्न अर्थ ग्रहण किया जाता है, वहां पर लक्षण लक्षणा होती है ।[3]

१- अर्थान्तरे संक्रमितमत्यन्तं वा तिरस्कृतम् ।
अविवक्षितवाच्यस्य ध्वनेर्वाच्यं द्विधामतम् ।।
'तथाविधाभ्यां च ताभ्यां व्यंग्यस्यैव विशेष:' -- ध्वन्यालोक- २.१

२- ।अर्थान्तरे। संक्रमितमिति णिचा व्यंजनाव्यापारे य: सहकारिवर्गस्तस्यायं प्रभाव इत्युक्तम् ।अर्थान्तरात्। तिरस्कृतशब्देन च । येन वाच्येनाऽविवक्षितेन सताऽविवक्षित वाच्यो ध्वनिर्व्यपदिश्यते तद्वाच्यं द्विधेति सम्बन्ध: । योऽर्थ उपपद्यमानोऽपि तावतैवाऽनुपयोगाद्धर्मान्तर संवलनयाऽन्यतामिव गतो लक्ष्यमाणो नुगतधर्मी सूत्रन्यायेनास्ते स रूपान्तरपरिणत उक्त: । यस्त्वनुपपद्यमान उपायता मात्रेणार्थान्तरप्रतिपत्तिं कृत्वा पलायत इव स तिरस्कृत इति । ननु व्यंग्यात्मनो यदा ध्वनेर्भेदा निरूप्यते तदा वाच्यस्य द्विधेति भेदकथनं न संगतमित्याशंक्याह तथा विधाभ्यां चेति-चो यस्मादर्थे । व्यंजकवैचित्र्यादि युक्तं व्यंग्यवैचित्र्यमिति भाव: । व्यंजके त्वर्थे यदि ध्वनि शब्दस्तदा न कश्चिद्दोष इति भाव: । ---ध्वन्यालोकलोचन - २.१.

३- काव्यशास्त्र, लेखक- डा० भगीरथ मिश्र, पृ०सं०- २११.

वह लक्षणा जिसे `लक्षण लक्षणा` कहते हैं ऐसे प्रयोग जैसे कि `गंगायां घोष:` गंगा पर अहीरों की बस्ती आदि में स्पष्ट है। यहां जो बात है वह यह है कि यहां `गंगा` शब्द अपने मुख्य अर्थ-प्रवाह रूप अर्थ का इसलिये परित्याग करता प्रतीत हो रहा है जिसमें वह अपने अमुख्य अर्थ-तट रूप अर्थ का ही प्रत्यायन करा सके जो कि वस्तुत: `घोष` के आधार-अधिकरण होने के सर्वथा योग्य है। यहां इस `गंगा` शब्द की जो लक्षणा वृत्ति है वह `लक्षण` के कारण है अर्थात् सर्वथा स्वार्थ समर्पण अपने अर्थ के बिलकुल छोड़ देने के कारण है।[1]

करन कवि ने लक्षण-लक्षणा की परिभाषा इस प्रकार दी है--`जहांपर वाक्यार्थ की सिद्धि के लिये प्रसंगानुकूल मुख्यार्थ से अर्थ की सिद्धि न हो तथा मुख्यार्थ का नितान्त त्याग कर समीप का अर्थ गृहण करना चाहिये।` जब अर्थ समीप से गृहण किया जाता है वहां पर लक्षण-लक्षणा होती है।

अर्थ न लक्षक से बने,
तब समीप ते लेइ।
लियो जो अर्थ समीप को,
लक्षारथ कवि देइ। २१८।
--रस कल्लोल- पृ०सं०-२०, करन कवि.

मुख्य अर्थ के बाद ते-
पुन ताही के पास।
और अर्थ जाते बने-
कहत लक्षण दास। २१९।[2]

करन कवि ने लक्षणा के दो भेद बताये हैं-- १-रुढ़ि २-प्रयोजन और तत्पश्चात् रुढ़ के छ: प्रकार निर्दिष्ट किये हैं--

---

१- `गंगायां घोष इत्यत्र तटस्य-घोषाधिकरणत्वसिद्धये। गंगा शब्द: स्वार्थमर्पयति इत्येव मादौ लक्षणेनषा लक्षणा।`
--काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, पृ०-४६ वामनी, आचार्य मम्मट.

२- रस कल्लोल-ह०ग्रन्थ, पृ०सं०-२१, करन कवि.

रुढ़ प्रयोजन भेद कर-

दुविधि लक्षणा रूप ।

रुढ़ कैली जानिये जट-

विधि अपर अनूप । २२०।[१]

१- स्वारथा :- स्वारथा एक ही प्रकार का होता है -- अजहत स्वारथा ।

२- गौरिसुधा :- के दो भेद बताये हैं ।

जाहि स्वारथा यह कहै-

अजहत स्वारथा एक ।

गौरी सुधा यह दो है-

है कहत अनेक । २२१।

गौरी पुंन संबंध ते जानि-

लीजिये जान ।

सुध्या कारन काज ते-

कविजन कहत बखान ।। २२२ ।।[२]

रुढ़-यथा :-रुढ़ का उदाहरण प्रस्तुत करते हुये करन ने लिखा है--

गाड़ी डगरी औंर यह परी[३] हिये पहचान ।
उदाहरण यह रुढ़ि के जानि लीजिये जान ।।२२३।।[४]

आप अर्थ तजि औंर-

को अर्थ बनावत होइ ।

जहत स्वारथा जानिये कवि-

कोविद सब कोइ।।२२४।।

१- रस कल्लोल-ह०ग्रन्थ, पृ०सं०-२१, करन कवि.

२- रस कल्लोल-ह०ग्रन्थ, पृ०सं०-२१, करन कवि.

३- पृ०परी हिये,द्वि०परित हिये।

४- रस कल्लोल-ह०ग्रन्थ, पृ०सं०-२१, करन कवि.

यथा— नहिं आवत भेरी कहीं बरसत आवत अंब ।
उड़ी चिरैया जात बलि की जति कहा बिलम्ब ।।२२५।।[1]

अजहत स्वार्था-लक्षणा :-

आपु अर्थ सही जान अर्थ कह देह ।
अजहत स्वारथ जानिये सुनत कियौ हरि लेह ।।२२६।।[2]

यथा- श्रृंगमानि के जा मगत क्वर कामद कुंज ।
बल-बल छवि छावत उड़त आवत पर्वत पुंज ।।२२७।।[3]

गौरी सारोपा:-

बढ़न सुधा धर की प्रभा पूरत परमानन्द ।
कियौ कुमुद सरसत सरद दरशहु इव नंद नंद ।।२२८।।[4]

गौरी साध्य वसाना लक्षणा :-

अलबेली लतिका ललित प्रफुल्लित ललित बिलास ।
कुंज भवन वन गवन करि अलि[5] प्रेम प्रकाश ।।२२९।।[6]

सारोपा:- कला कुशल पूरन कला हरन सकल भू-भार ।
राजा दशरथ के भये रामचन्द्र सुकुमार ।।२३।।[7]

१- रस कल्लोल-हस्तग्रन्थ, पृ०सं०-२१, करन कवि.
२- ,, ,, पृ०सं०-२१, ,, .
३- ,, ,, पृ०सं०-२१, ,, .
४- ,, ,, पृ०सं०-२१, ,, .
५- पृ० वन द्वि० नव.
६- रस कल्लोल-हस्तग्रन्थ, पृ०सं०-२२, कवि करन.
७- ,, ,, पृ०सं०-२२, ,, .

सुधा-साध्यावसाना लक्षणा:-

चन्द्र सुधा बरषत हरष करषत हियो हिलोर ।
यदि कौतिक पुनि देखिये विलसत कला कलोर ।।२३३।।[1]

व्यंजना लक्षणा और उसके भेद :-

व्यंजना शक्ति शब्द और अर्थ आदि की वह शक्ति है जो अभिधा आदि शक्तियों के शान्त हो जाने पर ।अपने-अपने कार्य कर चुकने के बाद क्षीण सामर्थ्य-हो जाने पर। एक ऐसे अर्थ का अवबोधन कराया करती है जो ।वाच्य लक्ष्यादि रूप-अर्थों में। सर्वथा एक विलक्षण प्रकार का अर्थ हुआ करता है ।[2]

साहित्य दर्पणकार ने अभिधेयादि अर्थ से सर्वथा विलक्षण अर्थ के अवरोध में अभिधादि के व्यापार-विराम और व्यंजना के सामर्थ्य का जो उल्लेख किया है उसका आधार लोचनकार की यह उक्ति है ।[3]

१- रस कल्लोल - ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-२२.

२- विरतास्वभिधा आसुयया थौं बोध्यते पर: ।।१२।।
सा वृत्तिर्व्यन्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च ।
--साहित्य दर्पण,आचार्य विश्वनाथ, द्वितीय परिच्छेद,पृ०सं०-७५.

३- योऽप्यन्विताभिधानवादी "यत्पर: स शब्दार्थ:" इति हृदये गृहीत्वा शरवदभिधाव्यापारमेव दीर्घदीर्घमिच्छति, तस्य यदि दीर्घो व्यापारस्तदेको सावेति कुत: ?

भिन्नविषयत्वात् । अथानेको सौ ? तद्विषयसंकारिभेदावसज्जातीय एव युक्त: । संजातीये च कार्ये विरम्यव्यापार: शब्दकर्म बुद्धयादीनां पदार्थ विद्भिर्निषिद्ध: असजातीये चास्मन्न्य एव ।
-- ध्वन्यालोकलोचन, पृ०सं०-६४, चौखम्बा ।

वह प्रयोजन (जैसे कि गंगायां घोषः आदि में शैत्य पावनत्व आदि) जिसके प्रत्यायन के लिये लक्षणा का लाक्षणिक पद का सहारा लिया जाया करता है, ऐसा हुआ करता है जो वस्तुतः उसी लक्षणाश्रय पद के द्वारा प्रतीत होने वाला किन्तु उसकी प्रतीति ऐसी है जिसमें (शब्द के) व्यंजना व्यापार के अतिरिक्त और कोई भी व्यापार समर्थ नहीं हुआ करता ।[१]

अभिधालक्षणामूला शब्दस्य व्यन्जना द्विधा ।।१३।।[२]

काव्य दर्पणकार तथा काव्य प्रकाशकार ने भी दो प्रकार की शाब्दी व्यंजना का निरूपण किया है ।

करन कवि ने व्यंजना लक्षणा की परिभाषा अपने में भिन्नता रखते हुये की --

सन्मुख तीनो अर्थ को अर्थान्तर जहं होइ ।
चमत्कार अतिशय जहां कहत व्यंजना सोइ ।। २३२ ।।[३]

वाच्य व्यंगार्थ यथा :-

रसिक रसीले भंवर के सुख रस लीन्हौं रूप ।
देखत कियौ सिहात अति भले बृज भूप ।।२३३।।[४]

१- यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते ।।१४।।
फले शब्दैकगम्ये त्र व्यंजनान्नापरा क्रिया ।
--काव्य प्रकाश, मम्मटाचार्य -द्वितीय उल्लास ।

२- साहित्यदर्पण -द्वितीय परिच्छेद, आचार्य विश्वनाथ, पृ०सं०-७६.

३- रस कल्लोल-ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-२२.

४- रस कल्लोल-ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-२२.

लक्षणामूलक व्यंजना :-

लक्षणामूलक व्यंजना वह है जिसके द्वारा प्रयोजन का प्रत्यायन करवाया जाया करता है जिसकी दृष्टि से लाक्षणिक पद का प्रयोग हुआ करता है।[1]

व्यंजना को 'लक्षणामूलक' कहने से यह स्पष्ट सिद्ध है कि बिना व्यंजना के माने लक्षणा का भी रहस्य अनिर्भिन्न ही रह जाएगा। काव्य प्रकाशकार ने इसीलिये कहा था--

'यस्य प्रतीति माधातुं लक्षणा समुपास्यते।
फले शब्दैक गम्येऽत्र व्यंजनान्नापरा क्रिया।।'

इसी विचारधारा का प्रसार 'अलंकारमहोदधि। २ य तरंग।' में इस प्रकार दृष्टिगत होता है --

'शब्दैरत्रोपचारेण विषय: प्रतिपाद्यते।
क्रियान्तरस्यासद्भावात् व्यक्तयैवातिशय: पुन:।।

करन ने लक्षणामूलक व्यंजना का निरूपण इस प्रकार किया है --

शील सुधा सागर भरी लोनी छिदू न और।
मेरे हित नव सदन के रहे लाह गुन गौर ।।२३४।।
ललित लता लपटी तरुन प्रफुलित बलित सुगन्ध।
मन्जुल मधुकर मधुकरी गुंजत मधुर मदंध ।। २३५ ।।[2]

चेष्टा व्यंग :-

करन कवि ने चेष्टा व्यंग का उदाहरण प्रस्तुत करते हुये लिखा है--

काहू हरि के हाथ में दयो केतकी फूल।
लिखो भ्रमर सुन्दर सरस तासु जु दल फूल ।। २३६ ।।
सो बुनि भेद मिली रहत त्यों का भेद प्रकाश।
कुहुक भेद ये रूपते बरनत बुद्धि विलास ।। २३७ ।।[3]

१- लक्षणोपास्यते यस्य कृते तत्तु प्रयोजनम्।
यया प्रत्याय्यते सा स्याद्व्यंजना लक्षणाश्रया ।। १५ ।।
--आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पणे -द्वितीय:परिच्छेद:।
२- रस कल्लोल -ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-२२.
३- रस कल्लोल -ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-२२.

ध्वनि लक्षणा एवं उसके भेद :-

करन ने ध्वनि लक्षणा का निरूपण इस प्रकार किया है--

मूल लक्षणा है जहां गूढ़ व्यंग पर बान ।
अर्थ न काहु की सो धुन जानहु जान ।। २३८ ।।[1]

करन ने भी ध्वनि के दो प्रकार बताये हैं--

अविवक्षित है, एक पुन एक विवक्षित होइ ।
दोउ द्वै द्वै भांति है जानि लीजिये सोइ ।। २३९ ।।[2]

करन ने अविवक्षित के दो अर्थों का निरूपण किया है --

अविवक्षित द्वै अर्थ इक अर्थ संक्रमित होत ।
वाच्यविरस कृत दूसरी कवि कुल करत उदोत ।। २४० ।।[3]

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के ही अविवक्षित वाच्य-ध्वनि के दो भेद को करन ने स्वीकार किया है--

'अविवक्षितवाच्यध्वनि' काव्य भी दो प्रकार का हुआ करता है --
१- वह, जिसमें वाच्यार्थ अपने से भिन्न अर्थ में संक्रमित हो जाने के कारण 'अविवक्षित' ।अपने स्वरूप में अनुपयुक्त । हुआ करता है और २- वह, जिसमें वाच्यार्थ अत्यन्त तिरस्कृत रहने के कारण 'अविवक्षित' ।सर्वथा अनन्वित । हो जाया करता है ।[4]

अर्थान्तर संक्रमित वाच्यना यथा :-

तन संपत तरुनी जुवा रहति न जानै कोय ।
कर लीजे ऐसी धरी जो कुछ करनै होय ।। २४१ ।।
--करन कृत रस कल्लोल, पृ०सं०-२३.

प्रस्तुत उदाहरण में व्यंजक अर्थ एक ऐसा वाच्यार्थ है जो ।प्रकरण की दृष्टि से। अपने सामान्य स्वरूप में अनुपयुक्त है और फिर अपने से भिन्न एक ऐसे अर्थ में परिणत

१- रस कल्लोल -ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०-२२.
२- ,, ,, ,, ,, -२२.
३- ,, ,, ,, ,, -२२.
४- अर्थान्तरे संक्रमितो वाच्ये त्यन्तं तिरस्कृते ।
अविवक्षितवाच्यो पि ध्वनिर्द्वैविध्यमृच्छति ।। ३ ।।
--साहित्य दर्पण:, विश्वनाथ, चतुर्थ परिच्छेद, पृ०सं०-२८१.

हो गया है जो कि उसी का एक विशेष रूप अंश है। अतः यहां पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्यता हुई।

अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि काव्य --

छोड़ दियो एक बार ही सुनत रहे गुन भार ।
रहत कहा चितवन हिय मधुप मालती और ।। २४२ ।।

--करन कृत, रस कल्लोल, पृ०सं०-२३.

यह अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि काव्य है, क्योंकि यहां मुख्यार्थ अपने स्वरूप का सर्वथा परित्याग करके अपनेसेभिन्न किसी अर्थ-स्वरूप में परिणत हो गया है।

विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि काव्य :-

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि काव्य के दो भेदों का निरूपण किया है--

१- असंलक्ष्य क्रमव्यंग्य २- संलक्ष्य क्रमव्यंग्य ।[१]

कवि करन ने विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि काव्य के इन भेदों को स्वीकार किया है--

दूजो विवक्षित वाच्य के लक्षा क्रम बिन एक ।
संलक्ष्य क्रम होइ विध शब्द अर्थ की टेक ।। २४३ ।।[२]

संलक्ष्या क्रम चार विधि शब्द मूलहि होत ।
अर्थ मूल के बारि विधि कहत सकल कवि गोत ।। २४४ ।।

उभय सक्त का एक है कहे अठारह भेद ।
उदाहरण ये क्रमहि ते जानि लेउ ताजि खेद ।। २४५ ।।[३]

असंलक्ष्य क्रम के चार भेद --

रस अनुभाव दुहो जहां पुनि तिनके आभास ।
असंलक्ष्य क्रम होत तहं बरनत बुधि विलास ।। २४६ ।।[४]

१- विवक्षिताभिधेयो पि द्विभेदः प्रथमं मतः ।
असंलक्ष्यक्रमो यत्र व्यंग्यो लक्ष्यक्रमस्तथा ।। ४ ।।
--साहित्यदर्पण: विश्वनाथ, चतुर्थ:परिच्छेद:, पृ०सं०-२८५.

२- रस कल्लोल -ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- २३.

३- ,, ,, ,, ,, - २३.

४- ,, ,, ,, ,, - २३.

साहित्य दर्पणकार ने असंलक्ष्य क्रम व्यंगन के अन्तर्गत रस भाव और आभास आदि ध्वनि को स्वीकार किया है, जबकि करन ने असंलक्ष्य क्रम व्यंगन में रसाभास और भावाभास, रस और अनुभाव को स्थान दिया है।

रस प्रधान जथा :--

ललित लता दोहु कर गहे किये लाल तन पीठ।
राख बदन भुज मूल पर तक्व तिरीछी डीठ ॥ २४७ ॥[1]

भाव प्रधान यथा --

गौरी चरणा सौज की महिमा बरनव जात।
ज्यौं ज्यौं परसत चंद्र सिर त्यौं छवि सरसात ॥ २४८ ॥

सर को सिरै बखानिये भाव अंग ही होत।
कैसे भाव प्रधानता कवि कुल करत उदोत ॥ २४९ ॥

रस साहिब सब ठानकू कहूं भाव सरसात।
ज्यौं सेवक के भाव को राजा चलत बरात ॥ २५० ॥[2]

रसा भास यथा--

मुखौ सूर मधुकर मुदित करत मालतीकोल।
कह मुसकानी नेह सौ प्रियतम दई ढकेल ॥ २५१ ॥[3]

भावाभास यथा --

तारागन यह गगन के सुर सुर रैन प्रकाश।
साकत बूंद सुहावनो सिच्या कीजत लाश ॥ २५२ ॥[4]

१- रस कल्लोल -ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- २३.
२- रस कल्लोल -ह०ग्रन्थ , कवि करन, पृ०सं०- २३.
३- रस कल्लोल -ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- २३.
४- रस कल्लोल -ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं०- २३.

---: - :---

ध्वन्या लोककार ने ध्वनि के दो भेद स्वीकार किये हैं-- अविवक्षित वाच्य एवं विवक्षितान्य परवाच्य ।[1] साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने भी ध्वनि के दो प्रकार माने हैं ।[2]

करन कवि ने भी अविवक्षित वाच्य एवं विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि के दो भेदों को स्वीकार किया है ---

अविवक्षित है एक पुनि-
एक विवक्षित होइ ।
दोउ द्वै द्वै भांति है-
जानि लीजिये सोइ ।।२३६।।[3]

<u>अविवक्षित वाच्य ध्वनि :-</u>

अविवक्षित वाच्य में वाच्यार्थ को कहने की इच्छा न होकर उससे सम्बद्ध अन्य अर्थ को परिलक्षित कराने की इच्छा वक्ता में देखी जाती है । यहां वाच्यार्थ या तो अन्य अर्थ में संक्रान्त हो जाता है या किसी दूसरे अर्थ की उपलब्धि के लिये अपने आपको समर्पित कर देता है । इन स्थितियों को ध्यान में रखते हुये अविवक्षित वाच्य ध्वनि काव्य के दो प्रभेद हुये हैं-- १.अर्थान्तर संक्रमित २.अत्यन्त तिरस्कृत ।[4]

आचार्य विश्वनाथ ने अविवक्षित वाच्य ध्वनि के दो भेद किये हैं-- १.अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि २.अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि ।[5]

१- स चाविवक्षितवाच्यो विवक्षितान्य परवाच्यश्चेति द्विविधः सामान्येन ।
---ध्वन्यालोक पृ० ७८.

२- भेदौ ध्वनेरपि द्वावुदीरितौ लक्षणाभिधामूलौ ।
अविवक्षितवाच्योऽन्यो विवक्षितान्य परवाच्यश्च ।।२।।
--साहित्य दर्पण, आ० विश्वनाथ, चतुर्थः परिच्छेदः, पृ०सं० २८०.

३- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २२.

४- अर्थान्तरे संक्रमितमत्यन्तं वा तिरस्कृतम् ।
अविवक्षित वाच्यस्य ध्वनेर्वाच्यं द्विधा मतम् ।।
---- ध्वन्यालोक, २।१.

५- अर्थान्तरं संक्रमिते वाच्येऽत्यन्तं तिरस्कृते ।
अविवक्षित वाच्योऽपि ध्वनिर्द्वैविध्यमृच्छति ।।३।।
--साहित्य दर्पण, आ० विश्वनाथ, चतुर्थः परिच्छेदः, पृ०सं० २८१.

करन कवि ने भी अविवक्षित वाच्य के दो भेद किये हैं --

अविवक्षित द्वै अर्थ इक -

अर्थ संक्रमित होत ।

वाच्यतिरस्कृत दूसरो -

कवि कुल करत उदोत ।२४०।[1]

अर्थान्तर संक्रमित वाच्य :-

तन संपत तरुनी जुवा-

रहति न जाने कोय ।

कर लीजे ऐसी घरी-

जो कछु करने होय ।२४१।[2]

आनन्द वर्धन ने अर्थान्तर संक्रमित वाच्य पद और वाक्य की दृष्टि से दो भेद किये हैं -- १. पद प्रकाश्य २.वाक्य प्रकाश्य ।

अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य ध्वनि :-

छोड़ दियो एक बार ही-

सुनत रहे गुन गौर ।

रहत कहा चितवत चित-

मधुप मालती ओर ।।२४२।।[3]

आनन्द वर्धन ने अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि के भी पद और वाक्य की दृष्टि से दो भेद किये हैं -१.पद प्रकाश्य २.वाच्य ध्वनि ।

इस प्रकार आनन्द वर्धन के मतानुसार अविवक्षित वाच्य ध्वनि के चार भेद हैं--

---

१- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २२.
२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २३.
३- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २३.

अविवक्षित वाच्य ध्वनि [१]

पद प्रकाश्य | वाक्य प्रकाश्य

अर्थान्तर संक्रमित वाच्य १-२ | अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ३-४
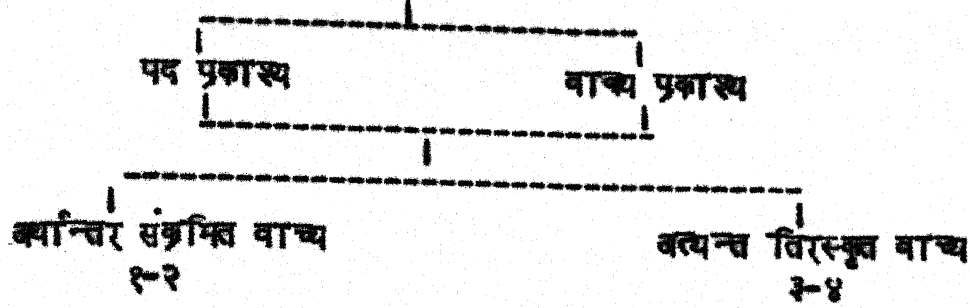
अभिनव गुप्त ने इनकी संख्या केवल पैंतीस बतलाई है। परन्तु कवि ने इनके दो ही भेदों का निर्देशन किया है।

विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि :-

विवक्षितान्य परवाच्य प्रथम तो असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य [२] (जिसमें रस भावादि आठ प्रभेदों का समावेश है।) एवं संलक्ष्य क्रम व्यंग्य [३] (जिसमें वस्तु एवं अलंकार ध्वनि का समावेश है।)

कविराज विश्वनाथ ने भी विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि के दो भेद स्वीकार किये हैं -- १. असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य २. संलक्ष्य क्रम व्यंग्य [४]

ध्वनिकार ने असंलक्ष्य क्रम वाच्य ध्वनि का केवल एक ही प्रभेद किया है। क्योंकि उसका विस्तार अनन्त है, पर संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि के तीन प्रभेद हुए-- शब्द शक्त युद्भव, अर्थशक्त्युद्भव एवं शब्दार्थ शक्त्युद्भव। [५] संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि के

१- आनन्द वर्धन, डा०रेवा प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ० २३.

२- रसभाव तदाभास तत्प्रशान्त्यादिरक्रमः।
ध्वनेरात्माङ्गिभावेन भासमानो व्यवस्थितः।। --- ध्वन्यलोक, २।३.

३- क्रमेण प्रतिभात्यात्मा यो स्यानुस्वानसन्निभः।
शब्दार्थ शक्ति मूलत्वात् सोऽपि द्वेधा व्यवस्थितः।। --- ध्वन्यालोक,२।२०.

४- विवक्षिताभिधेयोऽपि द्विभेदः प्रथमं मतः।
असंलक्ष्यक्रमो यत्र व्यंग्यो लक्ष्य क्रमस्तथा।।४।।
---साहित्य दर्पण,कविराज विश्वनाथ,चतुर्थःपरिच्छेदः पृष्ठ०२८५.

५- अनुस्वानाभसंलक्ष्यक्रम व्यंग्यस्थितिस्तु यः।
शब्दार्थो भयशक्त्युत्थं त्रिधा स कथितो ध्वनिः।।
--- काव्य प्रकाश, ४।५२.

प्रथम भेद के दो प्रकार बताये गये हैं।[1] तथा द्वितीय के सर्वप्रथम स्वत:सम्भवी, प्रौढोक्ति सिद्ध एवं कवि निबद्धवक्तृ-प्रौढोक्ति सिद्ध और फिर इनके उपर्युक्त क्रम से वस्तु से वस्तु, वस्तु से अलंकार, अलंकार से वस्तु एवं अलंकार से अलंकार।[2] इस प्रकार अविवक्षित वाच्य ध्वनि के दो एवं विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि के १६ प्रभेद हुए।

करन कवि ने विवक्षितान्य वाच्य के अठारह भेद बताये हैं --

दुवो विवक्षित वाच्य के लक्षण क्रम बिन एक।
संलक्ष्या क्रम होत त्रिय शब्द अर्थ की टेक ।। २४३ ।।
संलक्ष्या क्रम चार विधि शब्द मूल के दे होत।
अर्थ मूल के बारि विधि कहत सकल कवि गोत ।। २४४ ।।
उभय सक्त को एक है कहे अठारह भेद।
उदाहरण ये क्रमहि ते जानि लेउ ताजि खेद ।। २४५ ।।[3]

असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य :-

असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य रस, भाव, रसाभाव, भावाभास, भावोदय, भावसन्धि, भाव-शान्ति एवं भाव शबलता के भी पद, वाक्य, पदांश, महाकाव्य, वर्ण एवं रचनागत भेद से छ:भेद हो जायेंगे।[4]

इस प्रकार मुख्य रूप से ध्वनि के अविवक्षित वाच्य के चार, विवक्षितवाच्य के ४७ प्रकार हैं। सांजात्य, वैजात्य एकाश्रयानुप्रवेश एवं सन्देह- संकरादि के द्वारा गुणित यह ध्वनि-प्रपंच[5] दस हजार चार सौ चौवन तक पहुंच जाता है।

१- अलंकारोऽथ वस्त्वेव शब्दादात्रावभासते ।। -- काव्य प्रकाश, कारिका, ३८,
प्रधानत्वेन सदोय:शब्दशक्त्युद्भवो द्विधा ।। --वही सू० ५२, २०४,

२- अर्थ शक्त्युद्भवोऽप्यर्थो व्यञ्जक:सम्भवी स्वत: ।
प्रौढोक्तिमात्र सिद्धो वा कवे:तेनोम्भितस्य वा ।।
वस्तु वाऽलंकृतिर्वेति षड्भेदो सौ व्यनक्ति यत् ।
वस्त्वलंकारमथ वा तेनायं द्वादशात्मक: ।। -- काव्य प्रकाश ४।३९-४०,

३- रस कल्लोल, ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २३,

४- पदैकदेश रचना वर्णोष्वपि रसादय: ।। -- काव्य प्रकाश ३।६१,

५- भेदास्तदेव पंचाशत् । (सू०-६२) तेषां चान्योन्य योजने संकरेण त्रिरूपेण-संसृष्ट्य चैकरूपया- (सू० ६३),
वेदखाब्धि वियत्चन्द्रा: १०४०४ शुद्धभेदै: सह ।
शेरषुयुगखेन्दव: ।। १०४५५ ।।

आनन्द वर्धन ने असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य नामक इस ध्वनि वर्ग को निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त माना है --

१- रस

२- रसाभास

३- भाव

४- भावाभास

५- भावप्रशम आदि

(६- भावोदय
७- भावसन्धि
८- भावशबलता,)[१]

आनन्द वर्धन ने उक्त आठ तत्वों में से केवल पांच को ही गिनाया है। ध्वन्यालोक में अन्यत्र भी इन तीनों के नाम नहीं मिलते।

करन कवि ने असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य का विवेचन इस प्रकार किया है --

रस अनुभाव दुहो जहां
पुनि तिनके आभास।
असंलक्ष्यक्रम होत तहां
बरनत बुधि बिलास ।। २५६ ।।[२]

कविराज विश्वनाथ ने इसके भेदों का निरूपण इस प्रकार किया है।[३]

आगे कविराज विश्वनाथ चतुर्थ:परिच्छेद में कहते हैं--"असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि तो रस भावादि क्रम ध्वनि है और इसे एक प्रकार का ही माना जाया करता है, क्योंकि यदि इसके भेद किये जायं तो एक-एक भेद में अनन्त भेद सम्भव हो जाते हैं, जिनकी गणना असम्भव बन जाती है।[४]

१- रस-भाव - तदाभास - तत्प्रशान्त्यादिरक्रम: ।
ध्वनेरात्मांगिभावेन भासमानो व्यवस्थित: ।। --ध्वन्यालोक,आनन्दवर्धन २।३।

२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २३.

३- रस भावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयौ ।। २५६ ।।
सन्धि:शबलता चेति सर्वे पि रसनाद्रसा: ।
---साहित्य दर्पण:कविराज विश्वनाथ,तृतीय परिच्छेद,पृ०सं० २६६.

४- तत्राद्यो रसभावादिरेक एवात्र गण्यते ।
एको पि भेदो नन्तत्वात् संख्येयस्तस्य नैव यत् ।। ५ ।।
---साहित्य दर्पण: कविराज विश्वनाथ,चतुर्थ:परिच्छेद:,पृ०सं०२८६-२८७

कि जहां रस और भाव दोनों हों और फिर उनका आभास हो विद्वानगण उसे असंलक्ष्यक्रम कहते हैं ।

<u>रस प्रधान :-</u>

आनन्दवर्धन ने संपूर्ण विवेचन में उक्त बातों में से किसी एक का भी विवेचन नहीं किया । वस्तुतः आनन्दवर्धन का मुख्य प्रतिपाद्य इन सबमें प्रतीयमान अर्थ की प्रधानता थी जिससे इनमें ध्वनित्व सिद्ध हो सके । रस, भाव आदि सबके प्रसंगों में आनन्दवर्धन ने केवल ध्वनित्व ही प्रतिपादित किया । न तो उन्होंने यह बतलाया कि रस का स्वरूप क्या है और न यही बतलाया कि उसकी निष्पत्ति कहां और कैसे होती है । भाव के विषय में भी इन प्रश्नों पर वे चुप हैं । ध्वन्यालोक में कुछ ऐसे सूत्र मिलते हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि आनन्दवर्धन भी रस के विषय में अपने व्याख्याकार अभिनव गुप्त आदि से भिन्न मत नहीं रखते । आनन्दवर्धन रस का आश्रय या अनुभविता सामाजिक को मानते हैं ।[1] इससे स्पष्ट है -- आनन्दवर्धन सहृदय में ही रस का अस्तित्व मानते हैं ।

प्राप्त सूत्रों में सबसे पहिले नाट्यशास्त्र में ही रस-स्वरूप निर्वचन के क्रम की उपलब्धि होती है, जहां इसकी आकृति का निर्देशक एक सूत्र दिया गया है-- विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है ।[2]

आचार्य मम्मट ने कारण-रूप विभाव, कार्य रूप अनुभाव, एवं सहकारी-रूप व्यभिचारियों की सहायता से अभिव्यक्ति-पथ पर लाए गए स्थायी भावों को रस कहा है ।[3] धनंजय ने भरत सूत्र में निर्दिष्ट भावों में सात्विक भाव की संख्या भी जोड़कर

१- वैकटिका एव हि रत्नतत्त्वविदः,
   सहृदया एव हि काव्यानां रसज्ञाः ।
   ध्वन्यालोक ३।४७ वृत्ति, पृ० ५१८ चौखं० सं० २०१७ वि०   तथा
   -- रसज्ञतैव सहृदयत्वम्
                                    ---ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, पृ० ३८६.

२- विभावानुभाव-व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।
                                    --- अभिनव-भारती, पृ० ४४२.

३- विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः अनुभावैः कटाक्ष-भुजाक्षेप-प्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः व्यभिचारिभिः निर्वेदादिभिः सहकारिभिरुपचितो मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्ये तद्रूपतानुसंधानात् नर्तकेऽपि प्रतीयमानो रसः इति भट्टलोल्लट-प्रभृतयः ।।
   -- काव्य प्रकाश, चतुर्थ उल्लास, वृत्ति भाग, कारिका सं० २८.

विभाव, अनुभाव सात्विक एवं संचारी के द्वारा आस्वादन की स्थिति में लाए जाने वाले स्थायी भाव को `रस` की संज्ञा दी है।

करन कवि ने `रस` का विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया है।--

लखि लगा देहु कर गये -

किये लाल तन पीठ।

राख बदन मुख कुन्ठ पर-

तक्य बिरोही डीठ।। २५७।।[१]

भाव प्रधान :-

रस में जितने भावों का एक साथ अनुभव होता है उनकी मात्रा बराबर रहती है अर्थात् उसमें से किसी भाव का अनुभव किसी भी अन्य भाव से बढ़ा-चढ़ा नहीं रहता और न किसी भाव का किसी अन्य भाव से कम, वहां सभी भाव समान मात्रा में अनुभव में आते हैं।[२]

काव्य प्रकाश में इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है। वह है पानक-रस का। पानक रस यानी आम का पना[३] या ठंडाई। ठंडाई में काली मिर्च,इलायची, सौंफ, बादाम आदि की मात्रा इतनी सन्तुलित रहती है कि उसमें से किसी भी एक का अनुभव अलग नहीं होता। विभावादि के अनुभव में जब तक यह समता रक्षित रहती है तब तक अनुभव रसात्मक रहता है। किन्तु जब इन भावों में से किसी संचारी भाव की मात्रा बढ़ जाती है और उसका अनुभव अधिक मात्रा में होने लगता है, वही अनुभव रसात्मक अनुभव न रहकर भावात्मक अनुभव हो जाता है और यही भाव ध्वनि है।

साहित्य दर्पण में भावादि का स्वरूप इस प्रकार निर्देश किया गया है -- प्रधान रूप से प्रतीयमान व्यभिचारी भाव,देवादि विषयक रति किंवा उद्बुद्ध मात्र रत्यादिरूप स्थायी भाव की अभिव्यक्ति का नाम `भाव` है।

१- रस कल्लोल , ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृष्ठ० २३.

२- आनन्दवर्धन , डा०रेवाप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ० १६३.

३- ।क। पृ० शब्द कल्पद्रुम

।ख। पानक रस न्याय: काव्य प्रकाश में अभिनव गुप्त की रसमीमांसा।

"न तो भाव के बिना रस है और रस के बिना भाव है। रस और भाव की निष्पत्ति तो परस्पर साहाय्य पर निर्भर है।"[1] करन कवि ने 'भाव' को इस प्रकार समझाया है --

गोरी वरणा सौच की महिमा बरनत जात।
ज्यौं ज्यौं परसत चंद्र सिर त्यौं त्यौं छवि सरसात।२४८।
रस कौ सिरै बखानिये भाव अंग ही होत।
कैसे भाव प्रधानता कवि कुल करत उदोत। २४६।
रस साहिब सब ठानहू कहूं भाव सरसात।
ज्यौं सेवक के भाव कौ राजा चलत बरात। २५०।[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि करन ने रस को सिर कहा है और भाव उसके अंग हैं। भाव की प्रधानता का सभी कवि वर्णन करते हैं। कवि करन भी अभिनव गुप्त की भांति मानते हैं कि भावों में संचारी भावों की मात्रा की अधिकता होने पर अनुभव की मात्रा बढ़ जाती है। वे तब रसात्मक न होकर भावात्मक अनुभव हो जाते हैं।

आभास :- करन कवि ने रसाभास ध्वनि और भावाभास ध्वनि का विवेचन इस प्रकार किया है --

रसाभास :- मुखी सुर मधुकर मुदित
करत मालती कौल।
कह मुसकानी नेह दै
प्रियतम दई ढकेल। २५१।[3]

भावाभास :- तारागन यह गगन के सुर-
सुर रैन प्रकाश।
सावन बुंद सुहावनी-
मिथ्या कीजत हाश। २५२।[4]

१- संचारिण:प्रधानानि देवादि विषयारति: ।२६० ।
उद्बुद्धमात्र: स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ।
--साहित्य दर्पण,कविराज विश्वनाथ,तृतीय:परिच्छेद: पृ०सं० २७०.
"न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जित:।परस्परकृता सिद्धिरनयो: रसभावयो: ।।"
--साहित्य दर्पण:कविराज विश्वनाथ,तृतीय परिच्छेद, पृ०सं० २७०.
२- रस कल्लोल,ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २३.
३- रस कल्लोल,ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २३.
४- रस कल्लोल,ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २३.

रस और भाव की ध्वनि में जो भाव केन्द्रिय भाव होता है उसके साथ यदि किसी भी प्रकार की अनुचितता का अनुभव सामाजिक को होता है तो ये ही ध्वनियां रसाभास ध्वनि और भावाभास ध्वनि कहलाने लगती है। जैसे- प्रियतमा के प्रति प्रियतम की क्रोधोक्ति। इसमें न तो रति श्रृंगार बन पाती है और न क्रोध रौद्र। ये भक्तियां अपने अनुभव के पूर्व शत्रुत्व के स्मरण से किसी भी पाठक को अनौचित्य के स्पर्श से दूर नहीं रख पातीं।

भावाभास की स्थिति करन में इस प्रकार की है- कि जब किसी भी भाव की निराकरण स्थिति चित्रित की जाती हो वहां भावाभास होता है। रस गंगाधर के प्रथम आनन के अन्त में तथा काव्य प्रकाश के चतुर्थ उल्लास में इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं। भाव, रसाभास, भावाभास के लिये `काव्य-प्रकाश` में लिखा है-- पण्डितराज ने भावोदय,भाव संधि, भाव शबलता तथा भाव शान्ति में उदय, संधि, शबलता और शान्ति को अप्रधान मान भाव को ही प्रधान माना है।[1]

करन कवि ने भाव, रसाभास, भावाभास आदि का विवेचन काव्य प्रकाशकार तथा रस गंगाधरकार के आधार पर किया है।

साहित्य दर्पणकार ने रसाभास और भावाभास को इस प्रकार परिभाषित किया है -- रसाभास और भावाभास - रस और भाव ही यदि किसी अनौचित्य के साथ विराजमान प्रतीत हों तो `रसाभास` और `भावाभास` माने जाया करते हैं।[2]

करन कवि ने असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य का केवल एक भेद ही स्वीकार किया है जो उनके पाण्डित्य प्रदर्शन का द्योतक है।

२- संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि :-

`संलक्ष्यक्रम व्यंग` नामक जो अभिधामूलक ध्वनि है वहां व्यंग्यार्थ (वस्तु तथा अलंकार रूप हुआ करता है) ऐसा हुआ करता है जैसे (तन्त्री आदि का) अनुरणन। इसके तीन प्रकार बताये गये हैं-- १.वह, जहां व्यंग्यार्थ शब्द शक्ति से अनुरणित हुआ करता है, २.वह, जहां व्यंग्यार्थ अर्थ शक्ति से अनुरणित हुआ करता है और ३.वह, जहां व्यंग्यार्थ शब्द और अर्थ दोनों की शक्तियों से अनुरणित हुआ करता है।[3]

१- `भावस्य शान्ति रुदय:सन्धि:शबलता तथा।`
   द्र०रस गंगाधर प्रथमाननान्त तथा मम्मट की कारिका ४।२६.

२- अथ रसाभास भावाभासौ अनौचित्यप्रवृत्तत्व आभासौ रसभावयो: ।।२६२।।
   --साहित्य दर्पण:,कविराज विश्वनाथ,तृतीय परिच्छेद:, पृ०सं० २७२.

३- शब्दार्थोभयशक्त्युत्थे व्यंग्येऽनुस्वानसन्निभे।
   ध्वनिर्लक्ष्यक्रमव्यंग्यस्त्रिविध: कथितो बुधै: ।। ६ ।।
   -- सा०दर्पण,कविराज विश्वनाथ,चतुर्थ:परिच्छेद:,पृ०सं० २८८.

आनन्दवर्धन ने इस ध्वनि वर्ग को दो भागों में विभक्त किया है -- १. शब्द शक्तिमूलक तथा २. अर्थ शक्तिमूलक।[१] कवि करन ने भी ध्वनि वर्ग के शब्द शक्ति और अर्थ शक्ति दो प्रकार स्वीकार किये हैं --

इति अर्थ ध्वनि अथ उभय सक्ता:--

नीरज आनन जानगत भगत विलोकति चित्त।
लाल अमोलक मध्यगत हुव गुनगरमा मित्त ।२७४।
इह नीरज को परयाइ जलज अरु मुक्ता लाल के परयाइ।
मानिक सो नायक आरक के परमाइ श्रुति-
वरनन शब्द शक्ति अर्थ सक्त दोउ तातें उभय सक्त।[२]

<u>१- शब्द शक्ति मूलक :-</u>

कविराज विश्वनाथ ने शब्द शक्ति मूलक इस ध्वनि को दो भागों में विभक्त किया है -- १. वस्तु ध्वनि, २. अलंकार ध्वनि।[३]

आनन्दवर्धन के अनुसार शब्द शक्ति मूलक प्रथम भाग में --"व्यंजक रूप में स्वीकार किया जाने वाला शब्द दो रूपों में व्यंजक होता है। १. पद रूप में और २. वाक्य रूप में। इन दोनों प्रकार के व्यंजक शब्दों से जो अर्थ प्रतीयमान अर्थ के रूप में प्रकट होता है वह एकमात्र अलंकार रूप होता है।" इस ध्वनि को दो भागों में विभक्त किया है -- १. पद प्रकाश्यालंकार रूप व्यंग्य तथा २. वाक्य प्रकाश्यालंकार रूप व्यंग्य।[४]

कवि करन ने भी शब्द शक्ति मूलक ध्वनि को दो भागों में विभक्त किया है-- १. अलंकार ध्वनि २. वस्तु ध्वनि। इनमें केवल क्रम में भिन्नता है।

१- क्रमेण प्रतिभात्यात्मा यो स्यानुस्वान सन्निभः।
शब्दार्थ शक्ति मूलत्वात् सोऽपि द्वेधा व्यवस्थितः ।।
-- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन - २।२०।।

२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २६.

३- वस्त्वलंकाररूपत्वाच्छब्दशक्त्युद्भवो द्विधा।
---साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, चतुर्थ:परिच्छेद:, पृ०सं० २८६.

४- आनन्दवर्धन, डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी, पृ०सं० २८४.

अलंकार ध्वनि :-

कविराज ने अलंकार ध्वनि का एक उदाहरण प्रस्तुत कर उसे समझाया है-- हे महाराज ! आप `हर्षद` हो, शत्रुवर्ग के नाशक और मित्रवर्ग के प्रदायक हो और (समित:) संग्राम से प्राप्त विजय- सम्पदाओं से (अमित:) अवर्णनीय वैभव- सम्पन्न भी हो । आप ही ऐसे हो जो एक महापुरुष के यशोवैभव से `संहित:` सम्पन्न हो और साथ ही साथ दुर्जनों के (अहित:) अहित कारक भी हो ।`[1]

यह शब्द शक्ति मूल अलंकार ध्वनि का ही उदाहरण है, क्योंकि यहां `अमित:` और `समित:` तथा `अहित:` और `सहित:` के पदों की व्यंजकता शक्ति `विरोधाभास` रूप अलंकार अर्थ का प्रत्यायन करा रही है ।

कवि करन ने शब्द शक्ति मूलक प्रथम भेद अलंकार ध्वनि की उदाहरण द्वारा इस प्रकार विवेचना की है - भूरि लगावत सकल तन,

विषध न सुनो बखान ।

काशी बस कर करिहो,

कहां सूली होत निदान ।२५३[2]

यहां `सूली` शब्द दो अर्थों का क्रम से आभास करा रहा है । पहला तो `सूली` का अर्थ `रोगी` और दूसरा `शिव` है अत:यहां `श्लेष` अलंकार की छटा प्रस्तुत किये जाने से `अलंकार` ध्वनि हुई ।

वस्तु ध्वनि :-

कविराज विश्वनाथ ने `वस्तु ध्वनि` को भी सोदाहरण समझाया है-- `अरे बटोही ! यह तो पहाड़ी बस्ती रही, यहां बिछावन वगैरह कहां मिले ! यहां यदि ठहरना चाहो तो `उन्नतपयोधर` (आकाश में उमड़े मेघ) देख लो और ठहर जाओ ।`[3]

कवि करन ने वस्तु ध्वनि की सोदाहरण इस प्रकार विवेचना की है --

क्यों जीवे छीवे कहा, छीपे गुन गुन पंच ।

छियो सिठो मुख साथ ही,चाखत सुमर कपंच ।२५४

१- `अमित: समित:प्राप्तैरुत्कर्षैं हर्षद प्रभो ।।
अहित:सहित:साधु यशोभिर सतामसि ।।`
--साहित्य दर्पण, विश्वनाथ चतुर्थ:परिच्छेद: पृ०सं० २६०.

२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २३.

३- पथिक ! नात्र स्त्रस्तरमस्ति मनाक् प्रस्तरस्थले ग्रामे ।
उन्नत पयोधर प्रेक्ष्य यदि वससि तद् वस ।।
-- साहित्य दर्पण,कविराज विश्वनाथ,चतुर्थ:परिच्छेद:,पृ०सं० २८२.

बसंत संबंध ते भ्रमर सुमर,

संबंध ते आनद:ते इहि भारत है।

यथावहु वस्तु व्यंग शब्द सक्त,

ते इति सवस्तु लक्षण।[1]

यहां 'शब्दशक्त्युद्भववस्तु' ध्वनि इसलिए है क्योंकि यहां जो शब्द प्रयुक्त है उनकी व्यंजकता शक्ति से जो अभिप्राय निकलता है उसमें कोई आलंकारिकता नहीं है। क्योंकि यह अभिप्राय तो एक 'अनलंकृत अर्थरूप' अभिप्राय है, वस्तुमात्र है।

२- अर्थ शक्ति मूलक :-

आनन्द वर्धन के अनुसार अर्थ शक्ति मूलक ध्वनि व्यन्यमान अर्थ की दृष्टि से दो वर्गों में बंट जाती है-- १. वस्तु ध्वनि तथा २. अलंकार ध्वनि।[2]

वस्तुरूप ध्वनि व्यन्यमान अर्थ वाले वर्ग में जो अर्थ व्यंजक होता है वह भी दो प्रकार का होता है -- वस्तुध्वनि एवं अलंकार ध्वनि।

१- वस्तुध्वनि के दो भेद हैं --

क- प्रौढोक्ति मात्र सिद्ध

ख- स्वत:संभवी[3] तथा

२- अलंकार ध्वनि वर्ग के दो भेद हैं --

क- अलंकार प्रकाश्यालंकार ध्वनि

ख- वस्तु प्रकाश्यालंकार ध्वनि[4]

कविराज विश्वनाथ ने अर्थ शक्ति मूलक ध्वनि के बारह भेद निर्देशित किये हैं।[5]

१- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २४.

२- अर्थ शक्तेरलंकारो यत्राप्यन्य: प्रतीयते।
अनु स्वानोपम व्यंग्य: स प्रकारोऽपरो ध्वने: ।।२३।। --- आनन्दवर्धन - २।२५.

३- प्रौढोक्ति मात्र निष्पन्नशरीर: संभवी स्वत:।
अर्थोऽपि द्विविध:प्रोक्तो वस्तुनोऽन्यस्य दीपक: ।।२४।।--- ध्वन्यालोक- २।२४.

४- अलंकाराणां द्वयी गति:कदाचित् वस्तु मात्रेण व्यज्यन्ते,कदाचिदलंकारेण।
--- ध्वन्यालोक २।२६ की अवतरणिका।

५- वस्तु वाऽलङ्कृतिर्वापि द्विधार्थ: संभवी स्वत: ।।७।।
कवे: प्रौढोक्तिसिद्धो वा तन्निबद्धस्य वेति षट्।
षड्भिस्तैर्व्यज्यमानस्तु वस्त्वलंकाररूपक: ।।८।।
अर्थशक्त्युद्भवो व्यंग्यो याति द्वादश भेदताम्।
---साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ,चतुर्थ परिच्छेद, पृ०सं० २६१.

कवि करन ने अर्थ शक्ति मूलक ध्वनि के मुख्य तीन भेद किये हैं --

अर्थ शक्ति मूल- संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि

स्वतः संभवी — कवि प्रौढ़ी — कवि निबद्ध

कहत अलंकृत ते सुघन अलंकार जहं होई ।
वस्तु वस्तु ते धुनि तहां अधिक चमत्कृत होइ ।।२५५।।
अलंकार ते वस्तु धुनि वस्तु अलंकृत जान ।
अर्थ दुवन के चार इह कवि जन कहत बखान ।।२५६।।

उक्त भेद के तीन यह स्वतःसंभवी दौर ।
कवि प्रौढ़ी कव दूसरी कहत सकल सिर मौर ।।२५७।।

कवि निबद्ध वक्ता कहुत तीहू लेहु विचार ।
अर्थ दुवन के चार यह एक-एक प्रतिचार ।।२५८।।

उभय शक्ति के एक है कहे कहा[illegible] भेद ।
उदाहरण क्रम ते सकल जानि लेहु तीख भेद ।।२५९।।[1]

इन तीनों भेदों में भी प्रत्येक के चार-चार भेद हैं --

१- स्वतःसंभवी अर्थशक्ति मूलक संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि काव्य के चार भेद--

क - अलंकार ते अलंकार व्यंग ।
ख - वस्तु ते वस्तु व्यंग ।
ग - अलंकार ते वस्तु ।
घ - वस्तु ते अलंकार ।

२- कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्धार्थशक्ति मूलक संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य के चार भेद--

क - अलंकार ते अलंकार ।
ख - वस्तु ते वस्तु ।
ग - अलंकार ते वस्तु ।
घ - वस्तु ते अलंकार ।

१- रस कल्लोल, ह० ग्रन्थ, कवि करन , पृ०सं० २५.

३- कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्धार्थ शक्ति मूल- संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य के चार भेद --

क- अलंकार से अलंकार ।

ख- वस्तु से वस्तु ।

ग- अलंकार से वस्तु ।

घ- वस्तु से अलंकार ।

१- स्वत:संभवी अर्थ शक्ति मूलक संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य के भेद :-

क- अलंकार से अलंकार व्यंग :-

स्वत:संभवी अलंकाररूप व्यंजक अर्थ से अलंकार रूप व्यंग्यार्थ की प्रतीति कविराज विश्वनाथ के अनुसार इस प्रकार होती है -- "यही वे महाप्रतापी राजा हैं जिन्होंने संग्राम में क्रोध से, अपने ओंठ चबाये और शत्रु-नारियों के विद्रुमोपम (मूंगे की भांति लाल) ओंठों को, उनके प्रेमी राजाओं के दन्तक्षत संकट से बचाया ।"[1]

इस व्यंग्यार्थ का व्यन्जक जो अर्थ है वह एक स्वत: संभवी अलंकार रूप वस्तुत: विरोधाभासालंकार रूप अर्थ है । कवि करन ने अपने हस्तलिखित ग्रन्थ "रसकल्लोल" में "अलंकार से अलंकार" ध्वनि को इस प्रकार स्पष्ट किया है --

सत सौरभ सुंदर सरस,
मधु पीवत छवि गोद ।
मधुप कुंज निरखो घनो,
नुव मंजरी मोद ।। २६० ।।[2]

इह शोभा लोकताति कामधिन बनावीकता व्यंगा ।

ख- वस्तु से वस्तु व्यंग :-

स्वत: सम्भवी वस्तुमात्र रूप व्यन्जक अर्थ से वस्तुरूप व्यंग्यार्थ की प्रतीति कविराज विश्वनाथ के अनुसार इस प्रकार होती है --"अरी पड़ोसवाली ! जरा इधर मेरे घर की ओर भी निगाह रखना । मेरी जो यह लाल है उसके पिता को कुंए का पानी पीना अच्छा नहीं लगता है । क्या करूं, पत्नी है, किसी प्रकार अकेले ही -

---

१- "गाढकान्तदशनक्षतव्यथा संकटादरिवधूजनस्य यः ।
ओष्ठविद्रुमदलान्यमोचयन्निर्दशन् युधि रुषा निजाधरम् ।।"
--साहित्य दर्पण:,कविराज विश्वनाथ,चतुर्थ:परिच्छेद:, पृ०सं० २६३.

२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २१.

यहां से उस सोते पर जाना है। तमाल की सघन छाया के अंधेरे का तो कहना ही क्या, गांठों से भरे घने, पुराने सरकण्डों की नोच-खरोंच का भी डर लगा है।' यहां जो व्यंग्यार्थ निकल रहा है वह है इस प्रकार की बात करने वाली नायिका का किसी परपुरुष के साथ होने वाले रति-प्रसंग में नखक्षत आदि चिन्हों का गोपन। इस व्यंग्यार्थ का उपस्थापक अर्थ एक वस्तु रूप अर्थ है और स्वतःसंभवी है।[1]

कवि करन ने 'वस्तु से वस्तु' ध्वनि को सोदाहरण इस प्रकार समझाया है ---

सघन कुंज मधु कर,
मधुर गुंजत धानि छवि छाइ।
ललित लता तरवर ललित रहे,
सरस लपटाइ ॥ २६१ ॥

यहां सघन पद से अधिक अंधेरी वस्तु वाले रह सुरत लायक जगह है यह वस्तु व्यंग है।[2]

ग- अलंकार से वस्तु व्यंग :-

स्वतः संभवी अलंकारक्रम व्यंजक अर्थ से वस्तुरूप व्यंग्यार्थ की प्रतीति कविराज विश्वनाथ के मतानुसार इस प्रकार होती है --'संग्राम के लिये आरूढ़ प्रसिद्ध बलराम ने दूर से दौड़ते हुये, आक्रमण करने वाले, वेणुदारी राक्षस को ऐसे देखा जैसे सिंह हाथी को देख रहा है।'[3]

यहां से ध्वनि निकली कि 'पलक मारते ही बलराम वेणुदारी का सर्वनाश कर डालेंगे।' यह ध्वनि एक वस्तुमात्र रूप अर्थ है किन्तु इसमें व्यञ्जक रूप से जो अर्थ उपनिबद्ध है वह एक उपमालंकार है। जो कि (कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध नहीं अपितु) एक स्वतःसंभवी सुन्दर वाच्यार्थ है।

१- 'दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि: क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि।
प्रायेणास्य शिशोःपिता न विरसाः कौपीरपः पास्यति।
एकाकिन्यपि यामि सत्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं नीरन्ध्रास्तनुमालिखन्तु --
जरठच्छेदानलग्रन्थयः ॥'
---सा०दर्पण, कविराज विश्वनाथ, चतुर्थःपरिच्छेदः, पृ०सं० २९२.

२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २४.

३- 'आपतन्तममुं दूरादूरीकृतपराक्रमः।
बलोऽवलोकयामास मातङ्गमिव केसरी ॥'
--साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, चतुर्थःपरिच्छेदः, पृ०सं० २९२.

कवि करन ने "अलंकार ते वस्तु" ध्वनि की विवेचना इस प्रकार की है--

रूनी सजनी के साथ में,

विलसत रस की खान ।

सौंसत संचित बन चिते,

फांसत सी मुसकान ।। २६२ ।।

इहां अस बिन दीपक अस मिताइबैठा इक मई इह वस्तु व्यंग ।[1]

यह ध्वनि एक वस्तु मात्र है किन्तु इसमें व्यन्जक रूप से जो अर्थ उपनिबद्ध है वह एक उपमालंकार है जो कि एक स्वतः संभवी सुन्दर वाच्यार्थ है ।

घ- वस्तु से अलंकार :-

स्वतः संभवी वस्तुमात्र रूप व्यन्जक अर्थ से अलंकार रूप व्यंगयार्थ की प्रतीति कविराज विश्वनाथ के मतानुसार यह है --"जिस दक्षिण दिशा की ओर सूर्य का भी प्रताप मन्द पड़ जाया करता है उसी ओर रघु का प्रताप इतना प्रचण्ड हो उठा कि पाण्ड्य राजगण उसे सह न सके ।"[2] यहां यह व्यंगयार्थ प्रतीत हो रहा है कि "सूर्य के प्रताप से रघु का प्रताप कहीं अधिक प्रखर है यह व्यतिरेक अलंकार रूप अर्थ सौंदर्य है और इसका जो व्यन्जक अर्थ है वह एक स्वतःसंभवी अर्थ है ।

कवि करन ने वस्तु से अलंकार ध्वनि का विवेचन इस प्रकार किया है --

मन मंदिर सुन्दर नारी,

आये जब नंदनंद ।

मुख नाही नाही,

गहत मन मोद आनन्द ।। २६३ ।।

इहां नाही अधिक चोप । इह वस्तु विचित्र अलंकार व्यंग ।[3]

१- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २५.

२- "दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ।।"
--साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ, चतुर्थःपरिच्छेद, पृ०सं० २६२.

३- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २५.

यहां वस्तु मिश्रित अलंकार रूप अर्थ सौंदर्य है और इसका जो व्यंजक है वह एक स्वत: संभवी अर्थ है ।

२- कवि प्रौढोक्ति सिद्धार्थ शक्तिमूल- संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य के भेद :-

क- अलंकार से अलंकार :-

कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकाररूप व्यंजक अर्थ से अलंकाररूप व्यंग्यार्थ की कविराज विश्वनाथ के मतानुसार प्रतीति--"हे तैलंग:वसुन्धरातिलक (तैलंगाधिप महाराज)। आपकी एक ही कीर्ति-संतति ऐसी है जो इन्द्रपुरी की सुर-सुन्दरियों के केशपाशों के लिये मल्लिका-गुच्छ, हाथों के लिये सितकमल, कण्ठ-तटों के लिये मौक्तिक-माल, स्तनद्वयों के लिये सघन चन्दनांगराग और इतना ही क्यों, अंग- प्रत्यंग के लिये उन उन शृंगार-प्रसाधनों का रूप धारण करती दिखायी पड़ रही है ।"[1] यहां यह ध्वनि निकली । भूलोक में विराजमान भी तैलंगाधिप स्वर्गलोक के निवासियों के उपकार में अनवरत लीन हैं । यह ध्वनि एक अलंकाररूप अर्थ- वस्तुत: विभावनालंकार रूप अर्थ है । इस अलंकार रूप ध्वनि का जो अभिव्यंजक अर्थ है वह कवि प्रौढोक्ति सिद्ध रूपकालंकार रूप अर्थ है ।

कवि करन अलंकार ते अलंकार ध्वनि का विवेचना इस प्रकार करते हैं--

दलन गजावल दलन ज्यों,

दीरघ वलन अंड ।

मद भर भौरन भरन पर,

करवर पसरत वंड ।। २६४ ।।

इहां संकलित संयोजित ते अंकुर व्यंग ।[2]

यहां से ध्वनि अलंकार अर्थ - वस्तुत संभव संयोजित अलंकार रूप अर्थ है । इस अलंकार रूप ध्वनि का जो अभिव्यंजक अर्थ है वह कवि प्रौढोक्ति सिद्ध रूपकालंकार रूप अर्थ है ।

१- "धम्मिल्ले नवमल्लिकासमुदयो हस्ते सिताम्भोरुहं,
हार: कण्ठतटे पयोधरयुगे श्रीखण्डलेपो घन: ।
एकोऽपि त्रिकलिंग भूमि तिलक । त्वत्कीर्ति राशिर्ययौ-
नानामण्डनतां पुरन्दरपुरीवामभ्रुवां विग्रहे ।।"
--साहित्य दर्पण, कविराज विश्वनाथ,चतुर्थ परिच्छेद, पृ०सं० २६४.

२- रस कल्लोल, हस्तग्रन्थ , कवि करन , पृ०सं० २५.

ख- वस्तु से वस्तु यथा :-

कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु रूप व्यन्जक अर्थ से वस्तु रूप व्यंगयार्थ की प्रतीति- "वसन्त ने युवतियों को निशाना बनाने के लिये, नव किसलयोपम पुंखों से युक्त आम्र-मन्जरी गुच्छों को बाण बनाकर तो रख छोड़ा है। अब देर इतनी ही है कि उन्हें काम के हाथ में दे दे।[1]

यहां यह ध्वनि निकली, कि "सर्वत्र कामभाव का आविष्कार आरम्भ हो गया है।" यह ध्वनि एक वस्तुरूप ध्वनि है।

कवि करन ने वस्तु से वस्तु ध्वनि की विवेचना इस प्रकार की है --

जब आन दस दिस,

परस विगन पीछै डार।

करत उनैरी हारत छवि,

मैनक दैत पसार ।। २६५ ।।

इहां द्रुम पसार दिसनाकि परी इह वस्तु तासों सरद ते उदवत है इन वस्तु व्यंग।[2]

यह एक कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अर्थ है। जिसका अस्तित्व कवि की प्रौढ़ वर्णना में ही है न कि सर्वसाधारण के अनुभव में।

ग- अलंकार से वस्तु यथा :-

कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकाररूप व्यन्जक अर्थ से वस्तुरूप व्यंगयार्थ की प्रतीति-- "रामावतार के समय ऐसा लगा जैसे राक्षसवंश की राजलक्ष्मी के आंसू, रावण के मणिमुकुट से टूटते मणि-मौक्तिकों के बहाने, पृथिवी पर गिर-गिर कर ढलकने लगे।[3]

१- "सज्जेहि सुरहि मासो ण दाव अप्पेइ जुवइ जणलक्ख सुहे।
अहिणवसहआर मुहे णवपल्लवे अणंगस्स सरे ।।"
--साहित्य दर्पण:, कविराज विश्वनाथ, चतुर्थ:परिच्छेद:, पृ०सं० २६३.

२- रस कल्लोल, ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २५.

३- "दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणं राक्षसश्रिय:।
मणिव्याजेन पर्यस्ता: पृथिव्यामश्रु बिन्दव: ।।"
--साहित्य दर्पण, आ०विश्वनाथ, चतुर्थ:परिच्छेद:, पृ०सं० २६४.

यहां महाकवि कालिदास के रघुवंश की इस सूक्ति में यह ध्वनि प्रस्फुटित हो रही है कि "अब राक्षसवंश की राज्यश्री का का अन्त होने ही वाला है।" यह ध्वनि एक अलंकृत अर्थ ही है और उसका व्यञ्जक अर्थ एक ऐसा "अपह्नुति" अलंकार रूप अर्थ है जिसमें कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्धता की रूपरेखा स्पष्ट झलक रही है।

कवि करन ने "अलंकार से वस्तु" की विवेचना इस प्रकार की है --

सम्वासीह क्यान दूर,

स्याक्ष के हेत।

चच्चासीनम से बरवि वला,

भूपन देत ॥ २६६ ॥

इहां श्लेषानुप्राणित से पसमति और नायी पसमाही यह वस्तु व्यंग[1]।

घ- वस्तु से अलंकार व्यंग :-

कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तुरूप व्यञ्जक अर्थ से अलंकाररूप व्यंग्यार्थ की प्रतीति "हे शूरवीर राजन्! जबकि चन्द्रमा की चांदनी रात में भुवनमण्डल को शुभ्र बनाया करती है, आपकी कीर्ति-सन्तति ऐसी है जो इसे सदा अपने शुभ्र प्रकाश से प्रकाशमान रखा करती है।"[2]

यहां जो व्यंग्य रूप अर्थ है वह एक अलंकाररूप अर्थ है, क्योंकि चन्द्रिकारूप उपमान की अपेक्षा कीर्तिरूप उपमेय का उत्कर्षातिरेक स्पष्ट झलक रहा है और उसका अभिव्यञ्जक जो अर्थ है एक कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अर्थ है।

कवि करन ने कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तु से अलंकार की विवेचना इस प्रकार की है ---

---

१- रस कल्लोल, ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २५.

२- "रजनीषु विमलभानोः करजालेन प्रकाशितं वीर!।
धवलयति भुवन मण्डलमखिलं तव कीर्ति संततिः सततम् ॥"

--- साहित्य दर्पणः, आ०विश्वनाथ, चतुर्थःपरिच्छेदः, पृ०सं० २६४.

जैवा दिल्ली दलन कौ,

तैवा कुम्भल हिंदुवान ।

छवा[1] नंदनंदन नवल,

सवा सिंह सुभमान ।। २४८ ।।

इहां जैवा बड़ी समर्थता क्यों और नाहीं इह वस्तुते अनुन्वह व्यंग ।[2] यहां जो व्यंग्य रूप अर्थ है वह एक अलंकाररूप अर्थ है, क्योंकि उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्षातिरेक स्पष्ट झलक रहा है ।

३- कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्धार्थ शक्ति मूल- संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य के चार भेद ---

---

क- अलंकार से अलंकार :-

कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकाररूप व्यञ्जक अर्थ से अलंकाररूप व्यंग्यार्थ की प्रतीति --- 'अरे सुन्दर ! तेरी वह सुन्दरी, जब सहस्त्रों सुन्दरियों से भरे तेरे हृदय में प्रवेशमात्र भी न पाकर, प्रतिदिन, सब काम छोड़-छाड़ कर, बस, अपनी दुर्बल देह को अधिक से अधिक दुर्बल बनाने में ही लगी हुई दीख पड़ रही है ।[3]

यहां यह ध्वनि निकल रही है कि चाहे वह अपनी देह को कितनी भी दुर्बल क्यों न बनावे तेरे हृदय में उसके लिये कोई स्थान नहीं है ? यह ध्वनि एक अलंकाररूप अर्थ-वस्तुतः 'विशेषोक्ति' अलंकार रूप अर्थ है ।

कवि करन ने कवि निबद्ध प्रौढ़ोक्ति सिद्ध 'अलंकार से अलंकार' की विवेचना इस प्रकार की है ---

एक सागर एक सरस वौ,

एक पठ पाउ गम्भीर ।

जहां पथिक पूछत फिरत करन,

कूप कौ नीर ।। २४९ ।।

१- पाठ में --- छवा, द्वि० छवा ।

२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २५.

३- 'महिलासहस्स भरिए तुह हिअए सुहअ सा अमाअन्ती ।
अणुदिणमणण्णकम्मा अंगं तणुअं पि तणुएइ ।।'
--साहित्य दर्पण, आ०विश्वनाथ, चतुर्थः परिच्छेदः, पृ०सं० २६६.

इहां प्रस्तुतां की प्रशंसा से अन्य निंदा व्याज वस्तु व्यंग ।[१]

यहां जो ध्वनि निकल रही है वह ध्वनि एक अलंकाररूप अर्थ वस्तुतः "विशेषोक्ति" अलंकाररूप अर्थ है । इस ध्वनि की अभिव्यन्जना जिस अर्थ से हो रही है वह अर्थ कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध "काव्यलिंग" अलंकाररूप अर्थ है ।

ङ- वस्तु से वस्तु यथा :-

कवि निबद्धवक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तुरूप व्यन्जक अर्थ से वस्तुरूप व्यंगयार्थ की प्रतीति --"अरी सुन्दरी । पता नहीं चलता कि इस शुक-शावक ने किस पर्वत-शिखर पर, कितने दिनों तक, किस प्रकार का तप किया कि इसे तेरे अधर की भांति लाल, कोमल बिम्बफल के आस्वाद का सौभाग्य मिल गया ।"[२]

यहां यह व्यंगयार्थ निकल रहा है कि' तेरा अधरपान बड़े पुण्य-प्रताप का ही फल है ।" इस व्यंगयार्थ का अभिव्यन्जन जिस प्रकार के अर्थ से हो रहा है वह अर्थ वस्तु मात्र रूप अर्थ है और कवि निबद्धवक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अर्थ है ।

कवि करन ने कवि निबद्धवक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु ध्वनि की विवेचना इस प्रकार की है ---

तुम रसाल बरबर सरस,
हम है निरस करील ।
समता पूजत नाहि ने,
परमर मूषक पील ।। २७० ।।

बराबर नाहीं तुम बड़े हम कछू नाही इह वस्तु से वस्तु व्यंग ।[३]

१- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २५.

२-"शिखरिणि क्व नु नाम कियच्चिरं किमभिधानम साव करोत्तपः ।
सुमुखि । येन तवाधर पाटलं दशति बिम्बफलं शुकशावकः ।।"
---साहित्य दर्पणः, आ०विश्वनाथ, चतुर्थःपरिच्छेदः, पृ०सं० २६५.

३- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २५.

यहां ये व्यंग्यार्थ निकल रहा है कि 'हम तुम बराबर नहीं हैं तुम बड़े हो हम तो कुछ भी नहीं हैं।' इस व्यंग्यार्थ का अभिव्यञ्जक जिस प्रकार के अर्थ से हो रहा है वह अर्थ वस्तु मात्र रूप अर्थ है। और कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अर्थ है।

ग- वस्तु से अलंकार व्यंग्य :-

कवि निबद्धवक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तुरूप व्यञ्जक अर्थ से अलंकाररूप व्यंग्यार्थ की प्रतीति — 'अरी सुन्दरी! इस वसंत ऋतु में काम के बाणों ने तो, करोड़ों की संख्या में पहुँचकर अपनी (लोकप्रसिद्ध) 'पञ्चता' छोड़ दी किन्तु वियोगियों को 'पञ्चता' (मृत्यु) से छुटकारा न मिला।'[1]

यहां जो व्यंग्य निकल रहा है वह उत्प्रेक्षालंकार रूप अर्थ है, क्योंकि अन्त में यही प्रतीत हो रहा है कि 'कामबाणों की 'पञ्चता' मानों' उन्हें छोड़कर वियोगियों का आश्रय ले चुकी है।

कवि करन ने कवि निबद्धवक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तु से अलंकार की विवेचना इस प्रकार की है —

तरवर सब फूले रहत,
होत सरस रसकंद।
सम विचार को तरन,
कहू नहीं व्यापी मकरंद ।। २७१ ।।

इह कहे ते दरद छोहह वस्तु रूप अरथबंत इह व्याज स्तुतिव्यंग।[1,2]

यहां जो व्यंग्य अर्थ है इसका उत्थापक अर्थ एक वस्तु रूप अर्थ है जिसका यह स्वरूप है — कि 'वे बड़े बेदरद हैं और हम दूसरों के दर्द को सहने वाले हैं।' यह वस्तु रूप अर्थ भी कवि निबद्धवक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अर्थ है, क्योंकि इसका वक्ता कवि-

---

१- 'सुभगे! कोटिसंख्यत्वमुपेत्य मदनाशुगैः ।
वसन्ते पञ्चता त्यक्ता पञ्चतासीद्वियोगिनाम् ।।'
—साहित्य दर्पण:, आ० विश्वनाथ, चतुर्थ: परिच्छेद:, पृ०सं० २८५.

२- रस कल्लोल, ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २५.

द्वारा वर्णित एक दयावान व्यक्ति है। जो कि अपनी प्रौढ़ वर्णना में दया के कोटि-कोटि शरीरों का साक्षात्कार कर रहा है।

घ- अलंकार से वस्तु व्यंग्य :-

कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार रूप व्यञ्जक अर्थ से वस्तुरूप व्यंग्यार्थ की प्रतीति --"अरी कोप करने वाली सुन्दरी। इधर देख, इस चमेली की कली पर यह भौंरा ऐसा गुंजार कर रहा है मानो पञ्चशर काम भी विजय यात्रा का शंख बजा रहा हो।[१]

यहां यह वस्तुरूप व्यंग्यार्थ चल रहा है कि "अरी मानिनी। अब तो मदनोन्माद की घड़ी आ पहुंची, अब क्यों मान नहीं छोड़ती है।" यह व्यंग्यार्थ जिस व्यञ्जक अर्थ के आधार पर निकल रहा है वह अर्थ एक कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति-सिद्ध उत्प्रेक्षालंकाररूप अर्थ है।

कवि करन ने कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध 'अलंकार से वस्तु' ध्वनि की विवेचना इस प्रकार की है ---

चंदन चरचर धन तुम,
　　　　फहत सुरन के सीस।
हम सेमर फल-फूल दल,
　　　　वृथा करे जगदीश।। २७३।।

इहां अन्य अप्रस्तुत से आत्म निंदा वाच निंदास्तुति पढ़े जाहु नाची इह वस्तु व्यंग।[२]

१- "मल्लिकामुकुले चण्डि। भाति गुञ्जन् मधुव्रतः।
　प्रयाणे पञ्चबाणस्य शंखमापूरयन्निव।।"
　　　--साहित्य दर्पणः, आ०विश्वनाथ, चतुर्थःपरिच्छेदः, पृ०सं० २६६.

२- रस कल्लोल, ह० ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २६.

यह व्यंग्यार्थ जिस व्यन्जक अर्थ के आधार पर निकल रहा है वह अर्थ एक कवि निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्तिसिद्ध उत्प्रेक्षालंकार रूप अर्थ है।

शब्दार्थोभय शक्त्युद्भव ध्वनि --

यह 'संलक्ष्यक्रम व्यंग्य' ध्वनि-काव्य जो कि शब्दार्थोभय शक्त्युद्भव कहा जाया करता है, एक प्रकार का ही है।[1]

कवि करन शब्दार्थोभय शक्त्युद्भव ध्वनि को सोदाहरण इस प्रकार वर्णित करते हैं --

नीरज कानन जगमगत,

पगत विलोकवि चित।

लाल अमोलक मध्यगत,

द्रुत गुलगरमा मित ।। २७४ ।।

इह नीरज को परजाइ जलज वह मुँगवा लाल के परजाइ। मानिक जो नायक कारक के परमाइ बुति अरुणन शब्द शक्ति अर्थ सक्त दोउ जाति उभयसक्ता।[2]

ध्वनि भेद संख्या :-

जहाँतक ध्वनि के भेदों का प्रश्न है आनन्दवर्धन उसका उत्तर नहीं देते। वे अभिनव गुप्त और मम्मटाचार्य के समान यह नहीं कहते कि ध्वनि के ३५ या ५१ भेद होते हैं। उनने केवल इतना कहा है कि ध्वनि भेद गणनातीत है।[3] इतने पर भी उनने जो उदाहरण दिए हैं उनके आधार पर हम यह मान सकते हैं कि आनन्दवर्धन के अनुसार ध्वनि के भेदों की संख्या १४ है।[4]

१- एक: शब्दार्थ शक्त्युत्थे-
उभय शक्त्युद्भवे व्यंग्ये एको ध्वनेर्भेद:।
---साहित्य दर्पण, आ०विश्वनाथ,चतुर्थ:परिच्छेद:, पृ०सं० २६८.

२- रस कल्लोल, ह०ग्रन्थ, कवि करन, पृ०सं० २६.

३- ध्व० पृ० ५५१--५५३.

४- ध्व० ३।४४.

अविवक्षित वाच्य ४ तथा विवक्षितान्य परवाच्य १० ।

कविराज विश्वनाथ ने १८ प्रकार के ध्वनि काव्य निर्दिष्ट किये हैं।[1]

कवि कर्ण ने भी "ध्वनि काव्य" को १८ भागों में विभक्त किया है।

१८ प्रकार के ध्वनि काव्य का अभिप्राय:-

अविवक्षित वाच्य ध्वनि काव्य के
("अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि" काव्य और
"अत्यन्ततिरस्कृत वाच्यध्वनि" काव्य रूप) भेद = २

"विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि" काव्य का
"असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि" काव्यरूप भेद = १
और (विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि काव्य के)
"संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि" काव्यरूप भेद में --

१- तदाष्टादशधा ध्वनि: ।।६।।
--- साहित्य दर्पण:, आ० विश्वनाथ, चतुर्थ:परिच्छेद:, पृ०सं० २६६.

शब्द शक्त्युद्भव ध्वनिकाव्य के भेद = २)
अर्थ शक्त्युद्भव ध्वनिकाव्य के भेद =१२) १५
और शब्दार्थोभय शक्त्युद्भव ध्वनिकाव्य के भेद =१)

ध्वनिकाव्य भेद = १८

करन कृत ध्वनि काव्य के मूल भेदों का कोष्टक :--

ध्वनि काव्य

(१) अविवक्षितवाच्य ध्वनिकाव्य
- (१) अर्थान्तर संक्रमित क्रम-अविवक्षितवाच्य-ध्वनिकाव्य
- (२) अत्यन्त तिरस्कृत अविवक्षितवाच्य ध्वनिकाव्य

(२) विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनिकाव्य
- (१) असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि काव्य
- (२) संलक्ष्यक्रमव्यंग्य विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि काव्य
  - (१) शब्दशक्ति मूल संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि-काव्य
    - (१) शब्द शक्तिमूल संलक्ष्यक्रम वस्तु व्यंग्य ध्वनिकाव्य
    - (२) शब्द शक्तिमूल संलक्ष्यक्रम-अलंकार व्यंग्य ध्वनिकाव्य
  - (२) अर्थशक्ति मूल संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि काव्य
    - (१) स्वतःसम्भवी शक्तिमूल संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि-काव्य
    - (२) कवि प्रौढोक्ति सिद्धार्थ शक्ति मूल संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य
    - (३) कवि निबद्धवक्तृ प्रौढोक्ति सिद्धार्थ शक्तिमूल संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि-काव्य
  - (३) शब्दार्थोभय शक्तिमूल संलक्ष्यक्रम व्यंग्य-ध्वनिकाव्य

कवि करन ने `ध्वनि काव्य' भेदों के क्षेत्र में कविराज विश्वनाथ का अनुसरण किया किन्तु ये भेद अपने में मौलिकता को लिये हुये प्रस्तुत हुये हैं।

---: ० :---

ध्वनि के अन्य नूतन प्रयोग :-

कवि करन ने ध्वनि लक्षण को अत्यन्त नवीन रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है -

जो सुनिव सो शब्द है अर्थ लिये पहचान ।
पुन अनुरन विमान कर शब्द जुगल जिय जान ।। २३७ ।।[1]

करन ने ध्वनि के तीन भेदों का निरूपण किया है जो स्वयं में मौलिकता लिये हुये है - (१) रूण (२) जोग (३) जोगरूढ़ -

सो सुन तीन प्रकार को वरन रूप जो आइ ।
रूढ़ जोगक तीसरो जोग रूढ़ मन लाइ ।। २३८ ।।[2]

करन ने इन भेदों के भी उपभेदों का वर्णन किया है जो उनके आचार्यत्व को प्रस्तुत करता है । करन ने " रूढ़ " के भेदों का निरूपण इस प्रकार किया है -

(१) जोग , (२) मुखो जोग , (३) जोगाभ्यास ।

तत्पश्चात् रूढ़ के तीन भेद और निरूपित किये हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं :-
१ - भू , २ - वृक्ष , तथा ३ - मंडप ।
इसी प्रकार जोगक के भी तीन प्रकार निर्देशित किये हैं ।

जोग ' रूढ़ के भेदों को करन ने अत्यन्त मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है । करन का कथन है --- पंकज , भूरुह, नीर, निधि - इसे प्रथम भेद समझना चाहिये ।

करन ने वृत्ति के तीन भेद - वाचक, लक्षक तथा अर्थ किये हैं ।

आचार्य करन ने अभिधा के छः भेद बताये हैं - जात, क्रिया, गुण, वस्तु, संज्ञा तथा निदेश ।

---

१ - ह० ग्र० रस- कल्लोल , कवि करन, पृ० सं० ९८ ।
२ - ह० ग्र० रस- कल्लोल, कवि करन, पृ० सं० २२ ।

अर्थ संगति को करन ने अत्यन्त मार्मिक एवं मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है।

करत कहा भटकत कहा सरकत कहा पुकार ।
चाहत हो मन मुक्त जो हरि पद मजो उदार ।।२१९।।[1]

करन ने लक्षणा के दो भेद बताये हैं - १ - रूढ़ि २ - प्रयोजन , तत्पश्चात् रूढ़ के छः प्रकार निर्देशित किये हैं।

रूढ़ प्रयोजन भेद कर द्विविधि लक्षणा रूप ।
रूढ़ कोली जानिये षट् विधि अमर अनूप ।।२२० ।।[2]

करन ने असंलक्ष्य क्रम व्यंजन में रसाभास और भावाभास, रस और अनुभाव को स्थान दिया है।

करन ने विवक्षितान्य परवाच्य के अट्ठारह भेद बताये हैं ।
" करन " ने असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य का केवल एक भेद ही स्वीकार किया है।

कवि करन ने अर्थ शक्ति मूलक ध्वनि के मुख्य तीन भेद किये हैं - (१) स्वतः संभवी , (२) कवि प्रौढ़ी (३) कवि निबद्ध । इन तीनों भेदों में भी प्रत्येक के चार चार भेद हैं।

करन ने विश्वनाथ की भांति ध्वनि काव्य के १८ भेद निर्देशित किये हैं , परन्तु वह भी हमारे सामने अपने मौलिक रूप में आये हैं।

---

१ - ह० पु० रस कल्लोल , कवि करन पृ० सं० २० ।
२ - ह० पु० रस कल्लोल , कवि करन पृ० सं० २० ।

षष्ठ अध्याय

गुण, रीति, वृत्ति निरूपण

अलंकारमत की तरह गुण मत की भी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। गुण मत, रीति मत से सम्बद्ध है। वामन ने विशिष्ट-पद-रचना को ही रीति नाम से अभिहित किया है।[1] उन्होंने विशिष्टता के लिए गुणों की सत्ता भी स्वीकार की है, और उनके सम्बन्ध में विचार किया है। जिस प्रकार शब्द और अर्थ, दोनों में अलंकार होते हैं, उस प्रकार ही गुण भी शब्द तथा अर्थ दोनों के होते हैं। वामन ने दश शब्दगुण और दश अर्थगुण स्वीकार किये हैं। गुणों पर विचार करते हुए उन्होंने उसकी सुन्दर परिभाषा भी प्रस्तुत की है। अर्थ गुणों के प्रसंग में उन्होंने अर्थ की प्रौढ़ि को, `ओज` कहा है। प्रौढ़ि का अर्थ है- प्रौढ़ता। इसके पांच भेद माने गये। पद के लिए वाक्य का प्रयोग, वाक्य के लिए पद का प्रयोग, व्यास ।विस्तार। समास ।संक्षेप। तथा साभिप्रायता।[2] अर्थ की विमलता का नाम `प्रसाद` है, मेल का नाम `श्लेष` है, क्रम, कौटिल्य, अनुल्वणत्व और उपपत्ति का योग `घटना` या `मेल` कहलाता है। अनेक क्रिया व्यापार क्रम से रखे जायं तो वही `क्रम` कहलाता है। चातुर्य ही `कौटिल्य` है। प्रसिद्ध-पद्धति का त्याग `अनुल्वणत्व` है। युक्ति से काम लेना `उपपत्ति` है। अविषमता अर्थात् प्रक्रम का अभेद `समता` है तथा अर्थ का दर्शन `समाधि` है। उसमें निहित अर्थ दो प्रकार के माने जाते हैं -- एक अयोनि तथा दूसरा `अन्यच्छायायोनि`। कवि की व्यक्तिगत सूझ `अयोनि` है और दूसरे कवियों की छाया में अपनी सूझ को जोड़ना `अन्यच्छायायोनि` कहलाता है।[3]

१- `विशिष्टपदरचना रीतिः` -- काव्यालंकार सूत्र -- वामन.

२- `पदार्थेवाक्यरचनं वाक्यार्थे च पदाभिधा।
प्रौढिर्व्यासि समासौ च साभिप्रायत्वमस्य च।`
-- का० पृ० ८। सू० सं० ६६ की- वृत्ति।

३- केचिदन्तर्मवन्त्येषु दोषत्यागात्परे श्रुताः।
अन्ये भवन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश ॥ ६६ ॥
-- सूत्र सं० ६६ की वृत्ति, पृ० २२६.

अर्थ के दो अन्य प्रकार भी माने जाते हैं-- व्यक्त और सूक्ष्म। सूक्ष्म के पुन: दो भेद होते हैं-- भाव्य और वासनीय।[1] शीघ्र ही जिसका निरूपण किया जा सके वह 'भाव्य' है, और जो एकाग्रता के द्वारा समझा जाय वह 'वासनीय' है। उक्ति-- वैचित्र्य ही 'माधुर्य' है, अपारुष्य ही 'सौकुमार्य' है, अग्राम्यत्व ही 'उदारता' है। वस्तुस्वभाव स्फुटता को ही 'अर्थ व्यक्ति' नामक गुण माना जाता है। दीप्तरसत्व ही 'कान्ति' है। इस प्रकार वामन ने दश शब्द गुण तथा दश अर्थ गुण बतलाये हैं।

वामन के पूर्ववर्ती आचार्य भरत ने भी इन्हीं दश गुणों को स्वीकार किया है।[2] वहां शब्द तथा अर्थ का पृथक विचार नहीं किया गयाथा, इसलिए किसी-किसी के दोहरे उदाहरण भी किये गये। वामन ने शब्द औ अर्थ के इन गुणों का सांगोपांग विवेचन किया है। भामह ने शब्द के केवल तीन ही गुण -माधुर्य, ओज तथा प्रसाद- स्वीकार किये हैं। कुन्तक ने सामान्य और विशेष दो प्रकार के गुण स्वीकार किये हैं। कुन्तक के सामान्य गुण हैं -- औचित्य और सौभाग्य। विशेष गुण हैं-- माधुर्य, प्रसाद, लावण्य और अभिजात्य।

अग्निपुराण में शब्द के छ: गुण, अर्थ के छ: तथा शब्दार्थ के भी छ: गुण स्वीकार किये गये हैं। शब्दगुण हैं-- श्लेष, लालित्य, गांभीर्य, सुकुमारता, औदार्य और ओज।[3] अर्थ गुण हैं-- माधुर्य, संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढ़ि और सामयिकता।[4] शब्दार्थ या उभयगुण हैं-- प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य, प्राशस्त्य, पाक और राग।[5]

१- अर्थोव्यक्त: सूक्ष्मश्च। सूक्ष्मो भाव्यो वासनीयश्च -- का०सू०-- वामन।

२- श्लेष: प्रसाद: समता समाधि:, माधुर्यमोज: पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च, कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते ।।-- भरतमुनि.

३- 'श्लेषोलालित्यगाम्भीर्यसौकुमार्यमुदारता।
ओज: समासभूयस्त्वमेतत् पदादिषोचितम् ।।' --अग्निपुराण अ० ३४६। श्लोक ५ व १०.

४- 'माधुर्यसंविधान च कोमलत्वमुदारता। प्रौढ़ि:सामयिकत्वं च तद्भेदा: षाट्चकाशति ।।'
--अग्निपुराण - श्लोक २।

५- 'तस्य प्रसाद: सौभाग्यं यथासंख्य प्रशस्तता।
पाको राग इति प्राज्ञै: षट्प्रपंच विपंचिता: ।।'
-- अग्निपुराण- श्लोक १७-१९।

भोजराज ने तीन ही गुण स्वीकार किये हैं। वे हैं- बाह्य, आभ्यन्तर और वैशेषिक। वैशेषिक का अर्थ है--विशेष स्थितिवाला। इसके अन्तर्गत उन गुणों की गणना की जाती है, जो किसी विशेष परिस्थिति के कारण गुण मान लिये जाते हैं, अन्यथा दोष ही हैं। वामनादि द्वारा निरूपित दश गुणों के अतिरिक्त १३ गुण निम्न हैं-- उदात्तता, औचित्य, प्रेय, सुशब्दता, सौक्ष्म्य, गांभीर्य, विस्तार, संक्षेप, सम्मितत्व, भाविक, गति, उक्ति और प्रौढ़ि। गुण जब चारुत्व प्रवाह से अनुभूति प्रवाह की ओर पहुंचे तो इनकी संख्या तीन ही रह गयी। माधुर्य, ओज और प्रसाद। इनसे क्रमश: मन की दीप्ति, द्रुति और व्याप्ति होती है। पहले ये काव्य के धर्म अर्थात् शब्द और अर्थ के धर्म थे, अब रस के धर्म हो गये। सूखे ईंधन में अग्नि के सदृश जो गृहीता के हृदय में शीघ्र व्याप्त हो जाता है, वह प्रसाद गुण है।[1] ओज से जिस प्रकार दीप्ति तथा माधुर्य से द्रुति होती है, वैसे ही प्रसाद से व्यापकता। अन्त:करण की दो वृत्तियां हैं-- राग एवं द्वेष। माधुर्य का सम्बन्ध द्वेष से है। प्रसाद का सम्बन्ध किसी से नियत नहीं है। इसीलिए उभय स्थिति वाले गुण की कल्पना अनिवार्य थी। अग्निपुराण में प्रसाद गुण की गणना, जो उभयस्थिति वाले गुणों के अन्तर्गत की गयी है, वह इसी बात को ध्यान में रखकर की गई है। मम्मट ने वामनादि आचार्यों के मत का खण्डन करते हुए बताया है कि जो लोग यह कहते हैं कि 'काव्य शोभा-विधायक जो धर्म है, वे गुण हैं तथा उनकी शोभा को और अधिक बढ़ाने वाले धर्म अलंकार हैं।' उन विद्वानों का उपर्युक्त कथन उचित नहीं है।[2]

आचार्य आनन्दवर्धन का मत है कि गुण काव्य के धर्म हैं, काव्यांग अर्थात् शब्द, अर्थ आदि के नहीं।[3] इस प्रकार गुण अंगी का धर्म माना गया, अंग का धर्म नहीं। वामन के मत का यहां पर और स्पष्टीकरण हो जाता है। परन्तु अन्तर यह

१- 'शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव य:।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थिति:।'
— का०प्र० ८। सू०सं० ६४।

२- 'यदप्युक्तम्-काव्यशोभाया: कर्तारो धर्मागुणास्तदतिशयहेतवस्त्वलंकारा:।'
इति तदपि न युक्तम्। — का०प्र० ८। सू०सं० ८८ की वृत्ति पृ० २२४.

३- 'तमर्थमवलम्बन्ते ये ऽङ्गिनं ते गुणा: स्मृता:।
अंगाश्रितास्त्वलंकारा मन्तव्या: कटकादिवत्।।' --ध्वन्यालोक, आचार्य आनंदवर्धन।

है कि वामन काव्य की आत्मा रीति मानते हैं। अत: ये गुण रीति के धर्म हैं और काव्य शोभा को करने वाले हैं, जबकि आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट आदि आचार्यों के मत से ये गुण रस के धर्म हैं, क्योंकि रस अंगी है। मम्मट का स्पष्ट कथन है।[1]

मम्मटाचार्य ने तथा अन्य ध्वनिवादी आचार्यों ने दस गुण नहीं माने। वे केवल तीन गुण माधुर्य, ओज और प्रसाद मानते हैं। लगभग यही मत आचार्य विश्वनाथ ने भी स्वीकार किया है। जैसे प्राणि-शरीर में सारभूत आत्मतत्व के धर्म, शौर्य,औदार्य आदि गुण कहे गये हैं वैसे ही काव्य-शरीर में सारभूत रस-तत्त्व के धर्म माधुर्य, ओज आदि भी गुण कहे जाया करते हैं।[2]

मम्मटाचार्य की भांति करन कवि ने भी गुण के तीन भेदों को ही स्वीकार किया है--

अथगुनातालिका :-

अर्थ विक्त असलेव अरु फोल सु माध रुदार।
ओज मधुर्य प्रसाद पुन समता अरु सुकुमार ।। २७५ ।।

जदिप ये गुन गन सदा तीनों अंतरभूत।
जानत ओज प्रसाद अरु मधुर सुबुद्ध अहूत ।। २७६ ।।

-- करन कृत रस कल्लोल- पृ०सं०- २६.८--

ओज प्रसाद तथा माधुर्य के उदाहरण प्रस्तुत करते हुये करन ने लिखा है--

ओज जथा -

भत भंजन मंजन धरन उच्यत पलन प्रचंड।
कल दंडन दारुन दपन हिंदुराज भुजदंड ।। २७७ ।।

१- ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।। ८,६७ ।।
--काव्य प्रकाश: --मम्मट, ८म उल्लास।

२- रसस्यांगित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो यथा।
गुणाः माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा ।। ८,१ ।।
--साहित्यदर्पणे-- विश्वनाथ, अष्टम: परिच्छेद:
प्र. सं. ६४२।

प्रसाद जथा :-

सरस चंद सारद कमल कारद हीतविसेष ।
छवि छलकत चकचकत वलन ललकन मुन देषा ।। २७८ ।।

माधुर्य जथा :-

यही सुषान की सरसही वाहीं तई पिन नाह ।
दई न ही पय निरमई मई आन सस मोह ।। २७९ ।।

--करन कृत रस कल्लोल, पृ०सं०-२६.

-- रीति विवेचन --

'रीति' शब्द 'रींग' धातु से 'क्ति' प्रत्यय करने से बना है, जिसका अर्थ है-- गति, पद्धति, प्रणाली, मार्ग आदि। जिस प्रकार वाग्विकल्प अनेक हैं, उसी प्रकार वाणी के भी अनेक मार्ग हैं। प्रत्येक कवि अपने कथ्य को किसी न किसी विशिष्ट भंगिमा का आश्रय लेकर ही उपस्थित करता है। कवि की उस विशिष्ट शैली को 'रीति' नाम से अभिहित किया गया है। रीति के अनेक भेद हैं। उनका निरुपण करना ~~असम्भव~~ असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है।[1] भामह ने दो प्रकार के काव्यों का निर्देश किया है-- वैदर्भ और गौड़ीय। दण्डी ने कहा भी है कि उक्त दस गुण वैदर्भी रीति के प्राण हैं।[2] विश्वनाथ का कहना है कि पदों के मेल या संगठन को रीति कहते हैं। वह अंग संस्थान की भांति है अर्थात् शरीर में जैसे अंगों का सुगठन होता है वैसे काव्य-शरीर में शब्दों और अर्थों का भी संगठन होता है। यह काव्यात्मभूत रस, भाव आदि की उपकारक होती है।[3]

१- 'अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्मभेदः परस्परम् ।
तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं प्रतिकविस्थिताः ।।' -- काव्यादर्श ।

२- इति वैदर्भमार्गस्य प्राणाः दश गुणाः स्मृताः । -- काव्यादर्श ।

३- पदसंघटना रीतिरंगसंस्था - विशेषवत् ।
उपकर्त्री रसादीनाम् । -- साहित्यदर्पण- आचार्य विश्वनाथ ।
नवमः परिच्छेदः, पृ.सं. ६५८।

भोज ने तीन प्रकार की काव्योक्तियों में से स्वभावोक्ति और रसोक्ति का सम्बन्ध वैदर्भ-मार्ग से जोड़ा है और वक्रोक्ति का सम्बन्ध गौड़ी मार्ग से । आरम्भ में यह कल्पना देश भेद के आधार पर चली थी । जहां दोनों मार्ग रहेंगे, वहां मध्यम-मार्ग भी हो सकता है । इसी से रीतियां तीन मानी गयीं । वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली । इन रीतियों में समास के न्यूनाधिक्य से ही भेद का प्रतिपादन किया गया है । रीति के लिए कहीं-कहीं 'वृत्ति' नाम भी मिलता है । नाट्यशास्त्र में भी चार वृत्तियां-- कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी तथा भारती मानी गयी हैं ।[1] मम्मट ने भी इस रीति को वृत्ति की संज्ञा दी है । इनका सम्बन्ध विलास से है तथा रीतियों का सम्बन्ध वाणी से ।[2] उपनागरिकादि वृत्तियों का मुख्य सम्बन्ध अक्षर-संघटना से है और रीतियों का मुख्य सम्बन्ध समास- संघटना से । रीति, अलंकारों से भी भिन्न है । अलंकार तथा गुण-भेद की कल्पना भी चारुत्वभेद से ही की गयी है । चारुत्व दो प्रकार का माना जाता है-- स्वरूपमात्रनिष्ठ तथा संघटनाश्रित ।[3]

अलंकारों में सौंदर्य स्वरूपमात्रगत होता है, गुण में संघटना के आश्रित तथा इस प्रकार रीति की महत्ता गुण तथा अलंकार दोनों से अधिक है । इसी कारण रीति का सौंदर्य भी संघटनापर्यवसायी माना जाता है । अंगों का सुषम-संस्थान सौंदर्य वृद्धि करता है,[4] अतएव साधारण सौन्दर्य को शोभा और उच्चकोटि के सौन्दर्य को सुषमा कहते हैं ।[5] रीति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान् वाल्टर रैले ने जो कहा है कि--"लेखनी,

---

१- 'चतुर्विधाप्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाट्यप्रयोगत: ।
आवन्ती दाक्षिणात्या च पांचाली चौड्रमागधी ।।' --नाट्यशास्त्र.

२- 'वेषविन्यासक्रम: प्रवृत्ति: । विलासविन्यासक्रमोवृत्ति: । वचनविन्यासक्रमो रीति: ।'
--काव्य मीमांसा, पृ०-६.

३- 'द्विविधं चारुत्वम् स्वरूपमात्रनिष्ठं संघटनाश्रितं च ।' -- ध्वन्यालोक.

४- 'चतुर्विधाप्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाट्यप्रयोगत: ।
आवन्ती दाक्षिणात्या च पांचाली चौड्रमागधी ।' -- नाट्यशास्त्र.

५- 'वेषविन्यासक्रम: प्रवृत्ति: । विलासविन्यासक्रमोवृत्ति: । वचनविन्यासक्रमो रीति: ।'
-- काव्य मीमांसा, पृ०-६.

मानव प्रवृत्ति में जो कुछ भी भावाभिव्यंजक अथवा अत्यन्त तलस्पर्शी वस्तु है, उन सबका प्रतीक है।[1] यह ठीक है। केवल कलाओं ने ही लेखनी के प्रति आत्मसमर्पण नहीं किया प्रत्युत मनुष्यों ने भी, लेखनी के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है। लेखक के व्यक्तित्व का परिचय हमें उसकी लेखनी में मिलता है। व इनका स्वरूप जैसा आज है, वैसा कल नहीं हो सकता, किन्तु लेखनी व्यक्तित्व का स्थायी रूप है।[2]

'रीति' की संख्या :-

भामह के 'काव्यालंकार' में 'रीति' की सर्वप्रथम चर्चा की गयी है। इनके समय तक रीतियों की संख्या दो थी-- वैदर्भी तथा गौड़ी। बाणभट्ट के समय प्रचलित चार साहित्यिक पद्धतियों -- श्लेष, अर्थ, उत्प्रेक्षा, अक्षराडम्बर[3] -- में से केवल दो ही पद्धतियां शेष रह गयीं -- वैदर्भी और गौड़ी। बाण का गौड़ीय मार्ग अपने पुराने रूप में ही स्वीकृत हुआ, किन्तु उनकी दाक्षिणात्य पद्धति वैदर्भी के रूप में स्वीकृत हुई। भामह का विचार है कि वैदर्भी -रीति का अन्धानुपालन उसी प्रकार अनुचित है, जिस प्रकार गौड़ी रीति की निन्दा करना। उनके विचार से गौड़ी रीति की की अवहेलना करना प्राचीन अन्धपरिपाटी का पालन-मात्र है। हमें काव्य के वास्तविक गुणों पर अपनी दृष्टि रखनी चाहिए। वैदर्भी में यदि पुष्टार्थत्व नहीं है, तो वह सहृदयों का हृदयस्पर्श नहीं कर सकता,[4] इसी प्रकार यदि परम्परा द्वारा निन्दित गौड़ीय मार्ग, अर्थवत्ता, सालंकारता तथा न्याय्यता से पुष्ट हो, तो वह नितान्त शोभनीय है।[5] भामह के इस विचार से ज्ञात हुआ है कि वे किसी अन्धपरम्परा के मत

---

1. The pen, scratching on wax or paper, has become the symbol of all that is expressive, all that is intimate in human natu-re, not only arms and arts, but man himself has yielded to it - Walterraleigh : Style. Page No. 95.

2. ' Other gestures shift and change and flit, this is the ultimate and eduring revealation of personality. ---W. Raleigh Style. page No. 96.

3- 'श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्। उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्॥
-- हर्षचरित।

4- 'अपुष्टार्थमवक्रोक्ति प्रसन्नमृजुकोमलम्।
भिन्नं गेयमिवेदं तु केवलं श्रुतिपेशलम्॥' -- काव्यालंकार।

5- 'अलंकारवदग्राम्यम् अर्थ्यन्याय्यमनाकुलम्।
गौड़ीयमपि साधीय: वैदर्भमपि नान्यथा॥' -- काव्यालंकार।

नहीं थे। उनका विचार था कि काव्य के मूलतत्व जहां मिलें, उन्हें ही सत्काव्य कहना चाहिए।

दण्डी ने इन दोनों काव्य मार्गों की विस्तृत आलोचना की है, उनका वैदर्भ मार्ग, समस्त शोभनीय गुणों का आकार है, परन्तु अडम्बर से युक्त गौड़ीमार्ग, निकृष्ट मार्ग का ही प्रतिनिधित्व करता है। दण्डी के समय तक इन मार्गों का रूप सर्वथा निश्चित हो चुका था। एक मार्ग सौन्दर्य तथा सुकुमारता का व्यंजक होने से कवियों की प्रशंसा का आलम्बन बना हुआ था, तो दूसरा औद्धत्य तथा उग्रता का व्यंजक होने से नितान्त निकृष्ट माना जाता था। भामह तथा दण्डी किसी ने भी अभिधानों की समस्या नहीं सुलझाई। वामन ने ही इस रहस्य का प्रकाशन किया। देश की विशेषता से द्रव्यों में विशिष्ट गुण उत्पन्न होते हैं। काव्यों पर भी इसी प्रकार देश का प्रभाव पड़ता है। वैदर्भ और गौड़ीय मार्ग का नामकरण भी देश-विदेश के नाम पर भी आधारित है। उन देश के कवियों में उसका विशुद्धरूप दृष्टिगोचर होता है। कोई देश काव्यों का उपकार नहीं करता।[१]

वामन ने पांचाली नाम की नयी रीति की कल्पना कर इन रीतियों की संख्या तीन कर दीं। रुद्रट ने लाटीया नाम की नयी रीति स्वीकार की, जिससे इन रीतियों की संख्या चार हो गयीं। राजशेखर ने तीन ही रीतियां स्वीकार कीं। भोजराज, राजशेखर के ही अनुयायी हैं, किन्तु उन्होंने 'आवन्तिका और मागधी' दो नयी रीतियों की कल्पना की है। साहित्यदर्पणकार ने चार ही रीतियों का विवेचन किया है।[२]

<u>गौड़ी, लाटी, पांचाली तथा वैदर्भी रीतियों का विवेचन :-</u>

<u>वैदर्भी</u>:-- "वैदर्भी" वह रीति है जिसे माधुर्य के अभिव्यंजक वर्णों से पूर्ण, असमस्त, अथवा स्वल्प समासयुक्त ललित रचना कहा गया है।[३]

१- 'न पुनर्देशाः किंचिद् उपक्रियते काव्यानाम् ।।' -- काव्यालंकार सूत्र.

२- सा पुनः स्याच्चतुर्विधा ।। १ ।।
वैदर्भी चाथ गौडी च पान्चाली लाटिका तथा। -- साहित्य दर्पण आ. विश्वनाथ नवम परिच्छेद, पृ. सं. ६५८।

३- माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका ।। २ ।।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते। -- साहित्य दर्पण आ. विश्वनाथ नवम परिच्छेद, पृ. सं. - ६५[illegible]

वैदर्भी के सम्बन्ध में (काव्यालंकार के रचयिता) आचार्य रुद्रट का यह मत है-- "वैदर्भी रीति अथवा ललित पद रचना इस प्रकार की हुआ करती है जिसमें समस्त पदावली का प्रयोग नहीं हुआ करता, जहां एकआध पद समस्त हो जांय तो कोई हानि नहीं, जिसमें श्लेषादि दसों शब्दगुण विराजमान रहा करते हैं, जिसमें द्वितीय वर्ग अर्थात् चवर्ग के वर्णों का बाहुल्य सुन्दर लगा करता है और जिसमें ऐसे वर्ण रहा करते हैं जो कि स्वल्प प्रयत्न से उच्चरित हो सकते हैं।"[1]

"वैदर्भी" के सम्बन्ध में महाकवि श्रीहर्ष की यह सूक्ति बड़ी सुन्दर है--

धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।
इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरली करोति।।

-- (नैषधीयचरित ३.११६)

विदर्भादि देशों में प्रचलित रीति वैदर्भी है। यह वैदर्भी रीति समग्र गुणों से युक्त होती है। यह दोष रहित, वीणा के स्वरों के समान मधुर युक्त रस की विशेषता से सम्बन्धित है जो कि शब्द और अर्थ के चमत्कार से भिन्न है।[2]

आचार्य राजशेखर ने उसके सम्बन्ध में लिखा है--"वैदर्भी रीति से कर्ण-प्रिय माधुर्य गुण का प्रस्रवण होता है।"[3]

१- असमस्तैक समस्ता युक्ता दशभिर्गुणैश्च वैदर्भी।
वर्ग द्वितीयबहुला स्वल्पप्राणाक्षरा च सुविधेया।।

---काव्यालंकार - आ०रुद्रट.

(यहां युक्ता दशभिर्गुणैश्च में दस गुणों का अभिप्राय श्लेष है।)

२- अस्पृष्टा दोषमात्राभिः समग्रगुणगुंफिता।
विपंचीस्वर सौभाग्य वैदर्भी रीति रिष्यते।।
सति वक्तरि सत्यर्थे सति शब्दानुशासने।
अस्ति तन्न विना येन परिस्रवति वाङ्मधु।।

--काव्यशास्त्र - भगीरथ मिश्र.

३- "वाग्वैदर्भीमधुरिमगुणं स्यन्दते श्रोत्रहृद्यम।"

--बाल रामायण--राजशेखर.

दण्डी ने वैदर्भी रीति का स्वरूप निरूपण करते हुये लिखा है-- वैदर्भी शैली के प्राणभूत गुण दस होते हैं-- श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थ व्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति तथा समाधि।[1]

वामन वैदर्भी को समग्रगुणा मानते हैं।

"समग्रगुणा वैदर्भी।" -- १।२।११.

गौड़ी रीति :-

वैदर्भी के बाद गौड़ी रीति की वर्णन की जाती है। वामन ने उसके स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-- गौड़ी रीति में ओज,कान्ति,गुणों की प्रधानता रहती है। इसमें समास-बहुलता और उद्भट पदों की योजना पाई जाती है।[2]

दण्डी ने गौड़ी का स्वतन्त्र निर्देश नहीं किया है। उसने वैदर्भी की स्वरूप मीमांसा करके अन्त में लिखा है- इनके विपरीत गुण गौड़ी रीति में मिलते हैं।[3] इससे प्रकट है कि वह गौड़ी को निकृष्ट कोटि की रीति मानते थे।

विश्वनाथ ने गौड़ी की परिभाषा इस प्रकार दी है-- ओजपूर्ण प्रधान प्रकाशक वर्णों से युक्त समास-बहुला उत्कृष्ट रचना शैली गौड़ी कहलाती है।[4]

गौड़ी के सम्बन्ध में आलंकारिक पुरुषोत्तम का यह मत है-- गौड़ी रीति ऐसी हुआ करती है जिसमें समास-बाहुल्य रहा करता है, जिसमें ऐसे वर्णों का प्राचुर्य हुआ करता है जो महाप्राण कहे जाया करते हैं,जिसमें अनुप्रास-वैशिष्ट्य आवश्यक है और

१- श्लेष: प्रसाद: समता, माधुर्य सुकुमारता
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोज: कान्ति समाधय:
इति वैदर्भ मार्गस्य प्राणा: दशगुणा:स्मृता:
एषां विपर्यय: प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि। --- काव्यादर्श १।४१-४२.

२- "समस्तात्युद्भटपदामोज: कान्तिगुणान्विताम्
गौड़ीमिति गायन्ति रीतिं विचक्षणा:।" --- वामन.

३- "एषां विपर्यय: प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि।" --- आचार्य दण्डी.

४- "ओज: प्रकाशकै:वर्णै: बन्ध: आडम्बर: पुन:।
समासबहुला गौडीवर्णै: शेषै: पुनर्द्वयो: ।।" --- साहित्यदर्पण- विश्वनाथ,
नवम परिच्छेद', पृ.सं. ६६०।

जिसमें वाक्यों का प्रयोग कम हुआ करता है।[1]

पांचाली रीति :-

वामन ने पांचाली का स्वरूप इस प्रकार निरुपित किया है-- पांचाली रीति में माधुर्य और सौकुमार्य का सद्भाव रहता है।[2]

राजशेखर के नाम से एक पद मिलता है। उसकी प्रथम पंक्ति है-- जिस शैली में शब्द और अर्थ का समान गुम्फन पाया जाता है, उसे पांचाली रीति कहते हैं।[3]

विश्वनाथ ने पांचाली की परिभाषा इस प्रकार दी है-- समासयुक्त पदों से विशिष्ट रचना शैली को पांचाली कहते हैं।[4]

पांचाली के सम्बन्ध में आलंकारिक भोजराज का यह मत है-- 'पांचाली रीति वह रीति है जिसमें पांच या छः पदों से अधिक पदवाले समास नहीं प्रयुक्त किये जाया करते, जिसमें ओज और कान्ति के गुण विराजमान रहा करते हैं और जो कि माधुर्य के अभिव्यंजक किंवा कोमल वर्णों से पूर्ण पद रचना हुआ करती है।[5]

१- 'बहुतर समासयुक्ता सुमहाप्राणाक्षरा च गौडीया।
   रीतिरनुप्रासमहिमपरतन्त्रा स्तोकवाक्या च ॥' — पुरुषोत्तम.

२- 'माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पांचाली।' -- वामन - १।२।१३.

३- 'शब्दार्थयोः समोगुम्फः पांचाली रीतिरिष्यते।' -- राजशेखर.

४- समस्त पंचषटपदो बन्धः पांचालिका मता ॥'४॥ —साहित्यदर्पण-विश्वनाथ,
   नवम: परिच्छेद:, पृ० सं० - ६६१।

५- 'समस्तपंचषपदामोजः कान्तिसमन्विताम्।
   मधुरां सुकुमारां च पंचालीं कवयो विदुः ॥' —भोजराज.

लाटी रीति :-

साहित्य दर्पणकार ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है-- वैदर्भी और पांचाली के मध्य की रीति को लाटी रीति कहते हैं।[१] किसी काव्याचार्य के मत में 'लाटी' का स्वरूप यह है-- 'लाटी रीति ऐसी हुआ करती है जिसमें कोमल पदों के समास का सौन्दर्य देखने योग्य हुआ करता है, जिसमें संयुक्त वर्णों का प्रयोग स्वल्पमात्रा में ही हुआ करता है और जिसमें प्रकृतोपयुक्त विशेषणों से स्मरणीय वर्ण्यवस्तु की एक अपनी ही छटा छिटका करती है।[२]

करन ने भी रुद्रट तथा साहित्य दर्पणकार की भांति चार प्रकार की रीतियां बताई हैं, केवल उनके क्रम में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। करन ने रीतियों के केवल नाम निर्देश किये हैं उनकी परिभाषा नहीं दी है।

गौड़ी लाटी होत अरु पंचाली सुखदाइ।
वैदर्भी ए जानकी चारी रीत समाइ ।। २८१ ।।

रीत चारहू देस की सो समास आधीन ।
भाषा में पावे नहीं बरनी सुमत नवीन ।। २८२ ।।[३]

अत: करन के अनुसार रीति के चार प्रकार हैं-- गौड़ी, लाटी, पंचाली तथा वैदर्भी।

वृत्ति विवेचन :-

शब्द रीतियों एवं वृत्तियों में परस्पर बड़ा साम्य है। यही कारण है कि मम्मट आदि आचार्यों ने दोनों में कोई भेद नहीं माना है।

इसके विपरीत कुछ आचार्यों ने दोनों को अलग-अलग माना है। इनका कहना है कि रीति के अन्तर्गत संघटना और वर्ण-योजना दो तत्त्व माने जाते हैं। इनमें

१- लाटी तु रीतिर्वैदर्भीपाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता। --साहित्यदर्पण- विश्वनाथ, नवम परिच्छेद, प्र. सं. - ६६१।

२- 'मृदुपदसमाससुभगा युक्तैर्वर्णैर्न चातिभूयिष्ठा।
उचित विशेषणपूरित वस्तुन्यासा भवेल्लाटी ।।'-- अरिचदास,

३. ह. ग्र. रस कल्लोल, कवि करन, प्र. सं. २६।

वृत्ति के अन्तर्गत केवल वर्ण-योजना भर रहती है। अतः रीति को वृत्तिका पर्यायवाची नहीं मान सकते हैं।

काव्यशास्त्र में वृत्तियां दो प्रकार की होती हैं-- १- अर्थ वृत्तियां या नाट्य वृत्तियां- इनके अन्तर्गत भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी का निरूपण आता है।

२- काव्य वृत्तियां या वर्ण शब्द वृत्तियां -- उपनागरिका परुषा और कोमला नामक वृत्तियों की चर्चा आती है। `उपनागरिका` वृत्ति वह वृत्ति है जिसमें माधुर्य के अभिव्यंजक वर्ण अथवा व्यंजन हों और `परुषा`। वह जो ओज के प्रकाशक वर्णों वाली कही जाती है।[1]

दूसरे अर्थात् माधुर्य और ओज के प्रकाशक वर्णों के अतिरिक्त वर्णों वाली जो वृत्ति है वह `कोमला` वृत्ति है।[2]

ये ही तीनों वृत्तियां वामन इत्यादि प्राचीन आलंकारिकों के मत में वैदर्भी प्रभृति तीन रीतियां हैं। इन्हीं तीनों वृत्तियों को वामन आदि आचार्य (क्रमशः) वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली नाम की तीन रीतियां माना करते हैं।[3]

वृत्ति शब्द `वृत` वर्तने धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से बना है। वर्तन का अर्थ जीवन होता है। वृत्ति का उल्लेख भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में किया है। बाद में आचार्यों ने काव्य में भी वृत्तियों का विचार किया है।

अभिनव गुप्त के मतानुसार समस्त संसार प्रमुख चार वृत्तियों से व्याप्त है।[4]

आनन्दवर्धनाचार्य और धनन्जय ने भी वृत्ति को व्यापार कहा है।[5]

१- माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते।
ओजः प्रकाशकैस्तैस्तु परुषा। काव्य प्रकाश:, प्र.सं. ४०

२- उभयत्रापि प्रागुदाहृतम्। कोमला परैः ।। ८० ।।

३- केषांचिदेता वैदर्भीप्रमुखा रीतयो मताः।
एतास्तिस्त्रो वृत्तयः वामनादीनां मते वैदर्भी-गौडी-पांचाल्याख्या रीतयो मताः।
-- काव्य प्रकाश:, प्र.सं. ४१

४- `आस्तां काव्यार्थः, सर्वो हि संसारः वृत्तिचतुष्केन व्याप्तः।` --अभिनव भारती,

५- `व्यवहारो हि वृत्तिरित्युच्यते` `तद् व्यापारात्मिका वृत्तिः।` --ध्वन्यालोक- ३।३३,

भरत मुनि ने लिखा है--

"सर्वेषामेव काव्यानां वृत्त्यो मातृका: स्मृता:" -- ना०शा० २०।४.

"एवमेते बुधैर्ज्ञेया वृत्त्यो नाट्यमातर:" -- ना०शा० २२।६४.

नाट्य दर्पणकार आचार्य रामचन्द्र ने अभिनवगुप्त के अनुकरण पर वृत्तियों के मातृत्व को स्वीकार किया है।

नाटक में भरत मुनि ने चार प्रकार की वृत्तियां मानी हैं-- भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी। यह चारों वृत्तियां दो भागों में विभक्त की गई हैं। शब्द-वृत्ति अर्थ-वृत्ति। शब्द-वृत्ति में भारती वृत्ति आती है और अर्थ-वृत्ति में अन्य तीन वृत्तियां आती हैं।

भारती वृत्ति के चार भेद बताए गए हैं-- प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख।

सात्वती वृत्ति चार प्रकार की होती है--

१- उत्थापक २- परिवर्तक ३- संलापक ४- संघातक

कैशिकी वृत्ति-चार भेद हैं--

१- नर्म २- नर्म स्फूर्ज ३- नर्म स्फोट ४- नर्मगर्भ।

आरभटी वृत्ति चार प्रकार की होती है--

१- संक्षिप्तक २- अवपातक ३- वस्तु स्थापन ४- संफेट।

नाटक में प्रमुख रूप से तो चार वृत्तियों का ही उल्लेख है, परन्तु कतिपय आचार्यों ने इस संख्या के विषय में विरोध किया है। वृत्ति संख्या के सम्बन्ध में अन्य तीन मत प्रमुख हैं-- अभिनवगुप्त ने इनका उल्लेख इस प्रकार किया है।[१]

इस प्रकार वृत्ति-परिचय देते हुए अभिनव गुप्त ने लिखा है कि कहीं दो वृत्तियाँ, कहीं तीन और कहीं पांच वृत्तियों का उल्लेख भी मिलता है।

१- "द्वित्रा: पंचेति निराकरणाय चतस्र इत्युक्ता।" --अभिनव भारती टीका, पृष्ठ०-२७१.

नाटक में तीन वृत्तियां मानने वाले प्रमुख आचार्य अलंकारवादी उद्भट हैं। उनके अनुसार वृत्तियां निम्नवत् हैं --

१- न्यायवृत्ति २- अन्याय वृत्ति ३- फलसंवित्ति। नाटक में पांच वृत्तियां मानने वाले आचार्यों में अभिनवगुप्त विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने शकली गर्भ का एक नाम और उद्धृत किया है।

शकली गर्भ ने भरत मुनि द्वारा मान्य चारों वृत्तियां स्वीकार कीं। इसके अतिरिक्त आत्मसंवित्ति नामक एक पांचवीं वृत्ति भी प्रस्तुत की है। अभिनवगुप्त ने इन सभी वृत्तियों का विरोध कर भरत मुनि द्वारा निर्देशित वृत्तियों को ही नाटक के उपयुक्त सिद्ध किया है।

काव्य शास्त्र में उपनागरिका, परुषा और कोमला नामक वृत्तियों को काव्य वृत्तियों के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। इन्हीं तीनों वृत्तियों को वामन आदि आचार्य (क्रमशः) वैदर्भी, गौडी और पान्चाली नाम की तीन रीतियां माना करते हैं। करन कवि ने भी वामन आदि आचार्यों का अनुसरण करते हुये परुषा, कोमला तथा उपनागर वृत्तियों को स्वीकार किया है और काव्यशास्त्र के अनुसार क्रमशः ओज, प्रसाद, माधुर्य नाम के तीनों गुणों को स्वीकार किया है।

याहि परुषा कोमला उपनागर का होइ।
उदाहरन की भेन मे क्रम ते जानहु सोइ ।। २८० ।।

--करन कवि कृत रस कल्लोल, पृ०सं०- २६.

भारती वृत्ति :-

भरत मुनि ने भारती वृत्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है।

"या वाग्प्रधाना पुरुष-प्रयोज्या,
स्त्री वर्जिता संस्कृतवाक्ययुक्ता।
स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता,
सा भारती नाम भवेत्तु वृत्ति ।।"

----ना०शा०- २२।२५

सात्वती वृत्ति :-

"या सात्वतेनेह गुणेन युक्ता,
न्यायेन वृत्तेन समन्विता च ।
हर्षोत्कटा संहृतशोकभावा,
सा सात्वती नाम भवेत्तु वृत्तिः ।

-- नाट्यशास्त्र - २२। ३८.

कैशिकी वृत्ति :-

"या श्लक्ष्णनैपथ्यविशेषचित्रा,
स्त्रीसंयुता या बहु-नृत्तगीता ।
कामोपभोग प्रभवाप चारा,
तां कैशिकी वृत्तिमुदाहरन्ति ।।"

-- नाट्यशास्त्र - २२. ४७.

आरभटी वृत्तिः-

"प्रस्तावपातप्लुतलंघितानि,
चान्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम् ।
चित्राणि युक्तानि च यत्र नित्यं,
तां तादृशीमारभटीं वदन्ति ।।"

-- नाट्यशास्त्र - २२।५७.

----- :o: -----

-- : सप्तम् अध्याय : --

अलंकार विवेचन

अलंकार लक्षण-- काव्य शास्त्रीय विभाजन में वामन द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय अलंकार सम्प्रदाय है।

अलंकार सम्प्रदाय के प्रधान प्रवर्तक `वामन` ने सौन्दर्यमलंकार:` कहकर अलंकार को सौंदर्य का पर्यायवाची माना है। `अलंकार द्वारा ही काव्य ग्राह्य होता है और सौंदर्य ही अलंकार है[1]।`

भामह से पूर्व अलंकार शब्द काव्य के बाह्य और आन्तरिक दोनों रूपों को अलंकृत करनेवाले सभी उपादानों के लिए प्रयुक्त होता था। अत:साहित्य शास्त्र के स्थान पर भी अलंकारशास्त्र शब्द प्रचलित था किन्तु बाद में काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में आचार्यों में मतभेद होने पर अनेक सम्प्रदायों का उदय हुआ। अलंकारशास्त्र के स्थान पर साहित्य शास्त्र शब्द प्रयुक्त किया गया। अलंकार के व्यापक अर्थ का तिरोभाव हो गया। वह अपने संकुचित अर्थ में काव्य के अनित्य धर्म के रूप में ग्रहण किया गया किन्तु अलंकारवादी आचार्यों ने काव्य में इनके महत्व को स्थिर करते हुए इनका स्वरूप निरूपण किया है --`शब्द और अर्थ का वैचित्र्य ही अलंकार है।[2]. `अलंकार काव्य को सौन्दर्य प्रदान करने ~~करने~~ वाले धर्म हैं।[3].

सभी विद्वान् अलंकारवादी थे। अत:अलंकार से इनका तात्पर्य काव्य के बाह्य-रूप को अलंकृत करने वाले तत्व से ही नहीं है बल्कि रस, गुण आदि काव्य की अन्तरात्मा को पुष्ट करनेवाले सभी तथ्यों का विकास इन्होंने अलंकार के द्वारा ही मानकर काव्य से अलंकार का ~~न~~ समवाय सम्बन्ध स्थिर किया है। इसे वे काव्य का स्थिर धर्म मानते हैं। ध्वनिवादी आचार्यों ने अलंकार को रस,भाव आदि के सहायक उपादान के रूप में काव्य का अस्थिर धर्म माना है। वे अलंकार का कार्य काव्य को सुसज्जित करना मात्र मानते हैं।

१- वामन-`काव्यं ग्राह्यमलंकारात् सौन्दर्यमलंकार: ।`
२- भामह-`वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृति: ।`
३- दण्डी-`काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते ।`
   रुद्रट-`अभिधानप्रकारविशेषा एवं चालंकारा: ।`

'अलंकार काव्य-शोभा को बढ़ाने वाले रस, भाव आदि के उत्कर्ष में सहायक शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं। अंगद आदि आभूषणों के समान ही ये अस्थिर धर्म भी काव्य के आभूषण या अलंकार कहलाते हैं।'[1] 'भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है।' आचार्य शुक्लजी ने अलंकार की परिभाषा रसवादी आचार्यों के सादृश्य पर प्रस्तुत की है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि ध्वनिवादी और रसवादी आचार्यों के समान शुक्लजी भी अलंकारों को काव्य के अस्थिर धर्म मानते हैं। परिभाषा में 'कभी-कभी' शब्द का प्रयोग इसी ओर संकेत कर रहा है।

अलंकार वाणी के विभूषण हैं। सामान्य बात अलंकारों से विभूषित होकर एक विशेष मनोहरता से सम्पन्न हो जाती है। अत:अलंकार साधारण कथन न होकर चमत्कारपूर्ण उक्ति है। अलंकार कथन की ललित भंगिमा है। जिस उक्ति में कोई बांकपन मिलता है, वही उक्ति अलंकार है।

आचार्यों ने कई प्रकार के अलंकारों के लक्षण दिये हैं जो तर्क-वितर्क से शून्य नहीं कहे जा सकते। ध्वनिकार ने लिखा है कि वाग्विकल्प-- कहने के निराले ढंग अनन्त हैं और उनके प्रकार ही अलंकार[2] हैं। रुद्रट ने भी यही कहा है-- 'अभिधान के- कथन के प्रकार विशेष अर्थात् कवि प्रतिभा से प्रादुर्भूत कथन विशेष ही अलंकार[3] है। इनसे कुन्तक का यह कथन ही पुष्ट होता है कि विदग्धों के कहने के ढंगही वक्रोक्ति है और वही अलंकार[4] है। आचार्य वामन कहते हैं कि अलंकार के कारण ही काव्य ग्राह्य उपादेय है और वह अलंकार सौन्दर्य[5] है।

१- 'शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा:शोभातिशायिन:।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ।।' -- साहित्य दर्पण,विश्वनाथ, पृष्ठ संख्या- ६६४.

२- अनन्ता हि वाग्विकल्पा:तत्प्रकारा एवं चालंकारा:। --ध्वन्यालोक, ३-५.

३- अभिधानप्रकार विशेषा एव चालंकारा:। अलंकार सर्वस्व.

४- उभावेतावलंकार्यौ तय:पुनरलंकृति:।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणिति विरुच्यते। वक्रोक्तिजीवित, आ० वामन.

५- काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौन्दर्यमलंकार:। काव्यालंकार सूत्र.

आचार्य दण्डी ने काव्य के शोभाकारक धर्मों को अलंकार कहा है [1]। शोभाधायक धर्म गुण भी हैं। उनको अलंकार मानना उचित नहीं। क्योंकि गुण और अलंकार यद्यपि काव्योत्कर्ष-विधायक हैं, तथापि उनके धर्म भिन्न हैं। दण्डी के कथानुसार 'गुण काव्य के प्राण हैं।' वामन के मत से गुण काव्य में काव्यत्व लाने वाला धर्म है और अलंकार काव्य को उत्कृष्ट बनानेवाला धर्म [2]। विश्वनाथ ने भी यही कहा है कि शब्द और अर्थ के जो शोभातिशायी अर्थात् सौन्दर्य की विभूति के बढ़ाने वाले धर्म हैं वे ही अलंकार [3] हैं।' गुणों से काव्य में काव्यत्व आता है और अलंकार से काव्य की श्रीवृद्धि होती है। ध्वनिवादी, काव्य में अलंकारों की उपयोगिता काव्य के वाच्यवाचक -रूप अंगों की शोभावर्धकता के ही कारण कहा लोचनकार ने स्पष्ट कहा है-- [4]।

वस्तुत: अलंकार की व्युत्पत्ति अलम् धातु से हुई जिसका अर्थ है आभूषण। ये भूषित करने वाले अलंकार शब्द- अर्थ दोनों में ही होते हैं।

शब्दों के वैचित्र्य द्वारा काव्य को अलंकृत करने वाले शब्दालंकार कहलाते हैं। [5] जो शब्द-अर्थ गाम्भीर्य के प्रदर्शक होते हैं वे अर्थालंकार कहलाते हैं। [6]

१- काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते। काव्यादर्श.

२- काव्यशोभाया: कर्तारो गुणा: तदतिशयहेतवस्त्वलंकारा:। -- का०अलं०सूत्र.

३- शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन:।
--साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, दशम:परिच्छेद:, पृ०सं० ६६२.

४- वाच्यवाचकलक्षणान्यङ्गानि ये पुन: (अवलम्बन्ते) तदाश्रितास्त्वलंकारा: मन्तव्या: कटकादिवत्।' --- --ध्वन्यालोक लोचन - २-६.

५-'ये व्युत्पत्त्यादिना शब्दमलंकर्तुमिहक्षमा: शब्दालंकार संज्ञास्ते।'
--राजा भोज (सरस्वती कंठाभरण)

६-'अलमर्थमलंकर्तुं यद्व्युत्पत्त्यादि वर्त्मना।
ज्ञेया जात्यादय: प्राज्ञैस्ते थालंकारसंज्ञया।।'

अग्नि पुराण में रस के साथ ही अर्थालंकार की महत्ता बतलाई गयी है[1]।

इन अलंकारों का समावेश काव्य में कवि अपनी प्रतिभा द्वारा करता है। अत्यधिक प्रतिभावान कवियों के काव्य में अलंकार स्वभावत: ही स्थान बना लेते हैं। इसके लिए प्रयास नहीं करते--

"अलंकाराणि हि निरुप्यमाणदुर्घटान्यपि रससमाहित चेतस:
प्रतिभानवत: कवे: अहं पूर्विकया परापतन्ति ।"

किन्तु रस रहित काव्य में अलंकार शोभा नहीं देते--"तथाहि अचेतनं शवशरीरं कुण्डलाद्युपेतमपि न भाति अलंकार्यस्याभावात् ।"

मम्मटाचार्य ने अलंकारों को इस प्रकार महत्ता प्रदान की है।[2]

चन्द्रालोक के जयदेव ने भी इनकी महत्ता प्रतिपादित की है। मम्मट के नीरस काव्यों में अलंकार प्रयोग वाली बात का खण्डन किया--[3]

आचार्य शुक्लजी लिखते हैं ---

"अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु योजना के रूप में हो (जैसे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि) चाहे वाक्य वक्रता के रूप में (जैसे अप्रस्तुत प्रशंसा, परिसंख्या, व्याज-स्तुति आदि) चाहे वर्ण विन्यास के रूप में (जैसे अनुप्रास में) लाये जाते हैं वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष साधन के लिए ही होते हैं। मुख के वर्णन में जो कमल चन्द्र आदि के सामने रखे जाते हैं। वह इसलिये कि जिनमें इनकी वर्ण रुचिरता, कोमलता, दीप्ति आदि के योग से सौन्दर्य की भावना और बढ़े।"

१- अर्थालंकार रहिता विधवेव भारती।" -- अग्नि पुराण, पृ. १८६।

२- "उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोप माद्य: ॥"
--- काव्य प्रकाश ८।६७ --मम्मटाचार्य.

३- "अंगीकरोति य:काव्यं शब्दार्थं वनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ॥"
--- चन्द्रालोक १।८ -- जयदेव.

काव्य में रस संचार हेतु रमणीयता को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अतः चमत्कार के स्थान पर रमणीयता को ही रामचन्द्र शुक्ल भी आवश्यक मानते हैं। इसमें शब्द कौतुक व अलंकार सामग्री की विलक्षणता के स्थान पर भाव रूप क्रिया या गुण का उत्कर्ष करने की शक्ति रहती है।[1]

इस प्रकार अलंकारों की यह सहज रमणीयता ही रस की अनुभूति तीव्र करने में सहायक होती है। अतः अलंकारों द्वारा काव्यगत अर्थ का सौन्दर्य मानव की चित्त-वृत्तियों को प्रभावित कर भाव की चरम सीमा पर पहुंच जाता है। कवि की भावनाओं की अभिव्यक्ति इस माध्यम से पाठक के हृदय में तीव्र रसानुभूति उत्पन्न कर देती है।

भाव, रस, गुण आदि के उत्कर्ष के साधन `अलंकार` कहलाते हैं। अलंकार काव्य के बाह्यांग हैं, और रस, भाव आदि आत्मा। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर निष्प्राण है उसी प्रकार रस के बिना काव्य। अलंकार, रस, भाव आदि की अनुभूति में सहायक होकर काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं, परन्तु उसका स्थान नहीं ले सकते हैं। केशव के विचार में जिस प्रकार कामिनी की शोभा अलंकारों के बिना नहीं होती उसी प्रकार काव्य भी अलंकारों के बिना रमणीय नहीं होता।[2] केशव ने `रसिक प्रिया` में काव्य के लिए रस के सर्वोपरि महत्व को भी तो माना है।[3] कवि करन ने भी `बिहारी सतसई की टीका` में रस के सर्वोपरि महत्व को माना है।

१- `भावानुभाव में वृद्धि करने के गुण का नाम ही अलंकार की रमणीयता है।`
--- अलंकार विधान- पृ० १६८. गोस्वामी तुलसीदास.

२- जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त।। --कवि प्रिया, पृ० ५, छं० १.

३- ज्यों बिनु डीठ न शोभिये, लोचन लोल विशाल।
त्यों ही केशव सकल कवि, बिन बानी न रसाल।।
तातें रुचि सुचि सोचि पचि, कीजे सरस कवित्त।
केशव स्याम सुजान को, सुनत होइ बश चित्त।।

---रसिक प्रिया -पृ०१, छं० १३-१४.

केशव ने अलंकार के साधारण अथवा सामान्य तथा विशिष्ट दो प्रकार माने हैं। वे इन दोनों की न तो परिभाषा देते हैं और न व्याख्या ही करते हैं। केवल इसे परम्परागत मान्यता के रूप में ही ग्रहण कर लेते हैं।[1] सामान्य अलंकार के चार भेद किये गये हैं ---

१- वर्ण   ३- भू श्री
२- वर्ण्य   ४- राज श्री[2]

करम ने ऐसा विभाजन कहीं भी नहीं किया है। केशव ने `कविप्रिया` में विशिष्टालंकार-वर्णन नवें प्रभाव से लेकर सोलहवें प्रभाव तक विशिष्टालंकारों या विशेषालंकारों का विवेचन किया है जिसमें शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों ही सम्मिलित हैं। परन्तु उन्होंने इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। केशव ने विशेषालंकारों की संख्या ३७ मानी है। इनके नाम इस प्रकार हैं --- १- स्वभाव (स्वभावोक्ति), २- विभावना, ३- हेतु, ४- विरोध, ५- विशेष, ६- उत्प्रेक्षा, ७- आक्षेप, ८- क्रम, ९- गणना, १०- आशिष, ११- प्रेमा, १२- श्लेष (नियम और विरोधी), १३- सूक्ष्म, १४- लेश, १५- निदर्शना, १६- ऊर्जस्व, १७- रसवत् , १८- अर्थान्तर न्यास, १९- व्यतिरेक, २०- अपह्नुति, २१- उक्ति (वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति और सहोक्ति), २२- व्याज स्तुति, २३- निन्दा स्तुति, २४- अमित, २५- पर्यायोक्ति, २६- युक्त, २७- समाहित, २८- सुसिद्ध, २९- प्रसिद्ध, ३०- विपरीत, ३१- रूपक, ३२- दीपक, ३३- प्रहेलिका, ३४- परवृत्त, ३५- उपमा, ३६- यमक, तथा ३७- चित्रालंकार।[3] मुख्य अलंकार यद्यपि ३७ ही माने गए हैं पर अवान्तर भेदों से

१- कविन कहे कवितान के अलंकार द्वै रूप।
एक कहैं साधारणै, एक विशिष्ट सरूप ।। --- कवि प्रिया - पृ० ५, छं० २.

२- सामान्यालंकार को चारि प्रकार प्रकाश।
वर्ण वर्ण्य, भू-राज श्री, भूषण केशवदास ।।---कवि प्रिया - पृ० ५, छं० ३.

३- जानि स्वभाव, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष।
उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम,गणना, आशिष, लेष ।। १ ।।
प्रेमा, श्लेष,समेद है नियम विरोधी मान।
सूक्ष्म, लेश,निदर्शना, ऊर्जस्वा पुनि जान ।। २ ।।
रस,अर्थान्तर न्यास है, भेद सहित व्यतिरेक।
फेरि,अपह्नुति, उक्ति है, वक्रोक्ति सविवेक ।। ३ ।।

.... शेष अगले पृष्ठ पर

उनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। करन ने उपर्युक्त अलंकारों का स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया है।

करन के समय तक काव्य चिन्तन की लगभग तीन-चार शताब्दियां बीत चुकी थीं और इस बीच चार प्रमुख आचार्य आ चुके थे दण्डी, भामह, उद्भट तथा वामन। इन आचार्यों ने अलंकार सम्बन्धी जो चिन्तन प्रस्तुत किया उनके अध्ययन से विदित होता है कि वामन तक अलंकारों की संख्या ५२ हो चुकी थी। ये अलंकार निम्नलिखित हैं---

१- अतिशयोक्ति
२- अनन्वय
३- अनुप्रास
४- अपह्नुति
५- अप्रस्तुत प्रशंसा
६- अर्थान्तर न्यास
७- आक्षेप
८- आवृत्ति
९- आशी
१०- उत्प्रेक्षा
११- उत्प्रेक्षावयव
१२- उदात्त

१३- उपमा
१४- उपमा रूपक
१५- उपमेयोपमा
१६- ऊर्जस्वि
१७- चित्र
१८- काव्यलिंग
१९- क्रम (यथासंख्य)
२०- छेकानुप्रास
२१- तुल्ययोगिता
२२- दीपक
२३- दृष्टान्त
२४- निदर्शना

२५- परिवृत्ति
२६- पर्यायोक्ति
२७- पुनरुक्तवदाभास
२८- प्रतिवस्तूपमा
२९- प्रेय
३०- भाविक
३१- यमक
३२- रसवत्
३३- रूपक
३४- लाटानुप्रास
३५- लेश
३६- वक्रोक्ति

३७-विभावना
३८-विरोध
३९-विशेषोक्ति - वृत्युनुप्रास- (अनुप्रास में)
४०-व्यतिरेक
४१-व्याज स्तुति
४२-व्याजोक्ति
४३-श्लेष
४४-संसृष्टि
४५-संसृष्टि
४६-समासोक्ति

अन्योक्ति, व्यधिकरन है, सुविशेषोक्ति भाषि।
फिरि सहोक्ति को कहत है, क्रम ही सों अभिलाषि।। ४।।

व्याज स्तुति निंदा कहै, पुनि निन्दा स्तुति अंत।
अमित सु पर्यायोक्ति पुनि, युक्त सुनो सब संत।। ५।।

स समाहित सु सुसिद्धि पुनि औ प्रसिद्ध विपरीत।
रूपक, दीपक भेद पुनि, कहि प्रहेलिका मीत।। ६।।

अलंकार परवृत्त कहौ उपमा जमक सुचित्र।
भाषा इतने भूषणनि भूषित कीजे मित्र।। ७।।

--- कवि प्रिया - पृ० ९.

४७- समाहित	४९- सहोक्ति	५१- स्वभावोक्ति
४८- ससन्देह	५०- सूक्ष्म	५२- हेतु

दण्डी के प्रथम परवर्ती आचार्य भामह [१] ने ५ अलंकारों को अलंकार नहीं माना है, साथ ही साथ ६ अन्य अलंकारों की अपनी ओर से कल्पना की है--

अमान्य अलंकार- आवृत्ति, हेतु, सूक्ष्म, लेश तथा चित्र ।

स्वकल्पित अलंकार- अनुप्रास, उपमा रूपक, उत्प्रेक्षावयव, उपमेयोपमा, सन्देह, अनन्वय ।

उद्भट : वामन :--

भामह के परवर्ती आचार्य उद्भट ने दण्डी और भामह के अलंकारों में से भामह के ही समान कुछ अलंकारों को छोड़ा और कुछ की नवीन कल्पना की ।

अमान्य अलंकार :-

दण्डी के - आवृत्ति, हेतु, सूक्ष्म, लेश, आशीः, यमक, चित्र ।

भामह के- उपमारूपक और उत्प्रेक्षावयव ।

स्वकल्पित अलंकार :-

१- पुनरुक्तवदाभास   ३- लाटानुप्रास   ५- काव्यलिंग   ७- संकर ।

२- छेकानुप्रास   ४- प्रतिवस्तूपमा   ६- दृष्टान्त तथा

वामन उद्भट के समकालीन हैं । उनने अपने पूर्ववर्ती आचार्य दण्डी और भामह दोनों के ही अलंकारों में से कुछ अलंकारों को अमान्य करते हुए कुछ अलंकारों की कल्पना स्वयं की ।

अमान्य अलंकार :-

दण्डी के- स्वभावोक्ति, आवृत्ति, हेतु, सूक्ष्म, लेश, रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्त, उदात्त, भाविक, आशीः, चित्र ।

भामह के- उत्प्रेक्षावयव तथा उपमारूपक ।

१- दे० हमारे अलंकार सर्वस्व की भूमिका ।

स्वकल्पित अलंकार :-

१- वक्रोक्ति[१] २- व्याजोक्ति ३- प्रति वस्तूपमा[२]।

कवि करन ने दीपक, रूपक, व्यंगिक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, छेकानुप्रास, लेसालंकार, समाधि, गैविसेसोक्ति, तद्गुनालंकार, अत्युक्त, संदेहालंकार, रूपकालंकार, पर्यायोक्ति, अप्रस्तुति प्रशंसा, दृष्टांतालंकार, वस्तुत्प्रेक्षा, पूर्व रूप, विभावना, असंगति, वक्रोक्ति अलंकार, प्रजायोक्ति अलंकार, उपमा, विरोधाभास, विषाद, विषम, प्रदीप अलंकार, अलंकार को स्वीकार किया है।

दीपक :-

तुल्ययोगिता के प्रकरण में दीपक की चर्चा की गयी है। इसका निरूपण भी किया है। इसे दीपक दीप के समान[३] होने से कहा गया है। यह ऐसा भाग्यशाली अलंकार है जिसे भरत[४] मुनि से लेकर आज तक किसी भी आलंकारिक आचार्य ने अस्वीकार नहीं किया। आनन्दवर्धन ने इसका स्मरण बड़ी निर्भरता के साथ किया

१- वक्रोक्ति नामक एक अलंकार परवर्ती रुद्रट ने भी स्वीकार किया है किन्तु उसका स्वरूप वामन की वक्रोक्ति के स्वरूप से भिन्न है।

२- प्रतिवस्तूमा की कल्पना उद्भट ने भी की है। अत:कुल अलंकारों की संख्या ५२ ही माननी पड़ती है, ५३ नहीं।

३- ध्वन्या० पृ० २२२, २२३, २, २२४, २३२, २३३, ३३८, २५८, २, २६२, ४७०, ४७२, ५१६. `दीप इव`

दीपक, तुल्यार्थम् कन् प्रत्यय `संज्ञायां च` -- वार्तिक।

४- भरत- नानाधिकरणस्थानां शब्दानां संप्रदीपकम्,
एक वाक्येन संयोगं तद् दीपकमिहोच्यते ।। --नाट्यशास्त्र १६।५३।।

दण्डी- जाति-क्रियागुणद्रव्यवाचिनैकत्र वर्तिना।
सर्ववाक्योपकारश्चेत् तमाहुर्दीपकं.. । --काव्यादर्श २।९७।।

भामह- भामह ने दीपक का लक्षण नहीं किया केवल इसके भेद और उदाहरण दिए हैं। --द्रष्टव्य काव्यालंकार।

वामन- `उपमानोपमेयवाक्येष्वेका क्रिया दीपकम्।`

उद्भट- आदि मध्यान्तविषया: प्राधान्येतरयोगिन:।
अन्तर्गतोपमा धर्मा यत्र तद् दीपकं विदु: ।।-- १।१४ का०सा०सं० ।।

और इससे व्यन्जना की सिद्धि में पर्याप्त सहायता[1] ली है। उनका कहना है कि दीपक में उपमा व्यंग्य रहती है। एतदर्थ उन्होंने पूर्वोक्त[2] चन्द्रमयूरैर्निशा० उदाहरण भी दिये हैं।

'बिहारी सतसई की टीका' में कवि करन ने दीपक अलंकार की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है --

मंमट मत ते दीपक-
एक क्रिया जहद्रव्य।
बहु द्रव्य एक क्रिया जाल-
दीपक तासों करनहै पंडित बुद्धि बिसाल।।[3]

काव्यादर्श में केवल दीपक के बारह भेदों का ही उल्लेख किया है।[4] केशव के दीपक लक्षण का भाव यह है कि जहां वाच्य वर्णन उसकी क्रिया और गुण सहित उपयुक्त रूप से किया जाता है, वहां दीपक अलंकार होता है।[5] करन कवि ने एक क्रिया, द्रव्य, बहु द्रव्य, एक क्रिया जाल, दीपक अलंकार के भेद किये हैं।

रुद्रट - रुद्रट ने तुल्ययोगिता को दीपक में मिला दिया है--

यत्रैकमनेकेषां वाक्यार्थानां क्रियापदं भवति।
तद्वत् कारकपदमपि तदेतदिति दीपकं द्वेधा।।
आदौ मध्येऽन्ते वा वाक्ये तत् संस्थितं च दीपयति।
वाक्यार्थानिति भूयस्त्रेधैतदेवं भवेत षोढा।।
---काव्यालंकार ७।६४-६५.

१- ध्वन्यालोक पृ० १०८, ११५, १३६, २५६, ४६४, ४७१, ४.

२- ध्वन्यालोक पृ० ३७.

३- ह०ग्रन्थ- बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ०सं० १.

४- आदिजातिदीपक, आदिक्रियादीपक, आदिगुण दीपक, आदिद्रव्य दीपक, मध्यजातिदीपक, मध्यक्रियादीपक, अन्तजातिदीपक तथा श्लिष्टार्थ दीपक। अन्तक्रिया दीपक, माला दीपक, विरुद्धार्थ दीपक, तथा एकार्थ दीपक।
— काव्यादर्श, परि०२, श्लोक ९८-११४।

५- वाच्य क्रिया गुण द्रव्य को, बरनहु करि इक ठौर।
दीपक दीपति कहत है, केशव कवि सिरमौर।
--- कवि प्रिया, पृष्ठ १३, छं० २१.

रूपक :-

संस्कृत में रूपक शब्द नाट्य के लिए प्रचलित है। वहां इसका प्रयोग इसलिए किया जाता है कि वहां अनुकर्ता नट अपने ऊपर अनुकार्य के रूप आदि का आरोप कर लिया करता है[1] यह आरोप वास्तविक नहीं, कल्पित होता है। भाषा में जब हम इसी प्रकार किसी अन्य वस्तु पर अन्य वस्तु का आरोप कर देते हैं और उसमें चमत्कार पाते हैं तो उसी को रूपकालंकार[2] कह दिया करते हैं।

दण्डी ने रूपक अलंकार के बीस भेद बतलाए हैं।[3] यद्यपि यह भी कहा है कि इसके अनेक भेद होते हैं। भामह ने उनमें से केवल दो ही भाग चुने समस्त वस्तु विषय तथा एकदेशविवर्ति। प्रथम में अंगी का अंगी पर आरोप होता है और उनके अंगों का भी

१- रूपकं तत्समारोपात्। दशरूपक १,

२- दण्डी- उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमिष्यते।
यथा बाहुलता पाणिपद्मं चरणपल्लवः। --काव्यादर्श २।६६।।

भामह- उपमानेन यत् तत्त्वमुपमेयस्य रूप्यते।
गुणानां समतां दृष्ट्वा रूपकं नामतद् विदुः।
समस्त वस्तुविषयमेकदेशविवर्ति च।
द्विधा रूपकमुद्दिष्टम्।। --काव्यालंकार १।१३।।

उद्भट- श्रुत्या सम्बन्ध विरहाद यत् पदेन पदान्तरम्।
गुणवृत्तिप्रधानेन युज्यते रूपकं तु तत्।। --काव्यालंकारसारसंग्रह १।११।।

३- समस्त रूपक, व्यस्त रूपक, सकल रूपक, अवयव-रूपक, अवयविरूपक, एकांग-रूपक, द्व्यांगादि- रूपक, युक्त-रूपक, अयुक्त- रूपक, विषम- रूपक, सविशेषण- रूपक, विरुद्ध-रूपक, हेतु रूपक, श्लिष्ट- रूपक, उपमा- रूपक, व्यतिरेक-रूपक, आक्षेप-रूपक, समाधान रूपक, रूपक- रूपक, तथा तत्त्वापह्नव- रूपक।

— काव्यादर्श, परि० २, श्लोक-६६-९६।

अंगों पर। आनन्दवर्धन ने रूपक[1] का केवल नाम लिया, उसके भेदों की चर्चा नहीं की। केशव ने केवल तीन ही भेदों, अद्भुत-रूपक, विरुद्ध-रूपक और रूपक-रूपक का वर्णन किया है। केशव का अद्भुत-रूपक[2] अधिक तादूप्य रूपक[3] है। दण्डी ने भी विरुद्ध-रूपक[4] का उल्लेख किया है, परन्तु यह केशव के विरुद्ध-रूपक से भिन्न है। केशव का विरुद्ध-रूपक[5], रूपकातिशयोक्ति ही है[6]।

कवि खान ने रूपक अलंकार का लक्षण निरूपित किया है। रूपक के भेदा-भेदों का उल्लेख नहीं किया है --

---

१- द्र०ध्वन्यालोक पृ०सं०- २२२, २२३, २, २२४, २३२, २३३, २३८, २५८, २, २६२, ४७०, ४७२, ५१६.

२- सदा एक सदा रस बरनिये, जाहि न और समान।
-- कवि प्रिया, पृ० १३, छं० १५.

३- कुवलयानन्द, अलंकार चन्द्रिका (टीका), पृ० १६.
(प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों में रूपक का यह भेद नहीं मिलता।)

४- काव्यादर्श, परि० २, श्लोक ८३.

५- जहं कहिये अनमिल कछू,
सुमिल सकल विधि अर्थ। --कविप्रिया,पृ० १३, छं० १७.

६- सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरणों सुनि बुद्धि सकै छवै।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि फलैफल श्रीफल सेव्वै।
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्तचलै च्वै।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खंजनके द्वै।
-- कविप्रिया, पृ० १३, छं० १८.

विषाई जहां अभेद है -

विषय रंजियतु होत ।

ओतद्रूप अभेद मिलि रूपक-

है विधि सोइ ।।[१]

कवि करन ने रूपक को सखी की उक्ति नायक के प्रति उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है--

अंग प्रत्यंगरूपोकम्पिता जोवन-

देस सूचित कर यो व्यंगि ।।[२]

दण्डी के रूपक अलंकार के सामान्य लक्षण का भाव करन के लक्षण से साम्य नहीं रखता है ।

करन ने 'बिहारी सतसई की टीका' में पुन:रूपक अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है --

विषाई जहां अभेद सा विष परजियतु होइ ।।

रूपकता सो कहत है करन सुकवि सब कोइ ।।[३]

करन ने रूपक अलंकार के क्षेत्र में प्राचीन आचार्यों की परम्परा का ही अनुसरण न कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है, जो वास्तव ही उनके आचार्यत्व को प्रदर्शित करता है ।

व्यंगिक लक्षण :-

व्यंगिक नामक अलंकार का उल्लेख किसी भी आचार्य ने नहीं किया है । व्यंगिक अलंकार कवि करन की उदात्त मौलिक प्रतिभा को प्रदर्शित करता है । इन्होंने व्यंगिक का लक्षण इस प्रकार दिया है --

शब्दव्वा इक शब्द के अर्थान्तर जह होइ ।

चमत्कार अतिसय जहां व्यंगिक हाथि सोइ ।।[४]

१- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ०सं० १.

२- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ०सं० १.

३- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ०सं० ४.

४- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ०सं० १.

उत्प्रेक्षा लक्षण :-

उत्प्रेक्षा का अर्थ है साम्यमूलक प्रातिभ कल्पना । जहां इस कल्पना में ही चमत्कार हो वहां अलंकार का नाम उत्प्रेक्षा हुआ करता है ।[1] दण्डी, भामह, उद्भट और वामन सभी इसे मानते हैं ।[2] केशव के अनुसार 'उत्प्रेक्षा' अलंकार वहां होता है जहां और वस्तु में और की कल्पना की जाती है ।[3] दण्डी, भोज[4] आदि के लक्षण का भी भाव यही निकल सकता है ।

१- ध्वन्यालोक पृ० २६६, ४६५.

२- दण्डी- अन्यथैव स्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा ।
अन्यथोत्प्रेक्ष्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां विदु०००।। -- काव्यादर्श २।२२१.

भामह- अविवक्षितसामान्या किञ्चिच्चोपमया सह ।
अतद्गुणक्रिया योगादुत्प्रेक्षातिशयान्विता ।। -- काव्यालंकार २।९१.

उद्भट- साम्य रूपविवक्षायां वाच्येवाद्यात्मभि: पदै: ।
अतद्गुणक्रियायोगादुत्प्रेक्षातिशयान्विता ।।
लोकातिक्रान्तविषया भावाभावाभि मानत: ।
संभावनेयमुत्प्रेक्षा वाच्येवादिभिरिष्यते ।।

--काव्यालंकार सारसंग्रह ३।३-४.

वामन- अतद् रूपस्यान्यथा व्यवसान मतिशयार्थमुत्प्रेक्षा ।।

--काव्यालंकार सूत्रवृत्ति ४।३।६.

३- केशव और वस्तु में, और कीजिये तर्क ।
उत्प्रेक्षा तासों कहें, जिनकी बुद्धि संपर्क ।।

-- कवि प्रिया, पृ० ६, छं० ३०.

४- अन्यथावस्थितं वस्तु यस्यामुत्प्रेक्ष्यते न्यथा ।

--सरस्वती कं० कराठा भरण, पृ० ४६६.

कवि करन ने उत्प्रेक्षा का लक्षण इस प्रकार निरूपित किया है --

उत्प्रेक्षा- तत्लक्षन --

इव जहा विवेक मै चिर बसि व्याकुल होइ ।।

सुमिर सु निरगुन कहत गुन कथन कहा वे सोइ ।।[1]

इस पद्य में उत्प्रेक्षा शब्दतः कथित है अर्थात् वाच्य है, क्योंकि उसके लिए यहां 'इव'- शब्द का प्रयोग है। जहां कहीं ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं रहता वहां उत्प्रेक्षा व्यंग्य हुआ करती है।

कवि करन ने उत्प्रेक्षा अलंकार के उदाहरण अपने रस कल्लोल में निरूपित किये हैं --

सुन गरजत दुंदिभि न नद -

तरजत गज समदाइ ।

मंद मंदि रन सुभट-

तजरिगगी मनौ डराइ ।। २१ ।।[2]

कवि करन कृत उत्प्रेक्षा की लक्षण देखिये--

दीपत विपल संकुलता-

लखि विस्मित जग भूप ।

मानौ बहुत सुरस-

नहि दमयन्ती के रूप ।। २७ ।।[3]

उपर्युक्त दोनों ही उदाहरणों में मानौ, मनौ शब्दों का प्रयोग है अतःयहां उत्प्रेक्षा वाच्य है।

१- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ० २.

२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं० ३.

३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं० ३.

व्यंग्योत्प्रेक्षा लक्षण :-

सम्भवना इक शब्द के अर्थांतर जह होइ ।।
चमत्कार अतिसय जहां व्यंगिक हावै सोइ ।।[1]

करन कवि के उत्प्रेक्षा लक्षण का निरूपण आचार्य दण्डी के उत्प्रेक्षा लक्षण से साम्य रखता है। कवि करन ने भी वाच्य और व्यंग्योत्प्रेक्षा दो उत्प्रेक्षा के भेद स्वीकार किये हैं जो सभी आचार्यों को मान्य है।

करन ने उत्प्रेक्षा के भेद वस्तुत्प्रेक्षा का लक्षण भी निरूपित किया है जो पूर्ववर्ती आचार्यों से साम्य रखता है--

कर सिंगार वस्तुति करै,
मे उत्प्रेक्षा कहिये सोइ ।।[2]

व्यतिरेक[3] अलंकार :-

व्यतिरेक के विषय में आनन्दवर्धन के समय तक जो विश्लेषण हुआ था उसमें उसके तीन रूप दिखाई देते हैं--

१- उपमान और उपमेय का साम्य दिखाकर वैषम्य दिखलाना ।
२- उपमान से उपमेय का उत्कर्ष दिखलाना तथा
३- उपमान से उपमेय का अपकर्ष दिखलाना ।

इनमें से प्रथम भेद केवल दण्डी और भामह[4] में मिलता है, द्वितीय केवल वामन[5] में और

१- ह०ग्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ०सं०-१.
२- ह०ग्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ० ३.
३- ध्वन्यालोक पृ० २२८, २, २२९, ३, २३०, २३५, २४६, २६६.
४- दण्डी- शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयो: ।
तत्र यद् भेदकथनं व्यतिरेक: स कथ्यते ।। --- काव्यादर्श २।१८०.
भामह- उपमानवतोऽर्थस्य यद् विशेष निदर्शनात् ।
व्यतिरेकं तमिच्छन्ति विशेषापादनात्००।
५- वामन- उपमेयस्य गुणातिरेकित्वं व्यतिरेक: ।।
--- काव्यालंकार सूत्र वृत्ति ४।३।२२.

तृतीय केवल रुद्रट[1] में मिलता है। उद्भट बोलते भामह के स्वर में हैं किन्तु उदाहरण देते हैं वामन के समान।[2]

केशव का लक्षण इस प्रकार है।[3] उन्होंने व्यतिरेक के दो भेद माने हैं पर दण्डी ने इसके दस भेद किए हैं।

कवि करन ने व्यतिरेक का लक्षण निरूपण इस प्रकार किया है ---

उपमा तौं उपमेय मैं कछु कवि-
सैणजुहोइ।
वितरैक करन तासौ कहत-
कवि को विश्रव कोइ ।।[4]

करन के व्यतिरैक लक्षण का वही भाव है जो दण्डी और भामह के व्यतिरैक लक्षण का है। इससे विदित है कि करन को अलंकार विधान का उत्तम ज्ञान था। करन ने इसका उदाहरण भी प्रस्तुत किया है--

नाइका को उपमानोपमैयता तामि विशेष सुगय ।।
अली चली, इहा छेकानुप्रास अंग है ।।[5]

अनुप्रास अलंकार --

आनन्दवर्धन ने अनुप्रास को 'एक रूपानुबन्ध'[6] कहा है, इससे अधिक न तो इसके स्वरूप पर कोई प्रकाश डाला है और न उसका कोई उदाहरण ही प्रस्तुत किया है। पूर्ववर्ती आचार्यों में अनुप्रास का लक्षण दण्डी ने प्रस्तुत किया है, किन्तु भेद तथा उदाहरण उद्भट ने प्रस्तुत किये हैं। दण्डी ने अनुप्रास के लिये वर्णों की ऐसी आवृत्ति

१- रुद्रट- उपमेय का उत्कर्ष--
यो गुण उपमेये स्यात् तत्प्रतिपन्थी चदोष उपमाने ।। --काव्या० ७।८६.

२- उद्भट- विशेषापादनं यत् स्यादुपमानोपमेययो:।
निमित्तादृष्टि दृष्टिभ्यां व्यतिरेको द्विधा तु स:।।
--काव्यालंकार सार संग्रह २।७.

३- तामें आने भेद कछु, होय जु बस्तु समान।
सो व्यतिरेक सुभांति है, सुकवि सकल परमान ।। --कविप्रिया, पृ० ११, छं० ७८.

४- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका, करन, पृ०सं० २.

५- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका, करन, पृ०सं० ३.

६- ध्वन्यालोक पृ० २।१५.

आवश्यक मानी है जिसमें पहले हुये प्रयोग से निष्पन्न उसी वर्ण की आवृत्ति के संस्कार का उद्बोध हो सके ।[1]

उद्भट ने अनुप्रास का लक्षण पूर्वाचार्यों के ही स्वर में "समान व्यंजनों का विन्यास"[2] बतलाया है । आनन्दवर्धन ने छेकानुप्रास तथा लाटानुप्रास की ओर कोई संकेत नहीं किया । उन्होंने केवल वृत्त्यनुप्रास को महत्व दिया है और वृत्तियों को उससे अभिन्न माना है ।[3]

कवि करन ने छेकानुप्रास का लक्षण निरूपण इस प्रकार किया है --

पवि विलोकि मन हरन के पूजी करत विभाव ।।
तासों कहत विलास है करन सुपंडित राव ।।[4]

छेकानुप्रास का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है --

नाइका को उपमानोपमेयता-
तामें विसेष सुगंध ।।
कही चली इहा छेकानुप्रास-
अंग है ।।[5]

१- वर्णावृत्तिरनुप्रासः पादेषु च पदेषु च ।
पूर्वानुभव संस्कार बोधिनी यद्यदूरता ।। -- काव्यादर्श १।५५.

२- भामह- सरूपवर्ण विन्यासमनुप्रासं प्रचक्षते । -- काव्यालंकार १।५.
उद्भट- सरूपव्यन्जनन्यासं तिसृष्वेतासु वृत्तिषु ।
पृथक पृथगनुप्रासमुशन्ति कवयः सदा ।। -- काव्यालंकार संग्रह-१.

३- तदनतिरिक्तवृत्त्यो वृत्त्योऽपि कैश्चिदुपनागरिकाद्याः प्रकाशिताः ।
--ध्वन्यालोक पृ० १७-१९.

४- ह० ग्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ० ४.

५- ह० ग्र० बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ० ३.

करन ने अपने रस-कल्लोल ग्रन्थ में प्रत्येक उदाहरण में अनुप्रास अलंकार की झड़ी-सी लगादी है। उनमें से कुछ दृष्टव्य हैं --

सुमनवंत सोभा सदन-
वारन बदन बिचार ।
चारौ फल वितरत-
सुरत सुरतर बर करचार ।।१ ।।[1]

जगरानी बानी चरन-
दीपक सुखर पूर ।
सुरपुर नरपुर नागपुर-
पूरत गरब[2] गरूर ।।२।।[3]

देखत छत्रिन की छटा-
समर समथ्य भुवाल ।
वाणिन तीछन क्रोध कि-
पछीगाद लोचन लाल ।।१६।।[4]

सैन सकल साजि लिये-
क्रोध किये बस माथ ।
आवत रघुबर निरख-
मन विहस लियौ धन हाथ ।।२१।।[5]

सरस सवीनी सुमन गुन-
सोहत सुपरन बेल ।
जामैं मदमातौ सदा करत-
स्याम अलबेल ।।३५।।[6]

१- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ० १.

२- गरब गरूर, द्वि० गर्भ मरूर ।

३- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ० १.

४- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ० २.

५- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ० २.

६- ह० ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ० ४.

सन्देह अलंकार :-

उपमेय पर जब उपमान का संशय किया जाता है तब यदि चमत्कार अनुभव में आता है तो उसे सन्देह अलंकार कहा जाता है।[1] यह अलंकार जिस वाक्य में होता है उसे "ससन्देह" अर्थात् सन्देह से युक्त कहा जाता है। ससन्देह शब्द का प्रयोग उद्भट ने अलंकार के लिए भी किया। वामन[2] ने इसे सन्देह ही कहा है। दण्डी ने इसे संशयोपमा कहा था। भामह और उद्भट इसे ससन्देह ही कहते हैं। भामह ने इसका उदाहरण यह माना है।[3]

कवि करन ने सन्देह अलंकार का लक्षण अत्यन्त विलक्षण रूप में प्रस्तुत किया है --

संदेहालंकार लक्षन -

एक वस्तु निरधार बिन संदिग्ध जिय ।।
कवि की आसक ईश्वर विर्णीतति ।।[4]

१- भामह — उपमानेन यत् तत्वं भेदं च वदत:पुन: ।
ससन्देहं वच:स्तुत्यै ससन्देहं विदु०० ।।
— काव्यालंकार ३।४३.

२- उपमानोपमेयसंशय: सन्देह: ।। — वामन का० सू० ४।३।११.

३- किमयं शशी, न स दिवा विराजते,
कुसुमायुधो, न धनुरस्य कौसुमम् ।
इति विस्मयाद् विमृशतोऽपि मे मति-
स्त्वयि वीक्षिते न लभतेऽर्थ निश्चयम् ।।
— भामहकृत काव्यालंकार ३।४४.

४- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०सं०-४.

कवि करन के संदेह अलंकार का भाव भामह द्वारा निरूपित लक्षण से साम्य रखता है। करन का कथन है कि एक निराधार वस्तु में अर्थात् उपमेय पर उपमान का संशय किया जाता है तब वहां संदेहालंकार समझना चाहिये। वे ससन्देह और सन्देह के चक्कर में न पड़ कर सीधे हृदय की संदिग्ध अवस्था की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करते हुये जान पड़ते हैं।

पर्यायोक्ति :-

पर्यायोक्तालंकार में पर्याय का अर्थ है प्रकारान्तर। जब अभीष्ट वक्तव्य प्रकारान्तर से कथित हो तो पर्यायोक्त अलंकार होता है। अभिप्राय यह कि वक्ता द्वारा अपनी मुख्य बात को दूसरे ही प्रकार से कहने का नाम है पर्यायोक्त। आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती आचार्यों में वामन को छोड़ शेष तीनों (दण्डी, भामह और उद्भट) में यह अलंकार इसी रूप में मान्य है।[1] वामन ने पर्यायोक्त पर विचार नहीं किया। जहां अपने इष्ट की सिद्धि किसी अदृष्ट कारण से कुछ प्रयत्न किए बिना हो जाती है, वहां पर्यायोक्ति अलंकार होता है[2]।

करन कवि ने पर्यायोक्ति अलंकार का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है --

मिस कर कारज साधिये जो होय सुचीत।
पर्यायोक्ति तासों कहत करन सुमति अवदात ।।[3]

1- दण्डी -- अर्थमिष्टमनाख्याय साक्षात् तस्यैव सिद्धये।
यत् प्रकारान्तराख्यानं पर्यायोक्तं तदिष्यते ।।
---काव्यादर्श 2।295.

भामह -- पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते।

उद्भट -- पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते।
वाच्यवाचकवृत्तिभ्यां शून्येनाव गमात्मना ।।
---काव्यालंकार 3।36.

2- कौनहु एक अदृष्ट ते, आछी किये जु होय।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोक्ति सोय ।।
---कविप्रिया, पृ० 92, छं०-39.

3- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०सं०-4.

पर्यायोक्ति में पर्याय का अर्थ यहाँ भी प्रकारान्तर ही है, करन के कहने का अभिप्राय भी यही है कि वक्ता द्वारा अपनी बात को दूसरे ही प्रकार से कहने का नाम पर्यायोक्ति है।

कवि करन की पर्यायोक्ति अलंकार की परिभाषा भी पूर्ववर्ती आचार्यों से साम्य रखता है, किन्तु उनके कहने का ढंग विचित्र है।

अप्रस्तुत प्रशंसा :-

दण्डी,[1] भामह,[2] उद्भट[2] और वामन[3] ने अप्रस्तुत प्रशंसा के केवल साम्यमूलक स्वरूप पर विचार किया है। रुद्रट[4] ने भी इसी स्वरूप को अपनाया है और उसे अन्योक्ति नाम दिया है। आनन्दवर्धन में इसके अन्य चार भेद मिलते हैं। वे इन्हीं चार भेदों की गणना पहले और साम्यमूलक भेद की गणना सबके बाद में करते हैं।

१- कार्य के विषय में पूछने पर कारण का कथन।
२- कारण के विषय में पूछने पर कार्य का कथन।
३- सामान्य के विषय में पूछने पर विशेष का कथन।
४- विशेष के विषय में पूछने पर सामान्य का कथन तथा
५- किसी (तुल्य) वस्तु के प्रस्तुत रहने पर वैसी किसी अन्य वस्तु का वर्णन[5]।

१- दण्डी --अप्रस्तुतप्रशंसा स्यादप्रक्रान्तेषु या स्तुतिः।
---काव्यादर्श २।३४०.

२- भामह तथा उद्भट --
अधिकारादपेतस्य वस्तुनो न्यस्य या स्तुतिः।
अप्रस्तुतप्रशंसा ॥ ---काव्यालंकार ३।२९.

३- वामन-- उपमेयस्य किञ्चिल्लिंग मात्रेणोक्तौ समान वस्तु-
न्यासोऽप्रस्तुतप्रशंसा ॥ ---काव्यालंकारसूत्रवृत्ति ४।३।२७.

४- रुद्रट-- असमानविशेषणमपि यत्र समानेतिवृत्तमुपमेयम्।
उक्तेन गम्यते परमुपमानेनेति सान्योक्तिः ॥
---काव्यालंकार ८।७४.

५- ध्वन्यालोक पृ०-१२५-१२८.

साहित्य चन्द्रिका (बिहारी सतसई की टीका)
की हस्तलिखित प्रति का पृष्ठ ६०
(अलंकार प्रकरण)

अप्रस्तुतप्रशंसा के इन पांचों भेदों का संग्रह मम्मट ने इस प्रकार किया है।[1]

कवि करन ने अप्रस्तुत प्रशंसा का केवल लक्षण ही निरूपित किया है उसके भेदोपभेद नहीं किये हैं --

अप्रस्तुतवर्ननविशेष अप्रस्तुत की बात।

अप्रस्तुत परसंसतोबरनतर करन सुजान सो मौन है।।[2]

विशेष के विषय में पूछने पर अप्रस्तुत का कथन करना, करन ने उसे अप्रस्तुत प्रशंसा कहा है। करन का अप्रस्तुत प्रशंसा का लक्षण आनन्दवर्धन के चौथे भेद से किंचित्मात्र साम्य रखता है, किन्तु पूर्णरूपेण उससे साम्य नहीं रखता ।

दृष्टांतालंकार :-

कवि करन ने दृष्टांतालंकार का लक्षण इस प्रकार निर्देशित किया है --

दृष्टांतालंकार -लक्षण ।।

होतबिंब प्रतिबिंब में दृष्टालंकार ।।[3]

करन का दृष्टांतालंकार का लक्षण पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षण से साम्य रखता है। करन के लक्षण का भी यही सार है कि जब एक वस्तु का दूसरी वस्तु में बिम्ब प्रतिबिम्ब चित्र प्रस्तुत किया जाता है वहां दृष्टांतालंकार होता है।

विभावना :-

केशव ने विभावना के दो भेद माने हैं। जहां बिना कारण ही कार्य सिद्ध हो जाय वहां प्रथम विभावना होती है और जहां प्रसिद्ध कारण से कार्य हो जाय वहां

१- अप्रस्तुत प्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया।
कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति।
तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पञ्चधा ।।
—— काव्य प्रकाश, पृ०-१०.

२- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-५.

३- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका,साहित्य चन्द्रिका,कवि करन, पृ०सं०-५.

द्वितीय विभावना होती है ।[1] दण्डी ने भी विभावना के क्रमशः स्वाभाविकत्व और कारणान्तर दो भेद किये हैं[2] जो केशव के भेदों से साम्य रखते हैं । भोज के भी स्वाभाविकत्व एवं कारणान्तर विभावना के लक्षण और उदाहरण[3] दण्डी से मिलते हैं । रुय्यक का भी प्रथम विभावना का लक्षण[4] वही है ।

करन ने विभावना का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

प्रतिबंधक दोसै तहू कारज पूरन होइ ।।
ताहि विभावना कहत हैं करन सुकवि सब कोइ ।।[5]

करन का विभावना का लक्षण पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रथम लक्षण से साम्य रखता है । जहां बिना कारण के ही कार्य सिद्ध हो जाय वहां विभावना होती है । अन्त में कवि स्वयं अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हुये कहते हैं कि ऐसा सभी विद्वान कवियों का कथन है ।

१- कारज को बिनु कारणहि, उदो होत जेहि ठौर ।
तासों कहत विभावना, केशव कवि सिरमौर ।।
कारण कौनहु आनते, कारज होय जु सिद्ध ।
जानो अन्य विभावना, कारण छांडि प्रसिद्ध ।।
—— कवि प्रिया, पृ०-६, छं०-११ तथा १२.

२- प्रसिद्ध हेतु व्यावृत्या यत्किन्चित् कारणान्तरम् ।
यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्य सा विभावना ।।
—— काव्यादर्श, परि० २, श्लो० १९९.

३- सरस्वती कंठाभरण, पृ०-३१८, ३१९.

४- कारणाभावे कार्यस्योत्पत्तिर्विभावना ।
—— अलंकार सूत्र, पृ०-१३८.

५- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०सं०-६.

वक्रोक्ति अलंकार :-

वामनाचार्य ने इसे सबसे पहिले अलंकार रूप में स्वीकार किया और इसका यह लक्षण दिया --

सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः[1]।

दण्डी और भामह ने केवल इतना ही संकेत किया है कि यह सब अलंकारों का मूलाधार है।[2] रुद्रट ने भी वक्रोक्ति अलंकार माना और उसके दो भेद भी किए हैं[3]। आचार्य मम्मट ने भी वक्रोक्ति अलंकार का लक्षण निरूपित किया है।[4] केशव वक्रोक्ति अलंकार वहां मानते हैं, जहां सीधी-सादी बात में टेढ़ा अथवा गूढ़ भाव प्रकट किया गया हो।[5]

करन ने वक्रोक्ति अलंकार का लक्षण निरूपित करते हुये उसके दो भेद किये हैं --

१- श्लेष वक्रोक्ति

२- काकु वक्रोक्ति

सुरश्लेष अरु काकु करि बरन न जायत सोइ ।।
वक्रोक्ति तासों कहत करन सुकवि सब कोइ ।।[6]

रुद्रट ने भी वक्रोक्ति अलंकार माना है और उसके दो भेद किये हैं, परन्तु करन का यह आधार प्रतीत नहीं होता। हमें तो मम्मट का लक्षण ही करन का आधार प्रतीत होता है।

१- काव्यालंकार सूत्र वृत्तिः, पृ०-६६.

२- काव्यादर्श, परि०-२, श्लोक-३६३ तथा काव्यालंकार -श्लोक ८५, पृ०-२७.

३- काव्यालंकार, पृ०-१५-१६.

४- यदुक्तमन्यथावाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा ।।
--काव्य प्रकाश, उल्लास १०, पृ०-२००.

५- केशव सूधी बात में, बरणत टेढ़ो भाव।
वक्रोक्ति तासों कहैं, सदा सबै केशवदास ।। -- कविप्रिया, पृ०-१२, छं०-३.

६- ब०,०बिहारी सतसई की टीका, कवि करन, पृ०सं०-७.

उपमा अलंकार :-

दण्डी उपमा अलंकार वहां मानते हैं, जहां वस्तुओं में किसी प्रकार की समानता दिखायी जाती है।[1] केशव ने अपने लक्षण में रूप, गुण, तथा शील का उल्लेख किया है।[2]

करन ने अपने हस्तलिखित ग्रन्थ बिहारी सतसई की टीका में उपमा अलंकार का उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है --

तापर वारों उरबसी सुन राधिके सुजान ।।
तू मोहन के उरबसी ह्वै उर बसी समान ।।[3]

करन के उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि उनके कहने का अभिप्राय पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों से साम्य रखता है। जहां दो वस्तुओं में समानता का वर्णन किया जाता है वहां उपमा अलंकार होता है।

विरोधाभास :-

करन की दृष्टि में विषय-वर्णन में जहां अर्थ में विरोध हो वहां विरोधाभास अलंकार होता है --

बरन लगै विरोध सौं अर्थ जहां अवरोध ।।
ताहि विरोधाभास जिन्है करन प्रबोध ।।[4]

१- दण्डी-- यथाकथन्चित् सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते ।
उपमा नाम सा तस्याः प्रपन्चोऽयं प्रदर्श्यते ।।
---काव्यादर्श,परि०-२, श्लोक-१४.

२- भामह-- उपमेयस्य यत् साम्यं गुणलेशेन सोपमा ।
---काव्यालंकार १।३०.

उद्भट-- यच्चेतोहारि साधर्म्यमुपमानोपमेययोः ।
मिथो विभिन्नकालादिशब्दयोरुपमा तुतत् ।।
---काव्यालंकार संग्रह १।१५.

वामन-- उपमानोपमेययोर्गुणलेशतः साम्यमुपमा ।
---काव्यालंकार सूत्र ४।२।१.

३- ह०गृ०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-७.

४- ह०गृ०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-८.

दण्डी[1], भामह[2], उद्भट[3], वामन[4] आदि आचार्यों के विरोधाभास के लक्षण का भाव वही है जो करन का है। दण्डी के क्रिया-विरोध, वस्तुगत गुण-विरोध, अवयवगत गुण विरोध, विषय-विरोध आदि छः भेदों का करन ने उल्लेख नहीं किया है। दण्डी ने विरोधाभासालंकार के उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित श्लोक दिया है --

कृष्णार्जुनानुरक्तापि दृष्टि:कर्णावलम्बिनी।
याति विश्वसनीयत्वं कस्य ते कलभाषिणि।[5]

"हे मधुर भाषिणी, तुम्हारे नेत्रों का जो कृष्ण (भगवान् कृष्ण तथा श्याम) और अर्जुन (पाण्डव तथा श्वेत) में अनुरक्त होते हुए भी कर्ण (कुन्ती-पुत्र तथा कान) का आलम्बन करते हैं, कौन विश्वास करेगा ? करन ने विरोधाभास के उदाहरण में जो छन्द दिया है, उसके अन्तिम पद का भाव दण्डी के श्लोक का भावानुवाद ही जान पड़ता है।[6]

१- विरुद्धानां पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनम्।
विशेषदर्शनायैव स: विरोध: स्मृतो यथा ।।
---काव्यादर्श, परि०-२, श्लोक- ३३३.

२- गुणस्य या क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रियाभिधा।
या विशेषाभिधानाय विरोधं तं विदुर्बुधा: ।।
---काव्यालंकार, परि०-३, श्लोक-२५.

३- गुणस्य वा क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रियावच:।
यद्विशेषाभिधानाय विरोधं तं प्रचक्षते ।।
---काव्यालंकार सार संग्रह, पृ०-६३.

४- विरुद्धाभासत्वं विरोध:।
--काव्यालंकार सूत्रवृत्ति,पृ०-६८ तथा अलंकार सूत्र, पृ०-१३४.

५- काव्यादर्श, परिच्छेद द्वितीय, श्लोक-३३६.

६- वे बनियारे नयन वेधत करन न वेध।
बसटंघ चलमौछियो दौना साजों वेध ।।३२।।
--हस्त० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-८.

करन दण्डी के ही समान विरोधाभास को विरोध ही के अन्तर्गत मानते हैं। स्पष्ट रूप से करन ने यह बात नहीं लिखी है, परन्तु पूर्व-पृष्ठों में दी हुई नामावली से यह बात प्रकट हो जाती है। इसमें विरोध का तो नाम लिया गया है, विरोधाभास का नहीं। करन के अनुसार जहां विरोध की प्रतीति-सी हो, वस्तुत: विरोध न हो, वहां विरोधाभास अलंकार होता है।[1] ध्यान से देखा जाय तो करन के विरोधाभास का यह लक्षण वामन तथा रुय्यक दोनों ही के विरोध का लक्षण है।[2] केशव का विरोधाभास लक्षण करन के विरोधाभास लक्षण से साम्य रखता है।[3]

<u>लेशालंकार</u> :-

करन के इस अलंकार का नामकरण भी दण्डी के ही आधार पर हुआ है। दण्डी लेशालंकार वहां मानते हैं जहां तनिक से मिस से किसी प्रकट बात का गोपन किया जाता है।[4] दण्डी ने यह उदाहरण दिया है --

आनन्दाश्रुप्रवृत्तं मे कथं दृष्ट्वैव कन्यकाम् ।
अक्षि मे पुष्परजसा वातोद्धूतेन दूषितम् ।।[5]

१- बरन तलैं विसेष सौं अर्थ जहां अवरोध ।
ताहि विरोधाभास जिनकै करन प्रबोध ।।
--ह0प्र0 साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ0-८.

२- विरुद्धाभासत्वं विरोध: ।
--काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, पृ0-६८ तथा अलंकार सूत्र, पृ0-१३४.

३- बरनत लगै विरोध सो, अर्थ सबै अविरोध ।
प्रगट विरोधाभास यह समुझत सबै सुबोध ।।
---कविप्रिया, पृ0-६, छं0-२२.

४- लेशो लेशेन निर्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम् ।
---काव्यादर्श, परिच्छेद-२, श्लोक-२६५.

५- काव्यादर्श, परिच्छेद-२, श्लोक- २६७.

कन्या को देखकर मेरी आंखों में आनन्दाश्रु उमड़ रहे थे, उसी समय मेरे नेत्र पवन के झोंके से उड़ाये हुए पुष्प-पराग से क्यों दूषित किए गए ? जिसे करन 'लेस' मानते हैं, उसी को मम्मट, रूय्यक आदि 'व्याजोक्ति' के नाम से पुकारते हैं।[1]

केशव का लक्षण[2] यद्यपि स्पष्ट नहीं है तो भी उदाहरण के देखने से ज्ञात होता है कि उनके लक्षण का आशय भी वही है जो दण्डी का है।

करन ने लेसालंकार का लक्षण इस प्रकार किया है --

गुन मैं दूष न होत जह दूषन मे गुन जानि ।।
लेस करन तासौं कहत कवि जन विबुध बखान ।।[3]

करन के लेसालंकार का लक्षण दण्डी के लक्षण से काफी मात्रा में साम्य रखता है जो उनके पाण्डित्य को प्रदर्शित करता है।

व्याजस्तुति :-

केशव के अनुसार जहां निन्दा के बहाने स्तुति तथा स्तुति के बहाने निन्दा की जाती है वहां क्रमश: व्याजस्तुति और निन्दास्तुति (व्याजनिन्दा) अलंकार होता है।[4] दण्डी के अनुसार व्याजस्तुति अलंकार वहां होता है जहां प्रकट में तो निन्दा हो पर वस्तुत: स्तुति हो।[5] निन्दास्तुति का दण्डी ने कोई उल्लेख नहीं किया है। भामह[6]

१- उद्भिन्नवस्तुनिगूहनं व्याजोक्ति: । -- अलंकार सूत्र, पृ०-१६५.
व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भिन्न वस्तु रूपनिगूहनम् ।। -- काव्य प्रकाश, पृ०-२७६.

२- चतुराई के लेश ते, चतुर न समुझैं-लेश ।
बरनत कवि कोविद तबै ताको केशव लेश ।। -- कविप्रिया, पृ०-११, छं०-१६.

३- ह०ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-२.

४- स्तुति निन्दा मिस होत जहं, स्तुति मिस निन्दा जान ।
व्याजस्तुति निन्दा कहै, केशवदास बखान ।। ---कविप्रिया, पृ०-१२, छं०-२२.

५- यदि निन्दोन्नव स्तौति व्याजस्तुतिरसौ स्मृता ।"
---काव्यादर्श, परि०-२, श्लोक-३४३ (पूर्वार्द्ध)

६- दूराधिकगुण-स्तोत्रव्यपदेशेन तुल्यताम् ।
किंचिद् विधित्सोर्या निन्दा व्याजस्तुतिरसौ० ।।
--- काव्यालंकार ३।३२.

वामन[1] और उद्भट[2] में भी निन्दास्तुति का उल्लेख नहीं है। केशव द्वारा बताये द्वितीय का आरम्भ रुद्रट[3] से होता है। दण्डी का कहना है कि व्याजोक्ति के कितने प्रकार हो सकते हैं, यह कहना अति कठिन है, उसके भेदों का पार नहीं पाया जा सकता।[4]

करन ने व्याजस्तुति का लक्षण न देकर उदाहरण प्रस्तुत किया है, किन्तु उनके उदाहरण से व्याजस्तुति का लक्षण स्वतःस्पष्ट हो जाता है।

कृष्ण सागर कृष्ण गरज औ कृष्ण जल जास गम्भीर।
जहां पथिक पूछत फिरत करन कूप को नीर ।।२६६।।
इहां प्रस्तुतांकुर ते अन्य निंदा व्याज वस्तु व्यंग ।।[5]

करन का व्याजस्तुति का लक्षण रुद्रट से साम्य रखता है।

धूरि लगावत सकल तन बिकस न सुनो बखान।
काशी बस कर करिहो कहां सूली होत निदान ।।२५३।।

यहां सूलि रोगी सूली शिव शब्द शक्त भ्रम ते व्याज स्तुति।[6]

१- संभाव्यविशिष्ट कर्माकरणान्निन्दा स्तोत्रार्था व्याजस्तुतिः।

२- शब्दशक्तिस्वभावेन यत्र निन्दैव गम्यते।
वस्तुतस्तु स्तुतिः श्रेष्ठा व्याजस्तुतिरसौ मता ।।
---काव्या०सा०सं० ४।४१,

३- यस्मिन्निन्दा स्तुतितो निन्दाया वा स्तुतिः प्रतीयते।
अन्या विवक्षितायाः व्याजश्लेषः स विज्ञेयः ।।
--- काव्या० - १०।११,

४- व्याजस्तुति प्रकाराणामपर्यन्तस्तु विस्तरः। —काव्यादर्श २।३४७,

५- ह०ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२५,

६- ह०ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २३,

श्लेष अलंकार :-

केशव ने श्लेषालंकार वहां माना है जहां दो-तीन अथवा अधिक प्रकार के अर्थ निकलें[1]। करन ने श्लेष अलंकार का उदाहरण ह०ग्र० रस-कल्लोल में इस प्रकार प्रस्तुत किया है --

घूरि लगावत सकल तन, विकस न सुनौ बखान ।
काशी बस कर करिहौ कहा सूली होत निदान ।।२५३।।[2]

यहां पर सूली शब्द एक है और उस शब्द के दो अर्थ स्पष्ट होते हैं - १-रोगी, २-शिव । अत: केशव और करन के लक्षण समान जान पड़ते हैं । पूर्ववर्ती आचार्यों में दण्डी, का भी वही मत है । दण्डी ने श्लेषालंकार के कई भेद किये हैं, किन्तु करन ने केवल उदाहरण ही किया है ।

१- दोय तीनि बहु भांति बहु, आनत जामें अर्थ ।
श्लेष नाम तासों कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ ।।
-----क०प्रि०, पृ०-११, छं०-२६.

२- ह०ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२३.

अलंकार विवेचन के विशिष्ट प्रसंग :-

करन ने अपने हस्तलिखित ग्रन्थ "बिहारी सतसई की टीका" में विशिष्टालंकार के अन्तर्गत अलंकारों का विवेचन करते हुए उनके उदाहरण दिए हैं। प्रायः सभी उदाहरण सुन्दर हैं। करन के हस्तलिखित ग्रन्थों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि करन ने अलंकार-लक्षण-विवेचन में कतिपय विशिष्ट प्रसंग भी प्रस्तुत किये हैं, जो द्रष्टव्य हैं --

'रूपक' की सहायता से नायिका के अंगों की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है --

अंगप्रत्यंगरूपौत्कर्षितां जोवन वैस सूचितकर वोव्यंगि ।।[१.]

वक्रोक्ति अलंकार के सहारे करन ने प्रौढ़ धीरा नायिका का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है --

पल्लनपीक अंजन अरु धरें महाउर भाल ।।
आजु मिले सुभलीक रोम से बने हौ लाल ।।[२.]

विशेषोक्ति अलंकार के माध्यम से करन ने अत्यन्त सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है --

दिया बढावै कौ कारन ।।
अंधेरे कौ विद्यमान है कारजु नाहीं होता ।।[३.]

उपमा अलंकार के सहारे करन ने कृष्ण की मुरली का बहुत सुन्दर वर्णन किया है --

तोपर वारी उरवसी सुन राधिके सुजान ।।
ता मोहन के उरवसी हौ उर वसी समान ।।[४.]

१- ह० ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-१.
२- ह० ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-७.
३- ह० ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-६.
४- ह०ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-७.

'अनुप्रास' अलंकार का सहारा लेकर करन ने अपने ग्रन्थ 'रस-कल्लोल' में श्री गणेश, श्री सरस्वती देवी, की वन्दना की है --

सुमनवंत सोभा सदन वारन बदन विचार ।
चारौ फल वितरत तुरत सुरतर वर करतार ।।१।।
जारानी बानी चरन दीपत सुरसर पूर ।
सुरपुर नरपुर नागपुर पूरत गरब गरूर ।।२।। [1]

'रूपकातिशयोक्ति' अलंकार की सहायता से करन ने अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है --

देखत बनता कंस की रोवत किमत उछाह ।
उपजी ब्रज भूषन ही ये करुन बली उर माह ।।१७।। [2]

'उत्प्रेक्षा' के सहारे करन ने दमयन्ती के रूप का अत्यन्त सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है --

दीपत विफल संकुला लखि विस्मित जा भूप ।
मानो बहुत सुरस नहि दमयन्ती के रूप ।।२७।। [3]

'विभावना' अलंकार के सहारे करन ने चातक के ताप का हरण कर अत्यन्त सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है --

कंटकित गात हौत विपन समाज देख हरी हरी भूम हेर क्यौ लरजत है ।
निपट चवाई माई बंधु जे बसंत गावे दाव परे जान के न कोउ बरजत है ।
ये ते पै करन पुन परत मयूरन की चात्रिक पुकार देह ताप सरजत है ।
अरजौ न मानी तू नगर जी चलत बेर रे रे घन बैरी अब काहे गरजत हो ।।३४।। [4]

महाराज छत्रसाल की मृत्यु-उपरान्त करन ने 'प्रतीप' अलंकार के सहारे उनके व्यक्तित्व की महानता का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है --

---

१- ह० ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१.
२- ह० ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२.
३- ह० ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-३.
४- ह० ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-४.

मीरन को कुंवराव हंसन को मानसर चंद्रमा चकोरन कहर चिते गयो ।
मिदुक को कायवर काम वृष कुण्डल को जाचि पपीहन को काहु मै रिते छयो ।
दीपन को दीप हीरवार वृष पाठन को कोकन को वासिख देखात कये गयो ।
कहा छिवपाठ छिव मंडल उदार धीर धरा को अनार सो सुमेर पो किते गयो ॥५६॥[1]

'अनुप्रास' अलंकार का सुन्दर उदाहरण करन ने प्रस्तुत किया है --

कहा कहौं कहत न बनै सुनी बखात ।
देखौ छिपौ गोप सुत गिरधर राखौ हाथ ॥७६॥[2]

'विशेषोक्ति' अलंकार की सहायता से करन ने एक विरहिणी का सजीव चित्रण किया है --

जारे डारत चांदनी सीवे छेत समीर ।
कहा वीर अनुबीर ने लखी सुरति वे पीर ॥१७०॥[3]

'विरोधाभास' अलंकार के सहारे करन ने कान्ता का चन्द्रमा के भय से भयभीत हो बादलों के बीच छिप जाने का सुन्दर चित्रण किया है । यहां विरोध की प्रतीति अवश्य हो रही है, लेकिन विरोध नहीं है, अत:यहां 'विरोधाभास' अलंकार है --

कौक कलानिधि के डरन छप्यो कजन के बीच ।
हाय विपत यह देखिये करै कहा यो नीच ॥२१५॥[4]

'दीपक' अलंकार का करन ने अत्यन्त सुन्दर उदाहरण दिया है । 'दीपक' अलंकार के साथ 'उपमा' अलंकार की छटा भी विद्यमान है । वास्तव में यह करन की विद्वता का प्रमाण है --

लखी सखी के साथ में बिलसत रस की खान ।
गोसत संचित धन चिते पंचायत सी मुसकान ॥२६२॥[5]

१- ह० ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृष्ठसं०- ६.
२- ह० ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृष्ठसं०- ७.
३- ह० ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृष्ठसं०-१६.
४- ह० ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृष्ठसं०-२०.
५- ह० ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृष्ठसं०-२५.

'छेकानुप्रास' अलंकार का करन ने सुन्दर वर्णन किया है --

सच्चासीह क्मान बूर त्याक्ष के हेत ।
मच्चातीभान ते वरवि वत्या भूपन देत ।।२६६।।[१]

'अप्रस्तुत प्रशंसा' अलंकार का करन ने सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है --

सस्वा जाकी समुंद लौ तस्वा तेच दिनेस ।
वाहत्वा नर नाह के प्रगटौ जपहिर देस ।।२६७।।[२]

एक और उदाहरण देखिए --

तुम रसाल वरवर सरस हम है निरस करील ।
समता पूवत नाहि मे परसर मूलक पील ।।२७०।।[३]

नवीन अलंकारों की उद्भावना :-

करन ने विशिष्टालंकारों के निरूपण में प्रमुख रूप से दण्डी और कहीं-कहीं भोज, मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्यों को आधार बनाया गया है, परन्तु कुछ अलंकारों तथा उनके भेदों की परिभाषा करन की अपनी है । अलंकारों के कुछ भेद करन के स्वयं के हैं । करन ने कुछ नए अलंकारों की भी उद्भावना की है, जैसे- समाधि, अत्युक्त, ललित, पूर्वरूप, तद्गुनालंकार, अवज्ञालंकार, असंगति, प्रत्यनीक, विषाद, वस्तुविचित्र, विश्राम, विलास इन अलंकारों का उल्लेख भट्टि, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, भोज तथा रुय्यक आदि संस्कृत के किसी भी आचार्य द्वारा नहीं किया गया है ।

समाधि अलंकार का लक्षण :-

सौसमाधिकार जह मग और होत मिलि विशेषोक्ति-
व्यंगि इहापरि किया लक्ष्या मिला रिकाकौ मौर मीरसंग
सौर कुल मे चैहोक्य कौउ फिरी मैं मौरन की
अधिकारी सौंकार कुसुमनु जी मे गुन भयौ तति है-स ।।
वर रात्रि संबंधी तम के भैर मौरन की अधिकारी -
सौ कारन कुसुम भयौ है समाधि ।।[४]

१- ह०प्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०-२५.
२- ह०प्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०-२५.
३- ह०प्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०-२५.
४- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-३

अत्युक्त अलंकार का लक्षण :-

मेद सहित जो बरनिये सो मेवक अत्युक्त ।। [१]

ललित अलंकार का लक्षण :-

प्रस्तुत में अनवन्यि वाक्य वरण अव्यै ।।
वाहि के प्रतिविम्ब की बरनन ललित सवन्र्य ।। [२]

पूर्वरूप अलंकार का लक्षण :-

पूर्वावस्था न तृत्य जब वस्तु बिनाहू होइ ।।
पूर्वरूप पहूलीक तब करन सु कवि सब कोई ।। [३]

पूर्वास्थानुसृत जब वस्तु विनीऊ होइ ।।
पूर्वरूप पंक्ति करन कहत दूसरी सोइ ।। [४]

तद्गुनालंकार का लक्षण :-

तद्गुनगुनतजितात जी संगति की गुन लेइ ।। [५]

अकालंकार का लक्षण :-

मद फिरजड अर्थ कह जुदी अक सी जानि ।। [६]

असंगति अलंकार का लक्षण :-

और ठौर मे कीजिये और ठौर फल काम ।।
वाहि असंगति कहति है करन सुकवि गुन ग्राम ।। [७]

१- ह० ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-३.
२- ह० ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-४.
३- ह० ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-३.
४- ह० ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-६.
५- ह० ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-२.
६- ह० ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-१.
७- ह० ग्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-७.

प्रजायोक्ति अलंकार का लक्षण :-

मिसि करि कारज साधिये जो है चित हि सुहात ।।
प्रजायोक्ति तासों कहत करन सुकवि अवदात ।।१.

विषाद अलंकार का लक्षण :-

सो विषाद चित चाहते उलटी कछु है जान ।।२.

वस्तु विचित्र अलंकार :-

मन मंदिर सुन्दर भरी आये जब नंदनंद ।
सुधा नाही चाही गहत मन महि आनंद ।।२६३।।
इहां नाही अधिक चोप । इह वस्तु विचित्र अलंकार ।३.

विषम अलंकार का लक्षण :-

नीकि की कीजे जतन होत बुरो फल आइ ।।
विषम अलंकृत कहत है करन कवि समुदाइ ।।४.

विलास अलंकार का लक्षण :-

पति विलोकि मन हरन के पूजी करत विभाव ।।
तासों कहत विलास है करन सुपंडित राव ।।५.

प्रमुख अलंकार :-

करन के अलंकार-विवेचन से ज्ञात होता है कि उनके प्रमुख अलंकार निम्न हैं --

दीपक, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, लेश, समाधि, ललिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, संदेह, दृष्टान्त, पूर्वरूप, विभावना, वक्रोक्ति, असंगति, विशेषोक्ति, विरोधाभास, प्रजायोक्ति, अलंकार हैं । अनुप्रास अलंकार की छटा हमें सम्पूर्ण ग्रन्थ में दिखाई देती है ।

अलंकार-लक्षण पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वास्तव में करन अत्यन्त विद्वान व पण्डित थे । उनके लक्षण में वे सभी बातें समाहित हैं जो एक -

---

१- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-७.
२- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-८.
३- ह०प्र०रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०-२४,२५.
४- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका), कवि करन, पृ०-८.
५- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका), कवि करन, पृ०-४.

विद्वान व पण्डित होने के लिये वांछनीय हैं। करन ने कतिपय ऐसे अलंकारों का भी उद्घाटन किया है जिनका विवेचन पूर्ववर्ती आचार्यों ने नहीं किया है। अतः करन को आचार्य की उपाधि से विभूषित किया जा सकता है। उनके काव्य से उनका पांडित्य-प्रदर्शन भी स्वतः ही होता है।

-----:o:-----

अष्टम अध्याय

नायक- नायिका भेद निरूपण

संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के अधिकांश आचार्यों ने रस को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। रसों के अन्तर्गत सर्वप्रमुख एवं प्रभावशाली तथा व्यापक शृंगार रस माना जाता है। इसीलिए सभी विद्वानों ने शृंगार रस को रसराज की उपाधि से अलंकृत किया है। डा०नगेन्द्र ने लिखा है--"अग्निपुराण शृंगार-तिलक और शृंगार-प्रकाश आदि में शृंगार को एकमात्र रस अथवा रसराज स्वीकार कर लिया गया था।[1] संस्कृत के ग्रन्थों की भांति हिन्दी ग्रन्थों में भी शृंगार रस की प्रधानता व सर्वात्मकता का वर्णन है। केशव, देव, पद्माकर आदि सभी कवि शृंगार की ही श्रेष्ठता का उल्लेख करते हैं।[2] आचार्यों के मतानुसार शृंगार का श्याम वर्ण माना गया है। इसके देवता विष्णु हैं।[3] शृंगार रस के आलम्बन विभाव नायक-नायिका हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय आचार्यों की प्रवृत्ति सभी विषयों के अंग, उपांग, भेद, प्रभेद निरूपण और विवेचन में लगी रही है। फलस्वरूप जहां काव्य के अंगों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किये गये वहां उन अंगों के उपांगों का भी विस्तृत विवेचन हुआ। शृंगार रस के विभाव, अनुभाव, संचारी भावों के विस्तृत विवेचन में विभाव पक्ष के अन्तर्गत आनेवाले नायिका-भेद का बहुत अधिक प्रचार हुआ। श्रीप्रभुदयाल मित्तल ने नायिका-भेद को काव्यशास्त्र के विशाल परिवार का उपांग मात्र ही कहा है।[4]

नायिका-भेद काव्यशास्त्र के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक विवेचन कहा जा सकता है, क्योंकि इसके बिना नाटक या काव्य में शृंगार रस के मूलाधार नायक और नायिका के चरित्र-चित्रण में अनुपयुक्त एवं अस्वाभाविक बात के कहने का भय था। अतएव नायिका-

---

१- रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता, ।पूर्वार्द्ध। डा०नगेन्द्र, पृ० १९६.

२- हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल और रीतिकाल, संधिकालीन प्रवृत्तियां, तृतीय प्रकरण शृंगार रस की महत्ता और उसकी व्यापकता।

३- शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० ८०.

४- ब्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद, श्रीप्रभुदयाल मित्तल, पृ० ८३.

भेद नारी की मनोदशा तथा विकारों का ज्ञान प्राप्त कराने में विशेष सहायक होता है। बिना नायिका-भेद कथन के काव्य-ग्रन्थों में पात्रों के स्वरूप चित्रण का स्वाभाविक वर्णन कठिन था। फलस्वरूप नायिका-भेद कथन की भी आवश्यकता अनुभव हुई। नायिका-भेद का निरूपण नाट्यशास्त्र तथा अभिनय से विशेषरूप से सम्बन्धित था, किन्तु कालान्तर में श्रव्यकाव्य में भी उसका निरूपण किया जाने लगा। डा०नगेन्द्र ने नायिका के भेद- प्रभेदों का आधार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक पुष्ट न मानते हुये भी स्वीकार किया है कि वह सर्वथा अपुष्ट भी नहीं कहा जा सकता।[१] वास्तव में नायिका-भेद का विवेचन नारी की किसी एक सर्वव्यापी निश्चित आंतरिक मनोदशा के आधार पर ही नहीं किया अपितु जीवन के आंतरिक एवं बाह्य विभिन्न आधारों को दृष्टि में रखते हुये ही नायिका के अनेकों भेद, उपभेदों का कथन किया गया है। नायिका-भेद का मूलाधार शृंगार-रस का विभावन व्यापार है जिसमें नायिकाओं के अनेक प्रकार के समान, असमान अन्तर आधारों की दृष्टि से, जो कहीं सामाजिक सम्बन्ध, कहीं स्वभाव, कहीं मनोदशा, कहीं काम प्रवृत्ति, कहीं आभ्यन्तर और शारीरिक प्रवृत्ति, कहीं केवल नायिका के प्रेम की न्यूनता या अधिकता पर ही आधारित है। इस प्रकार नायिका भेद का मूलाधार विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण हैं, जिनमें कुछ का सम्बन्ध नायिका की बाह्य दशा से अवश्य है। किन्तु सभी आधार नायक-नायिका की मूल-प्रवृत्ति से किसी न किसी रूप में निश्चित सम्बन्धित हैं।

स्त्री-पुरुष की समस्या मानव-जीवन की सबसे बड़ी जटिल पहेली कही जाती है। नायिका-भेद के द्वारा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्त्रियों की विभिन्न मनोदशाओंका चित्रण किया जाता है जिससे नारी विषयक ज्ञान होता है। नारी विषयक ज्ञान गृहस्थ जीवन की समस्याओं के समाधान में सहायक है। नारी प्रकृति का ज्ञान पुरुष के लिये दाम्पत्य-जीवन में अत्यन्त आवश्यक है। साहित्यकों के लिये भी नायिका-भेद का ज्ञान परमावश्यक माना जाता है, क्योंकि इसके आधार पर वे अपने नाटकों तथा काव्य ग्रन्थों में उनके शील, मर्यादा, स्वभाव आदि का समुचित ढंग से निर्वाह करने में सफल हो सके हैं। संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में नायिका-भेद का विवेचन पूरे मनोयोग से किया है।

---

१. रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० १८०.

नायिका -भेद की प्रवृत्ति का इतना व्यापक प्रभाव हुआ कि भक्त आचार्यों और कवियों ने भी मधुर रस (उज्ज्वल रस) की दृष्टि से कृष्ण-राधा के प्रेम विवेचन में विभिन्न नायिकाओं के भेदों का वर्णन किया। हिन्दी साहित्य में तो बड़े-बड़े प्रतिभाशाली कवियों ने अपनी प्रतिभा और शक्ति नायिका भेद के विवेचन में लगा दी और कई सौ वर्षों तक इस प्रवृत्ति की प्रधानता बनी रही। श्रृंगार रस का सारा वैभव कवियों ने नायिका-भेद के भीतर दिखाया।[1] अतएव स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि नायिका भेद सामाजिक दृष्टि से और साहित्यिक तथा काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त उपादेय और महत्वपूर्ण है।

भक्तिकालीन कवियों तथा भक्तों के द्वारा रची हुई नायिका-भेद सम्बन्धी रचनाएं भक्तियुग के प्रभाव से पूर्ण हैं, यही कारण है उनमें कवित्व तथा भक्ति-भावना का अधिक प्रभाव है। रहीम, केशव, सेनापति के युग तक भक्ति का प्रभाव पूर्णतः मन्द पड़ गया और श्रृंगार भाव का प्राधान्य हो चला। अतएव रहीम तथा केशव आदि के काव्य नायिका-भेद में भक्ति भावना का प्रभाव नहीं अपितु रीति-प्रवृत्ति एवं श्रृंगार प्रवृत्ति का प्रबल समर्थन मिलना आरम्भ हो जाता है जिस कारण इन कवियों की रचनाएं संधिकाल के अन्तर्गत आती हैं।

रहीम कृत "बरवै नायिका-भेद" तथा "नगर शोभा" में विविध प्रकार की नायिकाओं का वर्णन शुद्ध श्रृंगार की दृष्टि से किया गया है। "बरवै नायिका-भेद" की रचना अवधी भाषा तथा बरवै छन्द में हुई है। इसमें नायिका-भेद का वर्णन अत्यन्त सरल, सरस और स्पष्ट शैली में मिलता है। "बरवै नायिका-भेद" में कविवर रहीम ने सर्वप्रथम नायिका के स्वकीया, परकीया तथा सामान्य भेदों के अन्तर्गत स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा भेद तथा मुग्धा के अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना उपभेद करके ज्ञात यौवना के नवोढ़ा तथा विश्रब्ध नवोढ़ा नामक दो उपभेदों का वर्णन किया है।[2] परकीया नायिका को ऊढ़ा और अनूढ़ा नाम के दो भेदों में विभाजित किया है।[3] परकीया ऊढ़ा।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ सं० २३७.
२- रहीम रत्नावली सं०पं० मयाशंकर याज्ञिक, बरवै सं० ५-१२ तक.
३- ,, ,, ,, ,, ,, , बरवै सं० १३-१६ तक.

के - गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, मुदिता, कुलटा तथा अनुशयना ६ भेद किये हैं। गुप्ता को-भूत गुप्ता, भविष्य गुप्ता उपभेदों में, विदग्धा को-वचन विदग्धा तथा क्रिया-विदग्धा दो भेदों में एवं अनुशयना को प्रथम, द्वितीय, तृतीय नाम से तीन उपभेदों में विभाजित किया गया है।[1] फिर गणिका का कथन किया है ।[2] दशानुसार नायिका के तीन भेद किये गये हैं।[3] और फिर प्रोषित पतिका, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्कण्ठिता, वासक सज्जा, स्वाधीन पतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यत्प्रेयसी तथा आगत-पतिका इन दस नायिकाओं के प्रसिद्ध भेदों का मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा परकीया एवं गणिका उपभेदों सहित वर्णन किया है।[4] इसके पश्चात् उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा नायिका के तीन भेद किए हैं।[5] अन्त में नायक, दर्शन तथा सखीजन कर्म आदि का उल्लेख किया है।[6] नन्ददास ने रसमंजरी में नायिकाओं के केवल लक्षणमात्र ही लिखे थे, उदाहरण नहीं। किन्तु रहीम ने लक्षण न लिखकर केवल रोचक ढंग से उदाहरण ही लिखे हैं जिनमें उनकी कवित्व शक्ति और अनुभूति का प्रत्यक्ष पता चलता है। पंडित-मायाशंकर याज्ञिक ने इसकी प्रशंसा करते हुये इस छोटे से ग्रन्थ को साहित्य में विशेष आदर पाने के योग्य कहा है।[7] साथ ही प्रसिद्ध कवि मतिराम के काव्य पर रहीम का पूर्ण प्रभाव पड़ना तथा उनकी कविता को रहीम की कविता का ऋणी बताया है।[8]

१- रहीम रत्नावली सं०पं० मायाशंकर याज्ञिक, बरवै सं० १६-३२ तक.
२- ,, ,, ,, ,, ,, , बरवै सं० ३३.
३- ,, ,, ,, ,, ,, , बरवै सं० ३४-३६ तक.
४- ,, ,, ,, ,, ,, , बरवै सं० ४०-६२ तक.
५- ,, ,, ,, ,, ,, , बरवै सं० ६३-६५ तक, पृ० ५७-५८.
६- ,, ,, ,, ,, ,, , बरवै सं० ६६-११६ तक, पृ० ५८-६२.
७- रहीम रत्नावली भूमिका, पृ० २२.
८- ,, ,, ,, , पृ० २३.

रहीम की इस रचना का प्रकाशन सबसे पहिले "कवि वचन सुधा" में फिर "भारत जीवन" प्रेस ने इसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हुई हैं जिनमें एक प्रति शोध करते समय पं०मायाशंकर याज्ञिक को मिली थी। इसमें रहीम बरवै के साथ-साथ लक्षण स्वरूप मतिराम के "रसराज" के दोहे भी संकलित हैं। मतिराम ने ही यह संग्रह किया होगा, ऐसी सम्भावना विद्वानों द्वारा की गई है जो असम्भव भी नहीं प्रतीत होती, क्योंकि रहीम मतिराम से पहले ही हो चुके थे और कुछ समय तक उनके समकालीन भी रहे हैं।

नायक सम्बन्ध की दृष्टि से स्वकीया, परकीया और सामान्य ये तीन भेद किये हैं।[1] स्वकीया को मुग्धा, प्रौढ़ा नामक तीन उपभेदों में विभाजित करके प्रत्येक के फिर चार-चार उपभेद किये हैं। मुग्धा के नवल वधू, नवयौवना, नवल अनंगा तथा लज्जा प्रायरति, मध्या के आरूढ़यौवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूत मनोभवा और सुरति-विचित्र एवं प्रौढ़ा के समस्त रस को विदा, विचित्रविभ्रमा, अक्रमति तथा लुब्धापति इन चार-चार भेदों का उल्लेख किया गया है।[2] इन उपभेदों को केशव के परवर्ती मतिराम आदि आचार्यों ने स्वीकार नहीं किया है। धीरा, अधीरा तथा धीरा-अधीरा नामक तीन भेदों का वर्णन भी पृथक न होकर मध्या और प्रौढ़ा के साथ ही हुआ है। परकीया के ऊढ़ा और अनूढ़ा दो भेदों का वर्णन इस प्रकार किया है--

> परकीया द्वै भाँति पुनि, ऊढ़ा एक अनूढ़।
> जिन्हें देखि बस होत है, सज्जन मूढ़ अमूढ़।।[3]

अन्य आचार्यों की भाँति परकीया के अन्य ६ मुख्य भेदों का उल्लेख नहीं किया गया और न सामान्या या गणिका नायिका की ही चर्चा की गई है। नाट्यशास्त्र की पद्धति पर दशानुसार नायिकाओं के स्वाधीन पति का, उत्कण्ठा, वासक सज्जा, अभिसंधिता, खण्डिता, प्रोषित प्रेयसी, विप्रलब्धा तथा अभिसारिका नामक आठ भेद किये हैं।[4] इन आठों प्रकार

१- सु नायक की नायिका, ग्रन्थनि तीनि बखान।
   सुकिया परकीया अवर, सामान्य सुजान।। --रसिकप्रिया, तृतीय प्रकाश, छंद सं० १४ पृ०२६

२- रसिक प्रिया, तृतीय प्रकाश, छन्द संख्या-१७, २२, ४१, पृ० २७, ३१, ३६.

३- ,, ,, ,, ,, ,, संख्या-६८ पृ०-४२.

४- ,, ,, सप्तम प्रकाश, ,, संख्या-१-३ पृ०--८८.

की नायिकाओं को भोजकृत 'शृंगार-प्रकाश' के आधार पर प्रच्छन्न और प्रकाश दो-दो भेदों में विभाजित किया गया है। देव के अतिरिक्त अन्य हिन्दी के आचार्यों ने इन उपभेदों का वर्णन नहीं किया। अभिसारिका के स्वकीया अभिसारिका, परकीया-अभिसारिका, सामान्या अभिसारिका, प्रेमाभिसारिका ।प्रच्छन्न, प्रकाश। ६ उपभेदों में बांटा है।[1] अभिसारिका के इन ६ भेदों का परवर्ती कवियों में प्रचलन नहीं हुआ। शुक्लाभिसारिका तथा कृष्णाभिसारिका नामक भेद अवश्य प्रचलित भेद अन्य सम्भोग दुखिता, गर्विता तथा मानवती का भी वर्णन नहीं किया। अन्त में गुणानुसार उत्तमा, मध्यमा और अधमा नामक तीन प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख किया है।[2] इस प्रकार केशव की रसिक प्रिया के अन्तर्गत कुल ३६० प्रकार की नायिकाओं का वर्णन मिलता है - जैसा कि वे स्वयं कहते हैं--

प्रगट तीन-सौ साठ त्रिय, केशवदास बखानि ।[3]

साहित्य दर्पणकार ने नायक के स्वरूप का निरूपण करते हुये लिखा है-- "नायक वह है जो त्याग-भावना से भरा हो, महान कार्यों का कर्ता हो, कुल का महान् हो, बुद्धि, वैभव से सम्पन्न हो, रूप-यौवन और उत्साह की सम्पदाओं से सम्पन्न हो, निरन्तर उद्योगशील रहने वाला हो, जनता का स्नेह भाजन हो और तेजस्विता, चतुरता किंवा सुशीलता का निदर्शक हो[4]।" नायक के भी कई भेद हुआ करते हैं जैसे कि सर्वप्रथम 'नायक' के ये चार भेद हैं-- १- धीरोदात्त २-धीरोद्धत ३-धीर ललित ४- धीर प्रशान्त ।[5]

१- रसिक प्रिया -सप्तम प्रकाश, छन्द संख्या- २५-२६, पृ० ६८-१०२.

२- ,, ,, ,, ,, छन्द संख्या- ३८, पृ० १०३.

३- ,, ,, ,, ,, छन्द संख्या- ३८, पृ० १०३.

४- त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्त लोकस्ते जोवैदग्ध्यशीलवान्नेता ।। ३० ।। --साहित्यदर्पण: आचार्य विश्वनाथ
तृतीय:परिच्छेद:, प्र. सं. १४८।

५- धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च ।
धीर प्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः ।। ३१ ।।-- साहित्यदर्पण आचार्य विश्वनाथ,
तृतीय: परिच्छेद: , प्र. सं. १४८।

नायिका तीन प्रकार की हुआ करती हैं --

१- स्वीया

२- अन्या ।अथवा परकीया । और

३- सामान्या ।[१]

अधिकांश आचार्यों ने सर्वप्रथम नायिका-भेद का विस्तार से वर्णन किया है, तत्पश्चात् नायक-भेद का साधारण विवेचन किया है। संस्कृत में साहित्य-दर्पण तक सर्वप्रथम नायक-भेद को विवेच्य बनाया गया है और बाद में नायिका-भेद को।

केशव ने `काव्यालंकार` तथा `शृंगार तिलक` की परम्परा का अनुसरण किया है, इसलिए नायक-भेद को पहले स्थान दिया है, नायिका-भेद को बाद में। `रसमंजरी` से नवीन परम्परा का सूत्रपात हुआ। उसमें सर्वप्रथम नायिका को वर्ण्य-विषय बनाया गया है, नायक-भेद को पीछे। उसकी परम्परा में लिखे जाने वाले रीतिग्रन्थों में यही क्रम अपनाया गया। `भिखारीदास` के `रस-सारांश` में पहले नायिका-भेद तत्पश्चात् नायक-भेद को स्थान मिला है। और उन्हीं के `शृंगार-निर्णय` में पहले नायक भेद को, तत्पश्चात् नायिका-भेद को। इस प्रकार `भिखारीदास` ने दोनों परम्पराओं को अपनाया।

----- :-: -----

१- अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रिति।
नायक सामान्य गुणैर्भवति यथा संभवैर्युक्ता ।। ५६ ।।
--साहित्यदर्पण:, आचार्य विश्वनाथ,
तृतीय: परिच्छेद:, पृ. सं. १५५।

कवि करन ने अपने `बिहारी सतसई की टीका` नामक ह०ग्रन्थ में बिहारी द्वारा निर्देशित दोहों में नायक-नायिका भेदों का नाम निर्देश करते हुये कतिपय स्थलों पर उनके लक्षणों का भी निरूपण किया है। नायक-नायिका भेदों का नाम निर्देशित करने से तथा बिहारी कृत दोहों के उदाहरणों से नायक-नायिका भेदों के सम्बन्ध में करन का मत स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है।

संस्कृत के साहित्याचार्यों ने अवस्था के अनुसार नायिकाओं के आठ भेद बतलाये हैं। स्वाधीन पतिका, विरहोत्कंठिता, वासक सज्जा, कलहान्तरिता, खंडिता, प्रोषित पतिका, विप्रलब्धा तथा अभिसारिका।[१] भोजदेव, भूपाल तथा विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने इन्हीं भेदों का उल्लेख किया है। करन ने `बिहारी सतसई की टीका` में इनका वर्णन किया है, किन्तु संस्कृत आचार्यों द्वारा दिये लक्षणों के उदाहरणों की समानता के कारण यह निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता कि कवि करन ने किस आचार्य के ग्रन्थ के आधार पर अपने लक्षण दिये हैं। करन ने अभिसारिका का वर्णन करते हुये मध्या परकियाभिसारिका, मध्य अभिसारिका, प्रौढ़ा अभिसारिका, परकीया-अभिसारिका का उदहरण पृथक-पृथक दिया है। भोजदेव तथा भूपाल ने `अभिसारिका` का इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। विश्वनाथ ने अवश्य अपने `साहित्य-दर्पण` नामक ग्रन्थ में लिखा है कि कुलजा, वेश्या तथा दासी किस प्रकार अभिसार के लिए जाती हैं।

करन ने `स्वाधीन पतिका` का उदाहरण इस प्रकार दिया है —

सखी की उक्ति नायक प्रति ।।
है है लाल वानि नौ `स `र मैन ही पहिरीत ही ।
यह तरह दुति दौरी तुम्हारी कहूँ जौ नौ खौरी की माला-
सौप हिरि आनंदित भई रोमांच भयौ -
तुम्हे मानौ परसौ है तुम्हारे मिले कौ सुग्न भयौ ।[२]

१- स्वान्या साधारणास्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा। —दशरूपक, पृ०-४२.
अथ— नायिका त्रिविधा स्वान्या साधारण स्त्रीति।
—साहित्य दर्पण, परि० ३, का०सं०-५८.
सा च त्रिविधा स्वीया परकीया सामान्या चेति। — रस मंजरी, पृ०-४.

२- ह०ग्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-१२०.

विश्वनाथ के लक्षण का भी यही भाव है। विश्वनाथ के अनुसार 'स्वाधीन-पतिका' का पति उसके प्रेम आदि गुणों से आकृष्ट होकर सदा उसके पास ही रहता है।[1]

नायक की उक्ति नायिका प्रति ।।
अंग अंग प्रत्यंग मिलिवे की अकुलाति रहति है।
क्षण पि छोडीह बिना मन मै आसक्ति है।
तदपि सब अंग न मिलि वे कौ व्याकुल है ।।
यहां परकीया स्वाधीन पतिका है।[2]

करन ने 'प्रोषित पतिका' नायिका का उदाहरण इस प्रकार किया है--
इत कता विदेस मै पिर बसि व्याकुल होह ।।
सुमिर सुमिर गुन कहत गुन कथन कहा वे सोह ।।[3]

विश्वनाथ के अनुसार 'प्रोषित पतिका' वह नायिका है जिसका पति अनेक कार्यों से दूर देश गया हो और नायिका काम से पीड़ित हो रही हो।[4]

नायक का दूर देश जाना, मुबारक तथा मोजीलाल ने लिखा है। किन्तु करन ने नहीं लिखा है। कार्यवश जाने का उल्लेख केवल विश्वनाथ ही ने किया है।

करन ने 'प्रोषित प्रोषित पतिका' नायिका का उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है --

आज है कर बद कहीह तापि अौ सब छोड़त है।
कर नाही छोड़ति यह प्रयोक्त प्रोषित पतिका नाइक ।।[5]

१- 'कान्तो रतिगुणाकृष्टा न जहाति यदन्तिकम्।
विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यात स्वाधीन भर्तृका ।।७४।। --साहित्यदर्पण, पृ०सं०-१०५.

२- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका), कवि करन, पृ०सं०- १२०.

३- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका), कवि करन, पृ०सं०- २.

४- नाना कार्य वशाद्यस्या दूरदेशंगतः पतिः।
सा मनोभवदुःखार्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका ।।८४।।-- साहित्यदर्पण, पृ०सं०- १०६.

५- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका), कवि करन, पृ०-१२५.

करन के अनुसार "विप्रलब्धा" नायिका वह है जिसका प्रिय संकेत बताकर भी वहां नहीं पहुंचता और नायिका दुःख को प्राप्त होती है --

के जो भरी करनी केही ।
अध्यारी बनायिन नारी नदीऊ बाट ।
कैसी तुम्हारे प्रेम की बाधी बाई है ।[1]

विश्वनाथ के अनुसार "विप्रलब्धा" वह है जिसका प्रिय संकेत स्थल बताकर उसके पास नहीं आता और इस प्रकार वह नितान्त अपमानित होती है ।[2] भूपाल ने लिखा है कि "विप्रलब्धा" वह है जिसका प्रिय संकेत बताकर वहां नहीं पहुंचता तथा नायिका दुःख को प्राप्त होती है ।[3] भोजदेव ने कहा है कि "विप्रलब्धा" वह है जिसका प्रिय दूती को संकेत-स्थल बताकर तथा नायिका को बुलाने भेजकर भी उससे नहीं मिलता ।[4] स्पष्ट ही करन ने तीनों आचार्यों के लक्षणों के आधार पर "विप्रलब्धा" नायिका को समझाया है ।

इनके अतिरिक्त करन ने नायिकाओं के अन्य भेदोपभेद भी बताये हैं -- मध्या नायिका, प्रौढ़ा नायिका, मध्या अधीरा नायिका, मुग्धा नायिका, प्रौढ़ा-धीरा नायिका, बोध नायिका, प्रौढ़ा नायिका, मानिनी नायिका, विदग्धा नायिका, प्रोष्यत पतिका, परकीया आगत पतिका, समुनागत पतिका, परकीयाभिसारिका, मध्यापरकीयाभिसारिका, शुक्ल मध्या अधीरा, रूप गर्विता, प्रेम गर्विता, क्रिया-विदग्धा नायिका, विदिसमति-नायिका, प्रौढ़ा खंडिता नायिका, सात्विक नायिका, भौविंगि परकीया नायिका, गमिष्यति पतिका, सामान्या स्वाधीन पतिका, प्रौढ़ा-भविष्य पतिका ।

१- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-१३८.

२- "प्रियः कृत्वापि संकेतं यस्यानायाति संनिधिम् ।
विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता" ।।८३।। --साहित्यदर्पण, पृ०सं०-१०६.

३- कृत्वासंकेतमप्राप्ते दयिते व्यथिता तु या ।।९८।।
विप्रलब्धेति सा प्रोक्ता बुधैरस्यास्तुविक्रिया ।। --रसार्णव सुधाकर, पृ०सं०-३१.

४- "दूतीमहरह: प्रेष्य कृत्वा संकेतकं क्वचित् ।।१५।।
यस्या न मिलित: प्रेयान् विप्रलब्धेति तां विदुः ।
-- सरस्वती - कण्ठाभरण, पृ०सं०- ६२.

मध्या नायिका :-

करन ने मध्या नायिका का उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है --

सनेह संकोच भरे क्रिया रूप धर्मिक वादि तुल्य जोभिता ।
नेह संकोच भरे सप्पटात इसा उक्त सौ संग मै नाही ।।[१]

प्रौढ़ा नायिका :-

के विविध पराधीन बरनी से इसे मान अवस्था के -
भावनि को करति हू ।। प्रौढ़ा नायिका ।[२]

मध्या अधीरा नायिका :-

नाही छूटी वनि जहा विहार करति हौ ।।
तहा विहरौ मेरौ उर काहे कौ विहरति हो ।।[३]

प्रस्तुत उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि संस्कृत के आचार्यों के लक्षण करन के मत से साम्य रखते हैं । करन के उद्धरण का भी वही भाव है जो प्राचीन आचार्यों का है कि अधीरा विषम वचन बोलती है ।[४]

प्रौढ़ा धीरा नायिका :-

धैर्य गुण के आधार पर करन ने प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा, धीराधीरा तीन भेद किये हैं । धनंजय, शिंगभूपाल, विश्वनाथ, भानुदत्त आदि आचार्यों को भी यह भेद मान्य है । करन के अनुसार प्रौढ़ा धीरा नायिका का लक्षण निम्नवत् है --

पलनपीक अंजन अधर धरे महा डर भाल ।
आजु मिले सुनलीक हैम से बनि हौ लाल ।।[५]

१- स०/० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-११७.
२- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-११७.
३- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-११८.
४- वैयर्थ्यकृत्वयितं कोपात् धीरा परुषवादाम् ।-- दशरूपक, श्लोक-१०, पृ०-९४.
अधीरा परुषैर्वाक्यैः खेदयेत् वल्लभं रूषा ।।-- रसमं०, पृ०-२१.
५- स०/० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-७.

दोहा -- छाव गरब आलस उमगि मरे नैन मुसक्यान ।
राति रमी रतिहेत कहि औरै प्रभा प्रमान ।।२८।।[1]

करन कवि के अनुसार यहां पर प्रौढ़ा धीरा अधीरानायिका है ।

विश्वनाथ के धीरा तथा धीराधीरा भेदों के लक्षण क्रमशः इस प्रकार हैं ---

प्रगल्भा यदि धीरा स्याच्छन्नकोपाकृतिस्तदा ।
उदास्ते सुरते तत्र दर्शयन्त्यादरान् बहिः ।।[2]

तथा --

धीरा धीरा तु सोल्लुण्ठभाषितैः खेदयत्यमुम् ।।[3]

विश्वनाथ के उपर्युक्त लक्षण करन के इन्हीं भेदों के लक्षण से मिलते हैं । करन ने धनंजय, विश्वनाथ, भानुदत्त आदि आचार्यों द्वारा दिए प्रौढ़ा के ज्येष्ठा और कनिष्ठा उपभेदों को छोड़ दिया है ।

बोध नायिका :-

करन ने बोध नायिका को भी उदाहरण द्वारा बतलाया है । यह करन की मौलिकता है । किसी भी प्राचीन आचार्यों ने नायिका के बोध भेद को नहीं बतलाया है ।

रति की बतियाक ही सखी सखी मुसकाइ ।
कै कै सबैर हाटली चली मुसकाइ ।।[4]

मानिनी नायिका :-

पूर्ववर्ती आचार्यों ने मानिनी नायिका की कहीं भी चर्चा नहीं की है । मानिनी नायिका भेद का निरूपण कर करन ने मौलिकता का प्रदर्शन किया है । करन ने मानिनी नायिका का दोहा इस प्रकार दिया है --

----

१- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका), कवि करन, पृ०सं०-७.
२- सा०द०, परि०-३, का०सं०-१०६.
३- सा०द०, परि०-३, का०सं०-१०७.
४- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका), कवि करन, पृ०सं०-७.

ती पर वारी उरवसी सुन राधिका सुजान ।।

ता मोहन के उरवसी हो उर वसी समान ।।[१]

करन ने अन्य स्थानों पर भी मानिनी नायिका को इस प्रकार समझाने का प्रयत्न किया है --

कै है सखी चित दै दै के चकोर -

तौ देख्यों जो तौ जो वस्तु नाहीं बाह ।

माको जामें भूषण मुख ।।

चंद किरन है कैधि चिनगी है तैसे हीना हके -

तोहि देखी सुनहि के तेरी बाहि सुनै ।

सुनहि और उपाहि नाही दूर या क्रोध करयुं है ।।[२]

विदग्धा नायिका :-

करन ने विदग्धा नायिका का इस प्रकार समझाने का प्रयत्न किया है --

सखी की परिहास समहि मौन प्रतिके ।।

जा दिन ते आये ना दिन तें सब राखी नी-

मूछ मान मौनभि ठी सौ तुम्हारे निमित्त ।।[३]

प्रोषित नायिका :-

करन ने प्राष्यत पतिका का लक्षण इस प्रकार निर्देशित किया है --

परजत जान्यौ जाइ नहि परजरावि गौन ।।[४]

परकीया आगत पतिका :-

करन ने परकीया आगत पतिका को इस प्रकार बतलाया है --

१- ह०ग्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-७.
२- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-११८.
३- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१२३.
४- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१२४.

आयो है सो ज्यौं ज्यौं निसि आवत है।
त्यौं त्यौं आनंद मरी उराव सौर -
कळ उत्साहळक रति है टह न सरै तौ मै मिळो ।।[१]

परकीया आगत पतिका का निरूपण पूर्ववर्ती आचार्यों ने नहीं किया है। इस प्रकार नवीन एवं मौलिक भेदों का निरूपण करन की निजी कल्पना है जो उनके पांडित्य को प्रदर्शित करती है।

सगुनात पतिका :-

करन ने 'सगुनात पतिका' का उदाहरण इस प्रकार निरूपित किया है --
वाम बाहु फरकत मिलै जो हरि जीवन मूरि ।।
तौ तोही सौं भेटि हौं राखि दाहिनी दूरि ।।[२]

परकीया अभिसारिका :-

संस्कृत के सभी आचार्यों ने परकीया नायिका के दो भेद किए हैं - ऊढ़ा और अनूढ़ा करन को यह दोनों भेद मान्य नहीं है। परकीया अभिसारिका का उदाहरण निरूपण करते हुये करन ने लिखा है --
ध्यान आनटिग प्रान पति रहत मुदित दिन राति।
पलक कपति पुलकित पलत पलक पसीजत जाति ।।५६८।।[३]

मध्या परकीया अभिसारिका :-

मध्या परकीया अभिसारिका को करन कवि ने इस प्रकार बतलाया है--
के तुम्हारी भेजी नीव जो गवीदा सो रही -
मे मेचक भात लौमिला हवई आहि ये मैठ टाड रानी ।।[४]

१- ब०मु० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-११८.
२- ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१२५.
३- ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१२६.
४- ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१२२.

सूक्ष्म मध्या अधीरा :-

करन ने सूक्ष्म मध्या अधीरा को इस प्रकार निर्देशित किया है--

नाम सुनती ह्वाँ भयो तन औंर मन औंर,
दैव दैव मही चित चढ़र सौ कै चढ़ायै त्यौर ।।४७३।।

नायिका की उक्ति नायक-प्रति --

काहू अन्य नाइका को नाम लयो है सो सुनि नायक के,
सुमिरन प्रत्यक्ष को भयो तातै स्तम्भ सात्विक भयो नाइका,
जान्यौ के त्यौ चिढायो चित कछौ कैसे दयो ।
तातै सूक्ष्म मध्या अधीरा नायिका ।[1]

रूप गर्विता नायिका :-

करन ने 'रूपगर्विता नायिका' का लक्षण निरूपण इस प्रकार किया है--

कुच उतौत साठँ सुखि गनतिन नाहि विवाह ।।
परै रूपगुन की गर्विता फिरत अधिक उछाह ।।४७४।।[2]

क्रिया विदग्धा नायिका :-

करन ने नायिका भेद में क्रिया विदग्धा नायिका का भी निरूपण किया है ।[3]

विदेशगति नायिका :-

करन ने प्रोषित पतिका को ही विदेशगति नायिका नाम से सम्बोधित किया है ।[4]

प्रौढ़ा खंडिता (खंडिता) नायिका :-

भूपाल के अनुसार 'खंडिता' वह नायिका है जिसका प्रिय समय का उल्लंघन करके अर्थात् नियत समय पर न आकर दूसरी स्त्री के संभोग-चिन्हों से युक्त प्रात:काल-

---

१- उ०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-१३२.
२- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१३२.
३- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१३४.
४- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१४०.

जाये ।[1] करन ने प्रौढ़ा संज्ञिका नायिका का लक्षण निरूपण नहीं किया है, केवल नाममात्र किया है ।

सामान्या स्वाधीन पतिका :-

कवि करन ने सामान्या स्वाधीन पतिका का लक्षण इस प्रकार निरूपित किया है --

> औठ उचै हासी भही म मौहन की बात ।
> मौम नखहान पीठ पौं पिय तलमाणू पियतन ।।[2]

प्रौढ़ा भविष्यति पतिका :-

करन ने इसका नाममात्र किया है, लक्षण निरूपण नहीं किया है ।

गमिष्यति पतिका :-

करन ने गमिष्यति पतिका का बहुत सुन्दर ढंग से पाठकगण के सम्मुख प्रस्तुत किया है --

> के यह कहा है जो पथिक उठटि भजत है
> तातें तुम कैसे कहो ताते व समागम काडवी विंगिता
> ते गूंठा हेप गमिष्यति पतिका ।[3]

प्रौढ़ा स्वाधीन पतिका :-

करन ने प्रौढ़ा स्वाधीन पतिका के सम्बन्ध में इस प्रकार बतलाया है --

> के दौऊ न रीझि चितै चितै हिय में
> लेत पिय व तिहि बढ़ावति है नरी है चिते-
> वौ यह प्रेम की शृंगार मे काजे कारन ।।[4]

१- उल्लंघ्य समयं यस्या:प्रेमानन्दोप भोगवान् ।।१३०।।
भोगलम्भांकितप्रातरागच्छेत सहि खण्डिता ।" --रसार्णव सुधाकर,पृ०सं०-३२.

२- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-१३६.

३- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-१३२.

४- ह०प्र०बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-१२२.

क्रिया विदग्ध नायक :-

करन ने क्रिया विदग्ध नायक का निरूपण इस प्रकार किया है --

दीठ चौर मिठी बनी बोलन बोल बखान ।।
डरति छिपि पठाइ के झुकत छिय लपटाति ।।[1]

इसके अतिरिक्त करन ने मध्य अभिसारिका[2], दुखी परकीया[3] तथा प्रौढ़ा-अभिसारिका[4] का भी वर्णन किया है ।

नायक-नायिका भेद का नूतन वर्गीकरण :-

करन कवि ने नायक-नायिका भेद निरूपण में क्रमबद्ध कोई विशेष उल्लेख नहीं किया है । कतिपय नवीन नायिकाओं के नामों का उल्लेख मात्र किया है - जैसे बाल, मानिनी, रूपगर्विता, विदग्धा, प्रेमगर्विता, परकीया आगत पतिका, सगुनात पतिका तथा गमिष्यति पतिका नायिका ।

---:o:---

१- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका,) कवि करन, पृ०सं०-१२५.
२- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१३५.
३- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-२६.
४- ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१०२.

नवम् अध्याय

'आचार्य करन कवि का मूल्यांकन'

१- प्रमुख आचार्य कवियों के साथ करन के आचार्यत्व की तुलना:--

हिन्दी साहित्यमें रीतिग्रन्थोंकी रचनाका सूत्रपात करनके पूर्व हो चुका था, परन्तु उनमें काव्यके विभिन्न अंगों का सांगोपांग विवेचन नहीं हुआ था। काव्य के प्राय: सभी अंगों का सम्यक् और शास्त्रीय पद्धतिपर निरूपण कर हिन्दीमें रीति प्रवाह के लिए निर्बाध मार्ग खोलने का श्रेय करन को ही है। इसके उपरान्त इनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करनेवाले अनेक आचार्य कवि हुए जिन्होंने काव्य के प्राय:सभी अंगोंका विस्तृत विवेचन किया। ऐसे आचार्यों में चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति मिश्र, देव, दास तथा पद्माकर प्रमुख हैं। इस अध्याय में हम उपर्युक्त आचार्यों से आचार्य करन की तुलना करने का प्रयास करेंगे।

(क)-रस विवेचन के क्षेत्र में :-

चिन्तामणि तथा करन :

डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार चिन्तामणि त्रिपाठी की गणना केशव के बाद के सब से पहले आचार्यों में ही नहीं, सबसे पहले बड़े आचार्यों में है।[१] इनका जन्म काल संवत् १६६६ के लगभग और कविताकाल संवत् १७०० के आसपास माना जाता है।[२] हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इनके 'काव्यविवेक', 'कविकुल कल्पतरु', 'काव्य-प्रकाश', 'पिंगल', 'रामायण' तथा 'रस मंजरी' नामक रचनाओं का उल्लेख किया है। इनमें से चिन्तामणि का सबसे प्रमुख और प्रशंसनीय ग्रन्थ 'कविकुल कल्पतरु' है। इसका रचनाकाल संवत् १७०७ है। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में उन्होंने काव्यशास्त्र के गुण, अलंकार, दोष, शब्द-शक्ति, रस एवं नायिका-भेद आदि प्रमुख अंगों का विवेचन किया है। यहां इसी के आधार पर आचार्य करन से चिन्तामणि का मिलान किया गया है।

चिन्तामणि ने अपने 'कविकुल कल्पतरु' ग्रन्थ के पंचम् प्रकरण में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के अनन्तर भाव-भेद का साधारण कथन कर श्रृंगार रस के आलम्बन

१- हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ७३.

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २६६.

नायक-नायिका और उद्दीपन विभाव का सविस्तार वर्णन किया है। छठे और सातवें प्रकरण में क्रमश: अनुभाव, सात्विक और संचारी भाव तथा हाव-भाव का वर्णन किया गया है। आठवें में शृंगार रस तथा अन्य आठ रसों का उनके अंगों के सहित विशेष विवेचन है। सखी तथा दूती आदि का वर्णन उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आता है। चिन्तामणि ने 'सखी' तथा उनके कर्मों का वर्णन नहीं किया है। चिन्तामणि ने चार प्रकार के उद्दीपन बताये हैं, आलम्बन (नायक-नायिका) के गुण, इंगित (चेष्टा), अलंकृति और तटस्थ उद्दीपन।[1] गुणों के अन्तर्गत रूप-यौवन आदि का उल्लेख किया है। अलंकृति में आभूषण, हार आदि चेष्टा में हाव-भाव आदि का वर्णन किया गया है और तटस्थ के अन्तर्गत मलयानिल, चन्दनादि वस्तुओं को गिनाया है।[2] करन ने उद्दीपन के अन्तर्गत केवल उपवन, सुक, ससि, चन्दन तथा जल का उल्लेख किया है।[3]

चिन्तामणि ने सात्विक भावों के अन्तर्गत स्वेद, स्तंभ, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, आंसू और अप्रलीन का उल्लेख किया है और उन सबको केवल एक ही उदाहरण में दिखला दिया है।[4]

करन ने 'अप्रलीन' तथा 'स्तंभ' के स्थान पर प्रलय तथा 'पंमाविक' सातवां आठवां सात्विक माना है। उन्होंने इनका उदाहरण भी दिया है केवल नाम ही नहीं गिनाए हैं।

करन द्वारा उल्लिखित संचारीभावों की संख्या इक्तीस है और चिन्तामणि ने चौंतिस संचारीभाव माने हैं।

१- आलंबन गुन इंगितौ अलंकार ए तीन।
पुनि तटस्थ चौथो कह्यौ उद्दीपन ए बीन।
-- क०कु०त०, पृ० १६४, छं० ४१.

२- क०कु०त०, पृ० १६४, छं० ४२-४२.

३- उद्दीपन उपवन, सुक, ससि चंदन जल वाह ।।३३।।
--रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं० ४.

४- स्वेद तंभ रोमांच कहि, पुनि सुर भंग कहाइ।
बहुरि कम्प वैवर्ण्य गनि आंसू अप्रलीभाइ ।।५।।
आठ सात्विक ए कहत सज्जन मन मन आनि।
इनके देत उदाहरन एक कवित में मानि ।।६।। -- क०कु०त०, पृ० १६७.

करन के संचारीभाव असूया के स्थान पर चिन्तामणि ने ईर्ष्या शब्द का प्रयोग किया है। चिन्तामणि ने मोह, स्वप्न, मति, मरण तथा भय आदि संचारी-भावों का भी उल्लेख किया है। करन के २८ वें संचारी शान्त को छोड़कर शेष संचारीभाव दोनों आचार्यों के समान हैं। चिन्तामणि ने प्रत्येक के लक्षण और उदाहरण दिये हैं, उसी प्रकार करन ने लक्षणों को सोदाहरण प्रस्तुत किया है।

स्थायीभावों की संख्या एवं नाम भी दोनों आचार्यों के आपस में मिलते हैं। करन ने `स्थायीभाव` के लक्षण सोदाहरण दिये हैं। चिन्तामणि ने भी उनके स्वरूप का खूब खोलकर वर्णन किया है।[1] चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावसन्धि तथा भावशबलता[2] आदि का करन ने भी वर्णन किया है। हावों के अन्तर्गत चिन्तामणि ने भाव, हाव, माधुर्य, हेला, धर्म, लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित, कुतूहल, चकित, विहृत और हास[3] इन अठारह का उल्लेख उनके लक्षण और उदाहरण सहित किया है। इनमें भी करन के `विधुत`, `तपन`, `विलोक`, `मद`, `विच्छेप` तथा `मोद` हाव नहीं है। करन के वर्णन से इसमें भाव, हाव, माधुर्य, धर्म, बिब्बोक, कुतूहल, चकित, विहृत और हास अधिक है।

श्रृंगार रस के दो भेद, संयोग और वियोग दोनों आचार्यों को ही मान्य हैं, चिन्तामणि वियोग श्रृंगार के चारों भेदों, पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुणा को मानते हैं किन्तु करन ने प्रवास के स्थान पर `भाविक` विप्रलम्भ श्रृंगार भेद को अपनाया है। करन ने विरह, ईर्ष्या, शाप तथा पूर्वानुराग विप्रलम्भ श्रृंगार के भेदों को स्वीकार किया है।

`पूर्वानुराग` के अन्तर्गत विरह की स्वीकृत दश दशाओं `मान` के `लघु`, मध्यक और गुरु भेदों तथा मानमोचन के छ:उपायों का वर्णन चिन्तामणि ने किया है किन्तु करन ने इसका उल्लेख नहीं किया। चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित `मान` के अन्य दो भेदों प्रणय तथा ईर्ष्या मान[4] का करन ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

१- क० कु० तरु, पृ० ८७.

२- क० कु० तरु, पृ० २१७-२१६.

३- क० कु० तरु, छं० ९-२.

४- क० कु० तरु, छं० ५६.

चिन्तामणि के बतलाए हुए `प्रवास` के भेदों `भविष्य` और `भूत`[1] को करन ने छोड़ दिया है।

विभिन्न रसों का वर्णन करते हुए करन ने प्रत्येक रस का लक्षण उदाहरण सहित संक्षेप में किया है। साथ ही करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत - इन छः रसों के कपोत, अरुण, गौर, श्याम, नील तथा पीत वर्णों का भी उल्लेख किया है। करन ने इन रसों के देवताओं का भी सविस्तार वर्णन किया है। चिन्तामणि ने प्रत्येक रस का लक्षण देते हुए उसके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव तथा रस-विशेष के वर्ण और देवता का सविस्तार वर्णन किया है। चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत- इन पांच रसों के वर्ण करन के समान ही हैं।

चिन्तामणि ने हास्य रस के छः भेदों स्मित, हसित, विहसित, उद्हसित, अपहसित तथा अतिहसित का उल्लेख किया है और साथ ही यह भी बतलाया है कि उत्तम कोटि के लोग `स्मित` और `हसित` प्रकार की हंसी हंसते हैं, मध्यम कोटि के लोग `विहसित` और `उद्हसित` प्रकार की तथा अधम कोटि के `अपहसित` और `अतिहसित` प्रकार की[2]। करन ने इन बातों का उल्लेख नहीं किया है।

चिन्तामणि ने वीर रस के तीन भेदों युद्धवीर, दानवीर और दयावीर[3] का ही उल्लेख किया है। करन ने इसके अतिरिक्त चौथे भेद धर्मवीर को भी माना है। करन ने इन भेदों को लक्षण सहित समझाया है।

चिन्तामणि और करन दोनों आचार्यों के अधिकांश लक्षण भिन्न हैं। इस प्रकार के कुछ लक्षण यहां प्रस्तुत किये जाते हैं ---

रस अनुकूल विभावर को भाव कहत कवि गोत।
इक मानस सारीर इक है विध होत उदोत ।।८।।
----रस कल्लोल, कवि करन, पृ०-१.

१- क० कु० तरु, छं० ८१.
२- क० कु० तरु, छं० ६३-६७.
३- क० कु० तरु, पृ० २०५-२०७.

मन विकार कहि भाव सों बरन वासनारूप ।
विविध ग्रन्थ करता कहत ताको रूप अनूप ।।
--- (का०कु० तरं०, छं० ५०)

हेला का लक्षण :-

प्री० केस तिय रत संग पति सो दीठी देह ।
हेला तासो कहत है सुरत हिये हर छेह ।। १७६।।
--(रस कल्लोल, कवि करन, पृ० १७)

जहां देह दृग भौंह मुख इंगित अति अधिकात ।
अधिक प्रगट मन भाव ते हेला सो कहि जात ।।
--(का०कु० तरं०, छं० १७)

पूर्वानुराग का लक्षण :-

प्रीतिवंत नंदलाल की जवति मिली उदार ।
विरह भरति तब ते तहां पकर चाढ़ी विकार ।। ५७।।
--(करन कवि, रस कल्लोल, पृ० ५)

होइ मिलन ते प्रथम ही सो पूरव अनुराग ।।
--(का०कु० तरं०, छं० १२)

शृंगार रस का लक्षण :-

रतिस्थाई प्रगटे जहां तिय पिय मिलत विभाव ।
दंपा विलोकन वाद दे ते सब है अनुभाव ।। ३७ ।।
मोहादिक जे होत है ते संचारि जान ।
इनते होत सिंगार रस कविजन करत बखान ।। ३८ ।।
-- (रस कल्लोल, कवि करन, पृ० ४)

जामें थाई रति सुनौ मन की लगन अनूप ।
चिन्तामणि कवि कहत है सो शृंगार सरूप ।।
-- (का० कु० तरं०, छं० १)

मतिराम तथा करन :-

यहां 'रसराज' के आधार पर ही करन की मतिराम से तुलना की गई है। मतिराम ने अपने 'रसराज' नामक ग्रन्थ में श्रृंगार रस तथा उसके विभिन्न अवयवों का ही निरूपण किया है। अन्य रसों का वर्णन इस ग्रन्थ में नहीं है। श्रृंगार नायक-नायिका का आलम्बन प्राप्त करके होता है। इस कारण यहां नायक-नायिका भेद का भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।[1]

करन ने भाव का लक्षण किया है।[2] मतिराम ने नौ सात्विक भाव माने हैं, यथा स्तम्भ, स्वेद, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय तथा जंभा।[3] उन्होंने इन सबके लक्षण उदाहरण सहित लिखे हैं। मतिराम ने लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक, ललित और विहित आदि दस हावों का वर्णन किया है (रसराज छं० ३४८-३६६)। करन ने इनके अतिरिक्त विधुत, तपन, मद, विक्षेप, मोद, हेला का उल्लेख किया है। विहित को छोड़ दिया है। करन द्वारा उल्लिखित व्यभिचारी एवं स्थायीभावों का मतिराम ने कोई वर्णन नहीं किया है। नायिका-भेद तथा रस के अवयवों का निरूपण करते हुए कुछ भेदों तथा अवयवों के लक्षण केवल मतिराम ने ही दिए हैं, करन ने नहीं दिए हैं और कुछ के लक्षण करन ने ही दिए हैं, मतिराम ने नहीं दिए हैं।

वियोग श्रृंगार के तीन भेदों पूर्वानुराग, मान और प्रवास का मतिराम ने निरूपण किया है (रसराज, छं० ३८१) किन्तु करन ने प्रवास के स्थान पर 'भाविक' विप्रलम्भ श्रृंगार को अपनाया है। करन ने विरह, ईर्ष्या, श्राप तथा पूर्वानुराग

१- होत नायका नायकहिं आलंबित सिंगार।
तातें बरनौं नायका-नायक मति अनुसार।। -- रसराज, पृ० २७३, छंद-४.

२- रस अनुकूल विकार को भाव कहत कवि गोत।
इक मानस सारीर इक है विध होत उदोत।।९८।।
स्थाई जो संचारीया दुविधि मानसिक मान।
कहि विकार सारीर सब सात्विक भाव बखान।।९९।।
—रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१.

३- स्तंभ, स्वेद, रोमांच, सुरभंग, कंप, वैवर्ण।
आंसू औरो प्रलय कहि, आठौं ग्रंथनि वर्ण।। --रसराज, पृ० ३३८, छं० ३१४.
जूंभा कौं कवि कहत हैं नवयों सात्विक भाव।
उपज आलस आदि तें, बरनत सब कविराव।। —रसराज, पृ० ३४३, छं० ३३६.

विप्रलम्भ शृंगार के भेदों को स्वीकार किया है। 'मान' के भेदों लघु,मध्यम और गुरु का मतिराम ने विवरण दिया है किन्तु करन ने इनका उल्लेख नहीं किया। मतिराम ने अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुण-वर्णन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि तथा जड़ता आदि वियोग की नौ दशाओं का वर्णन किया है।[१] करन ने इनका उल्लेख नहीं किया है।

दोनों आचार्यों द्वारा दिये अधिकांश लक्षणों में कुछ अन्तर अवश्य परिलक्षित होता है, फिर भी प्राय: भाव एक ही है। कुछ इस प्रकार के लक्षण नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं -------

लीला हाव का लक्षण :-

> डरै करत अपराध नहिं करै कपट की रीति।
> बचन-क्रिया में अति चतुर शठ नायक की रीति।। --रसराज,छं० २५०.
> बोलन चलन चितनि की बहुत भाति कर प्रतीति।
> करै जो पिय को स्वांग तिय सो लीला की रीति।।५६।।
> --(रस कल्लोल, करन कवि, पृ०सं० १५)

[illegible]:

विलकिंचित हाव का लक्षण :-

> हरष गरब,अभिलाष, श्रम, हास, रोष अरु भीति।
> होत एक ही संग है विलकिंचित यह रीति।।
> --(रसराज, छं० ३६२)
> होत जहां इक बारही डर हांसी अरु रोस।
> विलकिंचित तासो कहत कवि कोविद निरदोस।। ५७।।
> --(रस कल्लोल, कवि करन,पृ०सं० १५)

१- होत वियोग सिंगार में प्रगट दसा नव जानि।
प्रथम कहि अभिलाष पुनि चिंता, स्मृति बखानि।।
गुन बरनैं, उदवेग पुनि कह प्रलाप उन्माद।
व्याधि बहुरि जड़ता कहत कवि-कोविद अविवाद।।
-- रसराज, पृ० ३५३, छं० ३६८-३६६.

देव तथा करन :-

देव ने सभी रसों का सम्यक् विवेचन मुख्यत: `शब्द-रसायन` तथा `भवानी-विलास` में किया है। `भावविलास` में सब रसों के सार शृंगार रस[1] तथा उसके विविध अंगों का सांगोपांग वर्णन किया गया है, अन्य रसों के केवल नाम ही गिनाए गए हैं। नायिका-भेद भावविलास, भवानीविलास, रसविलास आदि ग्रन्थों में सविस्तार वर्णित है। यहां भावविलास, भवानीविलास, रसविलास आदि ग्रन्थों के आधार पर आचार्य करन की देव से तुलना की गई है।

करन और देव दोनों के अनुसार स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव तथा संचारीभाव `भाव` के भेद हैं। देव ने `हावों` को भी भाव का एक भेद ही बतलाया है।[2] करन ने हावों का निरूपण स्वतन्त्र रूप से किया है। देव ने `भावविलास` तथा `रसविलास` ग्रन्थों में स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, वेपथु, स्वरभंग, वैवर्ण्य, आंसू तथा प्रलय - इन आठ सात्त्विक भावों का वर्णन किया है। `भवानी-विलास` में `प्रलय` के स्थान पर `मूरछा` किया है।[3] स्तम्भ तथा वेपथु को छोड़कर करन ने कंप, पंमाविक तथा रोमांच और जोड़ दिये हैं, शेष भेद दोनों आचार्यों के एक ही हैं। देव ने संचारी भावों के दो भेद माने हैं, शरीर तथा आन्तर[4] अथवा तनसंचारी और मनसंचारी। इस प्रकार देव के अनुसार स्तम्भादि सात्त्विक भाव तथा निर्वेदादि संचारीभाव क्रमश: तन संचारियों तथा मन संचारियों के अन्तर्गत आते हैं। करन ने इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। करन के अनुसार संचारियों की

१- नवरस सार सिंगार रस, जुगल सार सिंगार। — शब्द रसायन, पृ० ३०.
सकल सार सिंगार है सुरस माधुरी धाम ।। -- भावविलास, पृ० ४४.

२- थितिभाव अनुभाव अरु कहौं सात्त्विकी भाव।
संचारी और हाव ये रस कारन आठ भाव ।। -- भवानीविलास, पृ० ३, छं० १४.

३- स्तम्भ स्वेद रोमांच अरु वेपथु अरु स्वरभंग।
विबरन आंसू मूरछा ये सात्त्विक रस अंग ।। — भवानीविलास, पृ० ८, छं० ३०.

४- द्वै सारीर रु आंतर, द्विविध कहत भरतादि।
स्तम्भादिक सारीर अरु, आंतर निर्वेदादि ।। — भावविलास, पृ० २१.
कायक ध्रु सात्त्विक अरु मानस निर्वेदादि।
संचारी सिंगार के भाव कहत भरतादि ।। — भवानीविलास, पृ० ८, छं० ३२.

संख्या ३१ है। देव ने संचारियों अथवा व्यभिचारियों की संख्या ३४ मानी है। करन ने निर्वेद, ग्लानि, असूया, शंका, मद, श्रम, आलस्य, चिन्ता, दीनता, स्मृति, व्रीडा, जड़ता, हर्ष, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, आवेग, निद्रा, अपस्मार, अमर्ष, सुप्त, विबोध, त्रास, अवहित्था, उग्रता, व्याधि, धैर्य, शान्त, तर्क, उन्माद, चपलता माने हैं। देव ने व्रीडा, निंदा, विषाद, विवाद तथा आशंका शब्दों के स्थान पर क्रमशः लाज, असूया, दुःख, अबोध, उपालम्भ तथा तर्क शब्दों का प्रयोग किया है। देव द्वारा उल्लिखित 'वितर्क' के अवान्तर भेदों विप्रतिपत्ति, विचार, संशय और अध्यवसाय (भवानीविलास, पृ० ५७) तथा 'त्रास' के दो रूपों 'त्रास' (जो अकस्मात् उत्पन्न होता है) और 'भय' (जो पूर्वापर के विचार से उत्पन्न होता है) को भी करन ने छोड़ दिया है। देव ने केवल दस हावों का उल्लेख किया है।[1] करन ने विधुत, तपन, मद, विक्षेप, मोह तथा हेला का भी वर्णन किया है तथा विहित नामक देव स्वीकृत हाव को छोड़ दिया है। अतः इस प्रकार करन ने कुल पन्द्रह हावों का उल्लेख किया है।

देव ने श्रृंगार रस के भेदों संयोग एवं वियोग के अन्य भेद प्रकाश संयोग और प्रच्छन्न संयोग तथा प्रकाश वियोग और प्रच्छन्न वियोग का उल्लेख किया है।[2] 'वियोग-श्रृंगार' के चार भेदों विरह, ईर्ष्या, श्राप तथा पूर्वानुराग का उल्लेख रस कल्लोल (पृ० ५) में मिलता है। देव ने 'भवानीविलास' में वियोग श्रृंगार की चौथी अवस्था 'करुण' के स्थान पर 'संयोग' मानी है। इनके अनुसार संयोग आनन्दमय होता है और वह वियोग के बीच में आता है। प्रथम अवस्था पूर्वानुराग की होती है जिसके अनन्तर अभिलाषादि दस वियोग की दशाएं आती हैं। और फिर संयोग होता है जिसके

१- पहिलें लीला हाव, बहुरि सुविलास बरनिये।
तातें कहु बिछित्ति, बहुरि विभ्रम कहि गनिये।।
किलकिंचित तब कह्यो, तबै मोटाइतु मानहु।
तातें कहु कुटमित, बहुरि बिब्बोक जानहु।।
कविदेव कहैं फिर ललित कहु, तातें बिहित कहैं सरस।
इहि भांति बिबिध बिधि बिबुध बर, बरनत कबिबर हाव दस।।
---भावविलास पृ० ७०, भवानीविलास पृ० ८१, छं० ३३, ३४ तथा
रसविलास पृ० ८२, छं० ६.

२- द्वै प्रकार सिंगार रस, है संजोग वियोग।
सो प्रच्छन्न प्रकाश करि, कहत चारि बिधि लोग।। ---भावविलास, पृ० ६८.

बाद मान, प्रवास और संयोग की अवस्थाएं (भवानी विलास पृ० १२) होती हैं। करन ने यह वर्णन छोड़ दिया है। पूर्वानुराग के अन्तर्गत दस दशाओं, मान के गुरु, मध्यम और लघु भेदों तथा मान-मोचन के उपायों का निरूपण देव ने किया है। `रस विलास` में देव ने `मरण` को छोड़कर प्रत्येक काम-दशा के अनेक भेद कर डाले हैं यथा - अभिलाषा के पांच भेद -- श्रवणाभिलाषा, उत्कंठाभिलाषा, दर्शनाभिलाषा, लज्जाभिलाषा तथा प्रेमाभिलाषा (पृ० ८८, छं० ३०) चिन्ता के चार भेद -साधारण -चिन्ता, गुप्त चिन्ता, संकल्प-चिन्ता और विकल्प-चिन्ता (पृ० ९० छं० ३६), स्मरण के आठ भेद- स्वेद-स्मरण, स्तम्भ-स्मरण, रोमांच-स्मरण, कंप-स्मरण, स्वरभंग-स्मरण और प्रलय-स्मरण (पृ० ९१, छं० ४१) गुणकथन के चार भेद- हर्ष गुण-कथन, ईर्ष्या गुण-कथन, विमोह गुण-कथन और अपस्मार गुण-कथन (पृ०९६ छं० ५३) उद्वेग के तीन भेद - ज्ञान प्रलाप, वैराग्य-प्रलाप, उपदेश प्रलाप, प्रेम प्रलाप, संशय प्रलाप, विभ्रम प्रलाप और निश्चय प्रलाप (पृ० १००, छं० ६४), उन्माद के चार भेद - मदनोन्माद, मोहोन्माद, विस्मरणोन्माद और विक्षेपोन्माद (पृ० १०३, छं० ७३) तथा व्याधि के तीन भेद - संताप व्याधि, ताप व्याधि और पश्चाताप व्याधि (पृ० १०६, छं० ८१) । करन ने इन सभी उपभेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। `भावविलास` में वर्णित करुणात्मक वियोग के तीन भेद- लघु, मध्यम और दीर्घ भी करन को मान्य नहीं हैं।

करन ने नौ रसों का कथन किया है। रसों की संख्या तो देव ने भी नौ ही मानी है।[1] किन्तु उन्होंने काव्य और नाटक में रसों की संख्या का भेद स्वीकार किया है।[2] देव द्वारा निर्दिष्ट रस के अलौकिक तथा लौकिक भेद (भावविलास, पृ० ६५) करन ने नहीं माने हैं। देव ने `भवानीविलास` तथा `शब्दरसायन` में अन्य रसों का निरूपण किया है। विभिन्न रसों के ~~सम्बन्ध~~- पारस्परिक सम्बन्ध को दृष्टि में रखते हुए `भवानी विलास` तथा `शब्दरसायन` दोनों ग्रन्थों में देव ने दो भिन्न स्थापनाएं की हैं। पहली स्थापना के अनुसार मुख्य रस तीन माने गए हैं, श्रृंगार, वीर

१- नौ रस नव-विधि विबुध कवि,बरनत मत प्राचीन। --शब्दरसायन, पृ० २८.

२- यहि भांति आठ विधि कहत कवि, नाटक मत भरतादि सब।
बरु सांत यतन मत काव्य के, लौकिक रस के भेद नव।।
-- भावविलास, पृ० ६८.

तथा शान्त। शेष छः रस इन तीनों के ही आश्रित हैं। हास्य और भय शृंगार के आश्रित हैं, करुण और रौद्रवीर के तथा अद्भुत और बीभत्स शान्त के[1]। आगे चलकर देव वीर और शान्त का भी शृंगार में ही अन्तर्भाव कर देते हैं और इस प्रकार उसे रसराज ठहराते हैं।[2]

इस मत को देव ने 'शब्दरसायन' में दूसरे ढंग से प्रतिपादन किया है। शृंगार रस के दो भेद हैं, संयोग तथा वियोग। इनमें संयोग के अन्तर्गत हास्य, वीर और अद्भुत आ जाते हैं और 'वियोग' के अन्तर्गत रौद्र, करुण और भयानक तथा बीभत्स और शान्त का दोनों में अन्तर्भाव हो जाता है (शब्द रसायन, पृ० ५८)। करन ने भी अन्य रसों को शृंगार के ही अन्तर्गत मानते हुये शृंगार को ही रसराज माना है। देव की दूसरी स्थापना के अनुसार मुख्य रस चार होते हैं, शृंगार, वीर, रौद्र और बीभत्स। शृंगार से हास्य की उत्पत्ति होती है, रौद्र से करुण की, वीर से अद्भुत की और बीभत्स से भयानक की।[3] 'शान्त' को यहां छोड़ दिया गया है। करन को यह सिद्धान्त मान्य नहीं है। देव ने हास्य रस के तीन भेदों उत्तम, मध्यम और अधम का उल्लेख किया है (भवानी विलास, छं० २५)। करन ने हास्य रस के भेदों का उल्लेख नहीं किया है। करन ने अन्य रसों के अवान्तर भेदों का कोई वर्णन नहीं किया है। देव ने वीर, करुण तथा शान्त रस के भेदों के उदाहरण भी दिए हैं।

१- तीनि मुख्य नौ हूं रसनि द्वै द्वै प्रथम निलीन।
प्रथम मुख्य तिन तिनहुं मे दोऊ तेहि आधीन।।
हास्य भय अरु सिंगार, संग रौद्र करुन संग बीर।
अद्भुत अरु बीभत्स संग शान्तहु बरनत धीर।।
--भवानीविलास, पृ० १०८, छं० २३,२४ तथा शब्दरसायन, पृ० ३१ (पाठान्तर) से.

२- वे दोऊ तिन दुहुनि जुत बीर सान्त रस आह।
अंग होत सिंगार के तातें सो रसराइ।।
--भवानीविलास, पृ० १०८, छं० ५५ तथा शब्दरसायन, पृ० ३१ (पाठान्तर) से.

३- होत हास्य सिंगार ते, करुण रौद्र ते जानु।
वीर जनित अद्भुत कहौ, बीभत्स ते भयानु।।
-- शब्द रसायन, पृ० ५७.

देव ने तीन प्रकार के `वीर` का उल्लेख किया है, युद्ध वीर, दान वीर, तथा दया वीर (शब्द रसायन, पृ० ४१)। `करुण` के देव ने पांच उपभेद किए हैं, करुण, अति करुण, महा करुण, लघु करुण और सुख करुण (शब्द रसायन, पृ० ३८)। `वीभत्स` में जुगुप्सा के दो भेद देव ने बतलाए हैं, शारीरिक घृणा और ग्लानि (मानसिक)[१]।

करन ने भी `वीर` रस का सोदाहरण उल्लेख किया है। इन्होंने चौथे भेद `धर्मवीर` का भी उदाहरण सहित उल्लेख किया है।

देव ने `भवानी विलास` में शान्त रस के दो विभाग किए हैं --भक्तिमूलक शान्त तथा शुद्धशान्त। इनमें से पहले के तीन अवान्तर भेद किए गए हैं, प्रेम-भक्ति, शुद्ध भक्ति, तथा शुद्ध प्रेम (भवानी विलास, छं० ६-१२)। `शब्दरसायन` में शान्त के केवल एक ही भेद शुद्ध शान्त (पृ० ४६) का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त रौद्र, भयानक और अद्भुत के भी देव ने भेद किये हैं। `शब्द रसायन` में `रसदोष` के अन्तर्गत देव ने रस के सरस, नीरस, स्वनिष्ठ, परनिष्ठ, उदास आदि कुछ और भेद भी दिए हैं, (शब्द रसायन, पृ० ५०) जो करन ने छोड़ दिये हैं। देव ने विरोधी रसों के उदाहरण दिए हैं। करन ने इनका उल्लेख नहीं किया है।

तुलना करने पर ज्ञात होता है कि दोनों आचार्यों द्वारा दिए अधिकांश लक्षण परस्पर नहीं मिलते हैं। ऐसे कुछ लक्षण नीचे दिये जाते हैं --

<u>विब्बोक हाव का लक्षण :-</u>

प्रिय अपराध धनादि मद, उपजै गर्व्व की बारु।
कुटिल डीठि अवयव चलन, सो विब्बोक विचारु ।।
--(भावविलास, पृ० ७६)

करत अनादर कपट मय जहां नेह ते नार।
ताह कहत विब्बोक सब कवि कोविद निरधार ।। ७१ ।।
--(रसकल्लोल, पृ० ९७)

१- वस्तु घिनौनी देखि सुनि, घिन उपजै, घिन मांहि।
घिन बाढ़ै बीभत्स-रस, चित की रुचि मिटि जांहि ।।
निंद्य-कर्म करि निंद्य-गति, सुनै कि देखै कोय।
तन संकोच, मन संभ्रमन, द्विविध जुगुप्सा होय ।।
--शब्द रसायन, पृ० ४३-४४ तथा भवानी विलास, पृ० ११५, छं० ५८.

अनुभाव का लक्षण :-

जिनकौं निरखत परस्पर, रस कौ अनुभव होइ ।
इनहीं कौ अनुभाव पद, कहत सयाने लोइ ।।
आपुहि ते उपजाय रस, पहिले होंहि विभाव ।
रसहिं जगावें जो बहुरि, तौ तेऊ अनुभाव ।।
-- (भावविलास, पृ० १४)

रति स्थाई प्रगटे जहां तिय पियमिसत विभाव ।
दवां विलोकन आद दे ते, सब है अनुभाव ।। ३७ ।।
--(रस कल्लोल, पृ०सं०-४)

कुछ लक्षण ऐसे भी देखने में आते हैं जिनके भावों में थोड़ा बहुत ही अन्तर है, जैसे कुट्टमित हाव का लक्षण ।

कुट्टमित का लक्षण :-

उरन पान नीवी छुवत झूठे रुषी होइ ।
सुष पावै तन मन तरुन कहत कुटंमित सोइ ।। १८३ ।।
--(रस कल्लोल, पृ० १८)

कुच ग्रहन रदपान तें, उतकण्ठा अनुराग ।
दुखहू में सुख होइ जहं, कुटमित कहें समान ।।
--(भावविलास, पृ० ७५)

दास तथा करन :-

दास ने 'शृंगार निर्णय' (रचनाकाल संवत् १८०७)[१] में शृंगार रस तथा उसके विभिन्न अंगों का वर्णन किया है । नायक-नायिका शृंगार रस के आलम्बन और सखी, दूती आदि उद्दीपन हैं । अतएव 'शृंगार निर्णय' में नायक-नायिका भेद, सखी, दूती आदि का वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया गया है । शृंगार से इतर रसों का निरूपण इस ग्रन्थ में नहीं हुआ है ।

१- संवत् विक्रम भूप को अठारह से सात ।
माधव सुदि तेरस गुरौ अरवर थल विख्यात ।। --शृंगार निर्णय,पृ० २,छं० ४.

दास ने 'उद्दीपन' विभाव का लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही दिया है, परन्तु करन ने लक्षण और उदाहरण दोनों दिए हैं। दास ने आठ प्रसिद्ध सात्विक भावों, स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, सुरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलय आदि को 'अनुभाव' के अन्तर्गत ही माना है।[१] करन ने 'स्तम्भ' के स्थान पर 'पंमादिक' को गिनाकर इन आठों को 'भाव' के प्रकारों में माना है तथा प्रत्येक सात्विक भावों का उदाहरण सहित उल्लेख किया है। दास ने व्यभिचारी भावों का सामान्य लक्षण न देख कर उनके नाम एक छन्द में गिना दिये हैं। उन्होंने व्यभिचारी की संख्या तेंतीस मानी है (शृंगार निर्णय, छं० २३८)। करन ने 'व्यभिचारी भाव' का लक्षण दिया है और उनकी संख्या ३१ बतलाई है। दासकृत मोह, मति तथा मरन को उन्होंने छोड़ दिया है तथा शान्त ' का उल्लेख किया है। दास ने 'स्थायीभाव' का लक्षण नहीं दिया है। दास ने केवल शृंगार रस के स्थायी भाव 'प्रीति' का ही उल्लेख किया है (शृंगार निर्णय, छं० २४०)। करन 'स्थायी भाव' का लक्षण देते हुये शृंगार रस के स्थायी भाव 'रति' के अतिरिक्त अन्य आठ रसों के स्थायी भावों, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय तथा निर्वेद को भी गिनाया है तथा भेदों के लक्षण उदाहरण सहित प्रस्तुत किये हैं। शृंगार के दोनों संयोग और वियोग दोनों आचार्यों को मान्य है किन्तु भिन्नता केवल इतनी है कि करन ने पहले विप्रलम्भ - शृंगार को स्थान दिया, तत्पश्चात् संयोग शृंगार को स्थान दिया और दास ने प्रथम संयोग और द्वितीय वियोग को माना है। करन ने संयोग शृंगार के भेदों का निरूपण न कर केवल विप्रलम्भ शृंगार के पांच भेद प्रतिपादन किये हैं -- विरह, ईर्ष्या, श्राप, भाविक तथा विरह विचार। करन ने इन विप्रलम्भ शृंगार के लक्षण को उदाहरण सहित समझाया है।

संयोग शृंगार के अन्तर्गत वनिताओं के अलंकारों का वर्णन करते हुये व दास ने दस हावों का वर्णन किया है, यथा - लीला, ललित, विलास, किलकिंचित, विहित, विच्छित, मोट्टायत, कुट्टमित, बिब्बोक तथा बिमोहित (शृंगार निर्णय- २४६-२४७) में वर्णि कर कर देता (शृंगार निर्णय छं० २७८) तथा विभ्रम हावों का भी उन्होंने उल्लेख किया है। करन ने 'हाव' का लक्षण देते हुये उसको १२ भागोंमें

१- याही में बरनै सुकवि आठों सात्विक भाव।
स्तम्भ स्वेद रोमांच स्वरभंग कम्प वैवर्ण।
अश्रु प्रलय सात्विकी भाव के उदाहरण।। --शृंगार निर्णय, पृ० ८०, छं० २३६,

विभक्त किया है -- लीला, ललित, मद, विभ्रम, विलास, किलकिंचित, विच्छित्त, मोट्टायित, कुट्टमित, हेला, तपन, विब्बोक, करन ने लदाण और उदाहरण दोनों ही दिये हैं। करन के मद, तपन को दास ने नहीं लिखा है। दास ने `विभ्रम` के अन्तर्गत कौतूहल, विच्छेप तथा मुग्ध हावों को भी लिया है[1] जिनका उल्लेख करन ने नहीं किया है।

`वियोग श्रृंगार` के अन्तर्गत दास ने पूर्वानुराग, विरह, मान तथा प्रवास - इन चार भेदों का कथन किया है, किन्तु करन ने दास के पूर्वानुराग, विरह को स्वीकार किया है और मान, प्रवास के स्थान पर ईर्ष्या, शाप को स्थान दिया है। पूर्वानुराग के अन्तर्गत दास ने `दृष्टि` तथा `श्रुति` दो प्रकार के दर्शनों का उल्लेख किया है और फिर दृष्टि-दर्शन के प्रत्यक्ष, स्वप्न, छाया, माया तथा चित्र नामक पांच प्रकारों का वर्णन किया है।[2] उन्होंने विरह,मान तथा प्रवास भेदों में सभी प्रकार के दर्शनों को माना है।[3] दास ने `श्रुति दर्शन` का लदाण ही किया है।[4] करन ने इन

१- कहियत विभ्रम हाव जहं भूलि काज है जाइ।
कौतूहल विच्छेप विधि याही में ठहराय ।। --श्रृंगार निर्णय,पृ० ६२,छं० २७२.
जानि बूभि के औरई जहां धरत है बाम।
मुग्ध हाव तासों कहैं विभ्रम ही के धाम ।। --श्रृंगार निर्णय,पृ० ६३,छं० २७६.

२- दृष्टि श्रुतौ द्वै भांति दरसन जानौ मित्र।
दृष्टि दरस परतछ सपन छाया माया चित्र ।।--श्रृंगार निर्णय,पृ० ६५,छं० २८५.

३- दरसन सकल प्रकार पुनि इनै तिहुन में मानि।
-- श्रृंगार निर्णय, पृ० १००, छं० ६०० (पूर्वार्द्ध)

४- गुनन सुनै पत्री मिलै, कै तव सुमिरन ध्यान।
दृष्टि दरस बिन होत है श्रुति दरसन यौं जान।।
-- श्रृंगार निर्णय, पृ० ६७, छं० २६१.

दोनों आचार्यों द्वारा दिये अधिकांश लक्षण भिन्न हैं। इस प्रकार के कुछ लक्षण यहां दिये जाते हैं --

अनुभाव का लक्षण :-

रति स्थाई प्रगट जहां तिय पियमिलत विभाव ।
दवां विलोकन आद दे ते सब है अनुभाव ।।३७।।
------ (ह०पृ० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-४)
सु अनुभाव जिहि पाइये मन को प्रेम प्रभाव ।
------ (श्रृंगार निर्णय, छं० २३४)

विच्छित्ति हाव का लक्षण :-

अति ही सुख बढ़ंगात जब थोरो कियो सिंगार ।
ताहि कहत विछिप्त है कवि कोविद सरदार ।।१५३।।
----(ह०पृ०रस-कल्लोल,कवि करन,पृ०सं०-१५)
बन भूषन के थोरही भूषन छवि सरसाय ।
कहत हाव बिच्छित्ति है जो प्रवीन कविराय ।।
-----(श्रृंगार निर्णय, छं०-२६१)

जड़ता का लक्षण :-

इष्ट अनिष्ट यथानु सुन जहां मगनता होइ ।
सब कामन ते सुन जो जड़ता कहीये सोइ ।।१०७।।
----(ह०पृ० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१०)
जड़ता में सब आचरन भूलि जात अनयास ।
तन निद्रा बोलनि चलनि भूख प्यास रस त्रास ।।
------(श्रृंगार निर्णय,छं०- ३२६)

श्रृंगार के रस के अवयवों का वर्णन करते हुये कुछ भेदों तथा अवयवों के लक्षण करन ने नहीं दिए हैं और कुछ के दास ने नहीं दिए हैं। व्यभिचारी एवं स्थायी भावों तथा उद्दीपन विभाव के लक्षण श्रृंगार निर्णय में नहीं मिलते। सुरतान्त का लक्षण दास ने नहीं दिया है, केवल उदाहरण ही दिया है। करन ने इसका कोई उल्लेख नहीं

नहीं किया है ।

पद्माकर तथा करन :-

पद्माकर के आचार्यत्व के प्रतिष्ठापक दो ही ग्रन्थ हैं -- पद्माभरण और जगद्विनोद । "पद्माभरण" के आधार पर आचार्य करन से देव की तुलना पूर्व-पृष्ठों में की जा चुकी है, यहां "जगद्विनोद" के आधार पर दोनों आचार्यों की तुलना की जारही है ।

पद्माकर ने "जगद्विनोद" में करन की ही भांति मुख्यत: नव रस के राजा "श्रृंगार" तथा उसके विभिन्न अंगों का वर्णन किया है । नायक-नायिका श्रृंगार रस के आलंबन माने गए हैं । (जगद्विनोद,छं० ६) अतएव "जगद्विनोद" में नायक-नायिका भेद का भी सविस्तार वर्णन किया गया है । श्रृंगार से इतर रसों का वर्णन बहुत ही संक्षेप में किया गया है ।

श्रृंगार रस के आलम्बन विभाव के अन्तर्गत पद्माकर ने नायक-नायिका को माना है ।[1] उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत उन्होंने नायक के सखा, नायक-नायिका की सखी, दूती आदि का निरूपण किया है । पद्माकर के अनुसार सखा के चार भेद हैं ।

पद्माकर ने "अनुभाव" के अन्तर्गत सात्विक भावों एवं हावों का वर्णन किया है । स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, आंसू और प्रलय इन आठ सात्विक भावों के अतिरिक्त वे जृंभा[2] नामक एक नवां सात्विक और मानते हैं । इन्होंने इसका लक्षण उदाहरण सहित दिया है । करन ने नवें सात्विक भाव का कोई उल्लेख नहीं किया है । पद्माकर ने हावों के लक्षण और उदाहरण भी दिये हैं । परन्तु करन ने न तो लक्षण ही दिए हैं और न उदाहरण ही । हाव के अन्तर्गत पद्माकर ने लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित्, ललित, मोट्टायित, विब्बोक,

---

१- आलम्बन श्रृंगार के, कहे भेद समुझाइ ।
सकल नायका नायकहि, लच्छन लच्छ बनाइ ।।

---- जगद्विनोद, पृ०-१६८, छं०-३२२,

२- जृंभा नवम् बतावहीं, पे नवीन के राय ।

---- जगद्विनोद, पृ०-१६३, छं०-३६५,

विहृत, कुट्टमित, हेला[1] तथा बोधक[2] को गिनाया है। करन ने विहृत, बोधक को छोड़ दिया है तथा विधुत, तपन, मद, विक्षेप तथा मोद हावों को भी लिया है, जिनका उल्लेख पद्माकर ने नहीं किया है। करन ने ३२ संचारी भाव स्वीकार किये हैं जबकि पद्माकर के संचारी भावों की संख्या ३३ है। दोनों ही आचार्यों ने व्यभिचारी अथवा संचारी भावों के लक्षण तथा उदाहरण दोनों ही दिए हैं। पद्माकर ने करन की भांति रति, हास, शोक आदि प्रसिद्ध नौ स्थायी भावों का उल्लेख करते हुए उनके लक्षण सोदाहरण दिए हैं। पद्माकर ने करन के ही समान नौ रस माने हैं और शृंगार को रसों का राजा कहा है।[3] शृंगार रस के दो भेद, संयोग और वियोग दोनों ही आचार्य मानते हैं। पद्माकर ने वियोग शृंगार के तीन भेदों पूर्वानुराग, मान और प्रवास का उल्लेख किया है। करन ने विप्रलम्भ शृंगार के पांच प्रकार दिये हैं -- विरह, ईर्ष्या, शाप, मानिक तथा पूर्वानुराग तथा पांचों के लक्षण एवं उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। अभिलाषा, गुण, कथन, उद्वेग और प्रलाप का तो पद्माकर ने वर्णन किया है, पर शेष छ: के सम्बन्ध में लिखते हैं कि चिन्ता आदि विरह की छ:दशाओं का विवरण संचारी भावों के अन्तर्गत किया जा चुका है।[4]

विभिन्न रसों का निरूपण करते हुये करन ने प्रत्येक रस का लक्षण उदाहरण सहित संक्षेप में दिया है। साथ ही करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत इन छ: रसों के कपोत, अरुण, गौर, श्याम, नील तथा पीत वर्णों का भी वर्णन किया गया है। पद्माकर ने हरेक रस का लक्षण देते हुए उसके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव तथा रस-विशेष के रंग और देवता का विस्तारपूर्वक वर्णन प्रस्तुत किया है। पद्माकर द्वारा उल्लिखित करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत-- इन पांच रसों के रंग करन के समान ही हैं। दोनों ही आचार्यों ने

१- जगद्विनोद, पद्माकर, छं०-४५६.

२- जगद्विनोद, पद्माकर, छं०-४६२.

३- सो सिंगार, रस राय। — जगद्विनोद, पृ०-२०१, छं०-६१३.

४- इक वियोग-शृंगार में, दसौ अवस्था थाप।
अभिलाषा गुन कथन पुनि, पुनि उद्वेग प्रलाप।।
चिन्तादिक षे आठ कही विरह-अवस्था जानि।
संचारी भावन विषै सों आयहुं यो बखानि।।
------जगद्विनोद, पृ०-२००, छं०-६४५-६४६.

वीर रस के भेदों -- युद्ध वीर, दया वीर, दान वीर और धर्म वीर के लक्षण उदाहरण सहित निरूपित किया है।

पद्माकर और केशव दोनों आचार्यों के विभिन्न लक्षणों में थोड़ा अन्तर तो अवश्य देखने में आता है। परन्तु अधिकांश लक्षणों का भाव प्राय:समान ही है। कुछ लक्षण ऐसे भी हैं जो दोनों आचार्यों के भिन्न हैं। उनमें से कुछ उदाहरणार्थ यहां दिए जाते हैं।

विच्छित्ति हाव का लक्षण :-

अति ही कुछ बढंजात जह थोरो कियो सिंगार ।
ताह कहत विक्षिप्त है कवि कोविद सरदार ।।१५३।।
----(ह०ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१५)

तनक सिंगारहि में जहां, तरुनि महाछवि देत ।
सोई विच्छित्ति हाव को, बरनत सुकवि--निकेत ।।
---- (जगद्विनोद, छं०- ४३५)

लीला हाव का लक्षण :-

बोलन चलन चितौन की बहुत भाति कर प्रीत ।
करै जो पिय को स्वांग तिय सो लीला की रीत ।।१५६।।
---- (ह०ग्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१५)

पिय तिय को तिय पीय को, धरै जु भूषन चीर ।
लीला हाव बखानहीं, ताही को कवि धीर ।।
---- (जगद्विनोद, छं०- ४२७)

अलंकार-विवेचन के क्षेत्र में :-

चिन्तामणि तथा करन :-

डा०भगीरथ मिश्र के अनुसार चिन्तामणि त्रिपाठी की गणना करन के बाद के सबसे पहले आचार्यों में ही नहीं, सब से पहले बड़े आचार्यों में है।[1] हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इनके 'काव्य विवेक', 'कवि कुल कल्पतरु', 'काव्य प्रकाश', 'पिंगल', 'रामायण' तथा 'रस मंजरी' नामक रचनाओं का उल्लेख किया है। इनमें से चिन्तामणि का सबसे प्रमुख और प्रशंसनीय ग्रन्थ 'कविकुल कल्पतरु' है। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में उन्होंने काव्य-शास्त्र के गुण, अलंकार, दोष, शब्द-शक्ति, रस एवं नायिका-भेद आदि प्रमुख अंगों का विवेचन किया है। यहां इसी के आधार पर आचार्य करन से चिन्तामणि का मिलान किया गया है।

'कविकुल कल्पतरु' ग्रन्थ में चिन्तामणि ने शब्द और अर्थ दो प्रकार की शक्तियों के कारण शब्द और अर्थ दो प्रकार के अलंकारों का उल्लेख किया है।[2] करन ने इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। दूसरे तथा तीसरे अध्याय में क्रमश: जिन शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का चिन्तामणि ने विवरण किया है, उनके नाम निम्नलिखित हैं --

शब्दालंकार --

१- वक्रोक्ति, २-अनुप्रास, ३-लाटानुप्रास, ४-यमक, ५-श्लेष, ६- पुनरुक्तवदाभास तथा ७-चित्र[3]।

अर्थालंकार --

१-उपमा, २-मालोपमा, ३-रशनोपमा, ४-अनन्वय, ५-उपमेयोपमान, ६-उत्प्रेक्षा, ७-स्मरण, ८-भ्रम, ९-परिणाम, १०-सन्देह, ११-भ्रांतिमान, १२-अपह्नुति, १३-उल्लेख, १४-अतिशयोक्ति, १५-समासोक्ति, १६-स्वभावोक्ति, १७-व्याजोक्ति,

---

१- हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ०-७२.

२- शब्द अर्थनि भेद सों अलंकार द्वै भांति। ---- क०,कु०तरु, पृ०-१६,छं०-१.

३- सात शब्द अलंकार ये तिनमें शब्द जो होइ ।।

---क०कु०तरु,पृ०-१६, छं०-३.

१८-सहोक्ति, १९-विनोक्ति, २०-सामान्य, २१-तद्गुण, २२-अतद्गुण, २३-विरोध, २४-विशेष, २५-अधिक, २६-विभावना, २७-विशेषोक्ति, २८-असंगति, २९-विचित्र, ३०-अन्योन्य, ३१-विषम, ३२-सम, ३३-तुल्ययोगिता, ३४-दीपक, ३५-मालादीपक, ३६-प्रतिवस्तूपमा, ३७-दृष्टान्त, ३८-निदर्शना, ३९-व्यतिरेक, ४०-अर्थश्लेष, ४१-परिकर, ४२-आक्षेप, ४३-व्याजस्तुति, ४४-अप्रस्तुत प्रशंसा, ४५-पर्यायोक्ति, ४६- प्रतीप, ४७-अनुमान, ४८-काव्यलिंग, ४९-अर्थान्तरन्यास, ५०-यथासंख्य, ५१-अर्थापत्ति, ५२-परिसंख्या, ५३-समुच्चय, ५४-समाधि, ५५-भाविक, ५६-व्याघात, ५७-पर्याय, ५८-कारणमाला, ५९-एकावली, ६०-परिवृत्त, ६१-प्रत्यनीक, ६२-सूक्ष्म, ६३- सार, ६४-उदार,(उदात्त)[१]; ६५-संश्लिष्ट तथा ६६-संकर ।

'कविकुल कल्पतरु' में वर्णित अलंकारों में से वक्रोक्ति, यमक, श्लेष, उपमा, मालोपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, दीपक, व्यतिरेक, व्याजस्तुति, पर्यायोक्ति, असंगति, विषम, समाधि, करन की 'बिहारी सतसई की टीका' तथा 'रस-कल्लोल' में भी मिलते हैं । चिन्तामणि द्वारा बतलाए शेष अलंकारों का करन ने कोई उल्लेख नहीं किया । शब्दालंकारों के अन्तर्गत चिन्तामणि ने जो सात अलंकार गिनाए हैं, उनमें से करन ने वक्रोक्ति, छेकानुप्रास, श्लेष, यमक - इन चार अलंकारों का वर्णन किया है । चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित 'वक्रोक्ति' के दो भेद, काकु और श्लेष वक्रोक्ति करन को भी मान्य है । सामान्य लक्षण का भाव भी दोनों का लगभग एक ही है । करन की 'बिहारी सतसई की-टीका' तथा चिन्तामणि के 'कविकुल कल्पतरु' नामक ग्रन्थों में जिन अलंकारों का सामान्य-रूप से निरूपण है, उनमें दोनों आचार्यों द्वारा दिये कुछ अलंकारों के लक्षण का भाव समान है और कुछ में अन्तर परिलक्षित होता है ।

चिन्तामणि ने 'उत्प्रेक्षा' के दो भेदों - वाच्या और प्रतीयमाना के अलग-अलग चार-चार प्रकार (गुणगत, जातिगत, क्रियागत तथा द्रव्यगत) तथा वस्तु (उक्तविषयाक- और अनुक्तविषया), हेतु और फल (सिद्धविषया और असिद्धविषया) आदि भेद बतलाए हैं । करन ने इनका कोई उल्लेख नहीं किया है ।

१- जहां जहां सम्पति कथन सो उदार मन आनि ।
सो उपलक्षण बड़न को जहाँ बीच पहिचानि ।।
—— क०कु०त०, पृ०-६४, छं०-२०७.

चिन्तामणि तथा करन ने विभावना का कोई भेद नहीं किया है दोनों के विभावना लक्षण में भाव साम्य है। चिन्तामणि तथा करन दोनों ने ही विशेषोक्ति को पृथक अलंकार माना है।

चिन्तामणि का 'विरोध' अलंकार करन के 'विरोधाभास' से मिलता है।

'विरोध' अलंकार का लक्षण :-

सो विरोध अविरुद्ध में जहं विरोध अभिधान।
सु तो जाति गुन क्रिया अरु द्रव्य माहं सज्ञान ।।[1]

बरन तजौ विरोध सौ अर्थ जहां अवरोध।
ताहि विरोधाभास जिनके करन प्रबोध ।।[2]

करन ने जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया आदि के विरोध का अपने लक्षण में कोई उल्लेख नहीं किया है। दोनों आचार्यों द्वारा दिए 'रूपक' के सामान्य लक्षण का भाव एक ही है। करन के 'रूपक' का लक्षण है --

विषई जहां अभेद है विषय रंजियतु होत।
ओतद्रूप अभेद मिलि रूपक है विधि सोइ ।।[3]

चिन्तामणि ने 'रूपक' का लक्षण इस प्रकार दिया है --

जहां विषई अरु विषय को बरन्यो होइ अभेद।
अलंकार रूपक तहां समझो सुकवि अभेद ।।[4]

करन के लेशालंकार, अवज्ञालंकार, अत्युक्ति, ललिता, प्रजायोक्ति तथा विषाद आदि अलंकारों का 'कविकुल कल्पतरु' में कोई उल्लेख नहीं है।

1- कविकुल कल्पतरु, पृ०-४१, छं०-१३७.
2- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-८.
3- ,, ,, ,, ,, पृ०-१.
4- कविकुल कल्पतरु, पृ०-३२, छं०-७७.

<u>मतिराम और करन :-</u>

मतिराम रीतिकाल के प्रधान आचार्य-कवियों में माने जाते हैं और चिन्तामणि तथा भूषण के भाई परम्परा से प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म संवत् १६७४ के लगभग बताया जाता है। ये बूंदी के महाराजा भाऊसिंह के यहां बहुत दिनों तक रहे और उन्हीं के आश्रय में 'ललित ललाम' नामक ग्रन्थ संवत् १७१६ और १७४५ के बीच रचा। इसके अतिरिक्त उनके फूल मंजरी, रसराज, छन्द-सार-पिंगल, मतिराम सतसई, साहित्यसार, लक्षण शृंगार, अलंकार-पंचाशिका तथा वृत्त कौमुदी आदि ग्रन्थ और बतलाए जाते हैं।[1]

'रसराज' में भाव, रस तथा नायिका-भेद आदि का निरूपण है। 'ललित-ललाम' अलंकार-विषयक ग्रन्थ है। मतिराम के आचार्यत्व की प्रतिष्ठापक मुख्यतया ये ही दोनों कृतियां हैं। यहांपर 'ललित ललाम' के आधार पर मतिराम की करन से तुलना की गई है।

मतिराम ने अपने 'ललित ललाम' नामक ग्रन्थ में ११२ अलंकारों का विवेचन किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं -- १-उपमा, २-मालोपमा, ३-रसनोपमा, ४-अनन्वय, ५-उपमेयोपमान, ६-प्रतीप, ७-रूपक, ८-परिणाम, ९-उल्लेख, १०-स्मृति, ११-भ्रम, १२-सन्देह, १३-शुद्धापह्नुति, १४-हेत्वपह्नुति, १५-पर्यस्तापह्नुति, १६-भ्रान्त्यपह्नुति, १७-छेकापह्नुति, १८-छलापह्नुति, १९-उत्प्रेक्षा, २०-रूपकातिशयोक्ति, २१-सापन्ह-वातिशयोक्ति, २२-भेदकातिशयोक्ति, २३-सम्बन्धातिशयोक्ति, २४-क्रमातिशयोक्ति, २५-चंचलातिशयोक्ति, २६-अत्यन्तातिशयोक्ति, २७-तुल्ययोगिता, २८-दीपक, २९-दीपका-वृत्ति, ३०-प्रतिवस्तूपमा, ३१-दृष्टान्त, ३२-निदर्शना, ३३-व्यतिरेक, ३४-सहोक्ति, ३५-विनोक्ति, ३६-समासोक्ति, ३७-परिकर, ३८-परिकरांकुर, ३९-श्लेष, ४०-अप्रस्तुत-प्रशंसा, ४१-प्रस्तुतांकुर, ४२-पर्यायोक्ति, ४३-व्याजस्तुति, ४४-व्याजनिन्दा, ४५-आक्षेप, ४६-विरोधाभास, ४७-विभावना, ४८-विशेषोक्ति, ४९-असंभव, ५०-असंगति, ५१-विषम, ५२-सम, ५३-विचित्र, ५४-अधिक, ५५-अल्प, ५६-परस्पर, ५७-विशेष, ५८-व्याघात, ५९-गुम्फनाला, ६०-एकावली, ६१-मालादीपक, ६२-सार, ६३-यथासंख्य, ६४-पर्याय, ६५-परिवृत्ति, ६६-परिसंख्या, ६७-विकल्प, ६८-समुच्चय, ६९-कारक दीपक, ७०-समाधि,

---

१- मतिराम ग्रन्थावली, भूमिका, पृ०-२२८-२३५.

७१-प्रत्यनीक, ७२-काव्यार्थापत्ति, ७३-अर्थान्तरन्यास, ७४-विकस्वर, ७५-प्रौढ़ोक्ति, ७६-संभावना, ७७-मिथ्या अध्यवसित, ७८-ललित, ७९-प्रहर्षण, ८०-विषाद, ८१-उल्लास, ८२-अवज्ञा, ८३-अनुज्ञा ८४-लेश, ८५-मुद्रा, ८६-रत्नावली, ८७-तद्गुण, ८८-अतद्गुण, ८९-पूर्वरूप, ९०-अनुगुण, ९१-मीलित, ९२-सामान्य, ९३-उन्मीलित, ९४-गूढ़ोत्तर, ९५-चित्र, ९६-सूक्ष्म, ९७-पिहित, ९८-व्याजोक्ति, ९९-गूढ़ोक्ति, १००-विवृतोक्ति, १०१-युक्ति, १०२-लोकोक्ति, १०३-छेकोक्ति, १०४-वक्रोक्ति, १०५-जाति, १०६-भाविक, १०७-उदात्त, १०८-अत्युक्ति, १०९-निरुक्ति, ११०-प्रतिषेध, १११-विधि तथा ११२-हेतु ।

उपर्युक्त अलंकारों में से उपमा, रूपक, सन्देह, उत्प्रेक्षा, दीपक, व्यतिरेक, श्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, असंगति, विषम, समाधि, ललित, विषाद, लेश, पूर्वरूप तथा वक्रोक्ति, करन की 'बिहारी सतसई की टीका' में भी वर्णित हैं। मतिराम द्वारा उल्लिखित शेष अलंकारों का करन ने वर्णन नहीं किया। 'बिहारी सतसई की टीका' तथा 'ललितललाम' नामक ग्रन्थों में जिन अलंकारों का समान रूप में वर्णन हैं उनमें दोनों आचार्यों द्वारा बतलाए गये कुछ अलंकारों के उदाहरण मिलते हैं। मतिराम ने 'उपमा' के भेद पूर्णोपमा और लुप्तोपमा का उल्लेख किया है।[1] मतिराम तथा करन दोनों ही 'उपमा' को पृथक अलंकार मानते हैं।

रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, श्लेष, व्याजस्तुति, विरोधाभास, विशेषोक्ति, आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के सामान्य उदाहरणों में भाव साम्य है। मतिराम ने 'रूपक' के पहले दो भेद - अभिन्न और तद्रूप किए हैं और फिर इन दोनों में से प्रत्येक के तीन और भेद किए हैं, समोक्ति, हीनोक्ति और अधिकोक्ति।[2] करन ने रूपक के भेदों का उल्लेख नहीं किया। करन ने उत्प्रेक्षा के भेद नहीं किये हैं। मतिराम ने 'उत्प्रेक्षा' के तीन भेदों वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा दोनों में से प्रत्येक के सिद्धविषया और असिद्धविषया नामक और भेदों का वर्णन किया है।[3]

१- ललितललाम, छं०-४३ तथा ४६, पृ०-३६६.
२- ललितललाम, छं०-६८, पृ०-३७४.
३- ललितललाम, छं०-१००-१०२, पृ०-४८२.

दोनों आचार्यों द्वारा दिए गए `व्यतिरेक' के लक्षणों का भाव एक ही है। मतिराम तथा करन दोनों ने ही इसके भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। मतिराम ने विभावना के प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि छ:भेदों का उल्लेख किया है, परन्तु करन ने इसके कोई भी भेद नहीं किये हैं। करन तथा मतिराम दोनों आचार्यों के `विभावना' के लक्षण परस्पर मिलते हैं :--

विभावना का लक्षण :-

प्रतिबंधक के होत ही कारज पूरन होय ।
ताहि विभावना कहत है करन सुकवि सबकोइ ।।[1]

हेतु काज को जो नहीं, तातै काज उदोत ।
यातों और विभावना, कहत सकल कविगोत ।।[2]

लेश का लक्षण :-

गुन मे दूषण न होत जह दूषन मे गुन जानि ।।
लेश करन तासो कहत कवि जन विबुध बखान ।।[3]

मतिराम ने लेशालंकार का लक्षण इस प्रकार किया है --

जहां दोष गुन होत है, जहां होत गुन दोष ।
तहां लेश यह नाम कहि बरनत कवि मति-कोष ।।[4]

कुलपति मिश्र तथा करन :-

भूषण के ही समकालीन आगरा-निवासी माथुर चौबे कुलपति मिश्र की गणना काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्यों में होती है। इनका कविताकाल संवत् १७२४ और १७४२ के बीच माना गया है। काव्यशास्त्र पर लिखे इनके दो ग्रन्थ `रसरहस्य' और `गुणरस रहस्य' प्रसिद्ध हैं। `रसरहस्य' की रचना संवत् १७२७ में हुई थी।[5]

१- ह0प्र0 साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ0-८.
२- ललितललाम, मतिराम, छं0-२०२.
३- ह0प्र0 साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ0-३.
४- ललितललाम, मतिराम, छं0-३२४.
५- संवत् सत्रह सौ बरस, बरु बीति सताईस ।
कातिक बदी एकादसी, बार बरनि बानीस ।। ----रसरहस्य, पृ0-१२९, छं0-२११.

यह समस्त रचना १९६ पृष्ठों में समाप्त हुई है। आरम्भ के ७० पृष्ठों में काव्य की परिभाषा, काव्य का प्रयोजन, काव्य का विभाजन, शब्द-शक्ति, ध्वनि, रस, गुण, दोष आदि विषयों का निरूपण हुआ है। यहां पर 'रसरहस्य' में निरूपित अलंकारों के आधार पर आचार्य करन की कुलपति मिश्र से तुलना की गई है।

शब्दालंकार :-

१-वक्रोक्ति, २-अनुप्रास, ३-लाटानुप्रास, ४-यमक, ५-श्लेष तथा ६-चित्र।

अर्थालंकार :-

१-उपमा,२-मालोपमा, ३-रसनोपमा, ४-एकदेशविवर्ती, उपमा, ५-अनन्वय[1] (अनन्वय), ६-उपमेयोपमा, ७-प्रतिवस्तूपमा, ८-प्रतीप, ९-उत्प्रेक्षा, १०-संदेह, ११-रूपक, १२-परिणाम, १३-उल्लेख[2] (उल्लेख), १४-भ्रांतिमान, १५-स्मरण, १६-अपह्नुति, १७-श्लेष, १८-समासोक्ति, १९-अप्रस्तुतप्रशंसा[3]; २०-अतिशयोक्ति, २१-दृष्टान्त, २२-दीपक, २३-मालादीपक, २४-तुल्ययोगिता, २५-व्यतिरेक, २६-आक्षेप, २७-विभावना, २८-विशेषोक्ति, २९-यथासंख्य, ३०-अर्थान्तरन्यास, ३१-विरोधाभास, ३२-स्वभावोक्ति, ३३-व्याजस्तुति, ३४-सहोक्ति, ३५-विनोक्ति, ३६-विनिमय, ३७-भाविक, ३८-काव्यलिंग, ३९-पर्यायोक्ति, ४०-उदात्त, ४१-समुच्चय, ४२-पर्याय, ४३-अनुमान, ४४-परिकर, ४५-व्याजोक्ति, ४६-परिसंख्या, ४७-कारणमाला, ४८-अन्योन्य, ४९-उत्तर, ५०-सूक्ष्म, ५१-सार, ५२-असंगति, ५३-समाधि, ५४-अनुमान, ५५-विषम, ५६-अधिक, ५७-प्रत्यनीक, ५८-मिलन (मीलित)[4]. ५९-विशेष, ६०-तद्गुण, ६१-अतद्गुण तथा ६२-व्याघात।

१- नहि पइये समता जहां,वाकी सब उपमान।
उपमेयै कीजै जहां, अनन्वय जान ॥ ---रस रहस्य,छं०-२३, पृ०-८२.

२- बहुत एक की कहै जब, बहुत भांति उपमान।
एकै बहु गुण कहि कही सो उल्लेख बखान ॥--- रस रहस्य,पृ०-८७, छं०-५३.

३- 'अप्रस्तुतप्रशंसा' को ही भिखारी ने 'अन्योक्ति' कहा है, जिसका उदाहरण इस प्रकार है--
जहां डारि सिर और के कहै और की बात।
बरणत पांच प्रकार सों,सो अन्योक्ति पात ॥ ---रस रहस्य,पृ०-९०,छं०-६६.

४- आये कर के सतय के कहि मिलित अति ठौर। --- रस रहस्य, पृ०-१९७.

वक्रोक्ति, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अप्रस्तुत प्रशंसा, अतिशयोक्ति, दीपक, व्यतिरेक, विभावना, विशेषोक्ति, विरोधाभास, व्याजस्तुति, असंगति, समाधि तथा विषम, अलंकारों का वर्णन 'रसरहस्य' तथा 'बिहारी सतसई की टीका' दोनों ग्रन्थों में मिलता है,परन्तु विविध अलंकारों के भेद तथा लक्षण प्राय:भिन्न हैं। 'रस रहस्य' में वर्णित शेष अलंकार करन ने छोड़ दिये हैं। करन के तद्गुनालंकार, अत्युक्त, ललित, पूर्वरूप, पर्यायोक्ति, विषाद आदि अलंकारों का 'रस रहस्य' में कोई उल्लेख नहीं है।

कुलपति मिश्र द्वारा उल्लिखित शब्दालंकारों में से करन ने वक्रोक्ति, श्लेष का ही निरूपण किया है। वक्रोक्ति का सामान्य लक्षण दोनों आचार्यों का प्राय: एक ही है।

वक्रोक्ति अलंकार का लक्षण :-

सुरश्लेष अरु काकु करि बरन न जायत होइ ।।
वक्रोक्ति तासों कहत करन सुकवि सब कोइ ।।[१]

कोउ बात औरै कहूं, अर्थ करै कछु और।
वक्र उक्ति, ताकी कहैं, श्लेष सुभ द्वै ठौर ।।[२]

करन ने कुलपति मिश्र द्वारा निर्दिष्ट 'वक्रोक्ति' के दो भेदों श्लेष और काकु वक्रोक्ति को स्वीकार किया है।

विशेषोक्ति का लक्षण :-

विद्यमान कारन जहां कारज होत न सिद्धि।
ताहि कहत विशेषोक्ति कवि बरनत करन प्रसिध ।।[३]

सब कारण कारज नहीं उक्ति विशेष सुजान।[४]

१- ह० पृ० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-६.

२- कुलपति मिश्र, रस रहस्य, छं०-४.

३- ह०पृ० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-८.

४- कुलपति मिश्र, रस रहस्य, पृ०-१००.

रूपक का लक्षण :-

विषई जहां अभेद है विषय रंजियतु होत ।
औतद्रूप अभेद मिलि रूपक है बिधि सोइ ।।[1]

उपमा अरु उपमेय कौं, भेद परै नहिं जानि ।
समता व्यंग रहै जहां, रूपक ताहि बखानि ।।[2]

मिश्रजी ने 'व्यतिरेक' के २४ भेदों का उल्लेख किया है और करन ने केवल 'व्यतिरेक' का लक्षण ही दिया है। 'विरोधाभास' का करन ने कोई भेद नहीं बताया है। कुलपति मिश्र ने जाति, गुण आदि भेद से उसके १० प्रकारों का वर्णन किया है।[3]

देव तथा करन :-

देव का जन्म उनके अपने साक्ष्य के अनुसार संवत् १७३० वि० ठहरता है।[4] उनका रचनाकाल संवत् १७४६ से १७९० तक माना जा सकता है। देव अनेक राजाओं के आश्रय में रहे और इनकी अधिकांश रचनाएं भी आश्रयदाताओं के लिए ही हुई हैं। रीतिकालीन कवियों में सम्भवत: देव ने ही सबसे अधिक ग्रन्थ लिखे हैं। स्व० रामचन्द्र शुक्ल ने देव के २५ ग्रन्थों के नाम दिये हैं जो उनके अनुसार उपलब्ध हैं।[5] मिश्रबन्धुओं ने उनके १४ ग्रन्थों का उल्लेख किया है जो उन्होंने देखे हैं।[6] डा० नगेन्द्र के मत में देव के प्राप्य ग्रन्थ १८-१९ हैं।[7] देव के देखे-सुने ग्रन्थों में बहुत से रीति-ग्रन्थ हैं, यथा-- भाव विलास, भवानी विलास, सुजान विनोद, कुशल विलास, रस विलास, सुख सागर तरंग, शब्द रसायन इत्यादि।

१- ब०ग्रं० साहित्य-चन्द्रिका, पृ०-१.
२- कुलपति मिश्र, रस रहस्य, छं०-३८.
३- रसरहस्य, कुलपति मिश्र, पृ०-१०२, छं०-१२४-१२५.
४- शुभ सत्रह से छियालीस, चढ़त सोरही वर्ष ।
कढ़ी देव मुख देवता, भाव विलास सहर्ष ।। --भावविलास, पृ०-१६८.
५- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०-२६४.
६- हिन्दी नवरत्न, पृ०-२६९.
७- देव और उनकी कविता (उत्तरार्द्ध), पृ०-७५.

सभी रसों का पूर्ण विवेचन मुख्यरूप से `शब्द-रसायन` और `भवानी विलास` में हुआ है। `भावविलास` में रस के विभिन्न अवयवों का विशद् विवेचन है, परन्तु उसमें केवल शृंगार को ही लिया गया है। भाव विलास, भवानी विलास, रस विलास, कुशल विलास, सुजान विनोद, तथा सुख सागर तरंग में नायिका-भेद का विस्तृत वर्णन है। अलंकार-निरूपण `भाव-विलास` में संक्षेप में और `शब्द रसायन` में कुछ विस्तार के साथ, किया गया है। यहां `भाव विलास` और `शब्द रसायन` के आधार पर क्रम से देव की तुलना की गई है।

`भाव विलास` में देव ने केवल ३९ अलंकारों के बहुत ही चलते ढंग से लक्षण एवं उदाहरण दिए हैं। उनके अनुसार मुख्य अलंकार ३९ ही हैं। आधुनिक कवियों (आचार्यों) द्वारा माने गए अन्य अलंकारों को देव इनका ही भेद मानते हैं।[1] देवने पंचम् विलास के आरम्भ में ही अलंकारों की जो सूची दी है, उसके अनुसार अलंकारों के नाम निम्नवत् हैं ---

१-स्वभावोक्ति, २-उपमा, ३-उपमेयोपमा, ४-संशय, ५-अनन्वय, ६-रूपक, ७-अतिशयोक्ति, ८-समासोक्ति, ९-वक्रोक्ति, १०-पर्यायोक्ति, ११-सहोक्ति, १२-विशेषोक्ति, १३-व्यतिरेक, १४-विभावना, १५-उत्प्रेक्षा, १६-आक्षेप, १७-दीपक, १८-उदात्त, १९-अपह्नुति, २०-श्लेष, २१-अर्थान्तर, २२-व्याजस्तुति, २३-अप्रस्तुतप्रशंसा, २४-आवृत्ति दीपक, २५-निदर्शना, २६-विरोध, २७-परिवृत्ति, २८-हेतु, २९-रसवत, ३०-ऊर्जस्व, ३१-सूक्ष्म, ३२-प्रेम, ३३-समाहित, ३४-क्रम, ३५-तुल्ययोगिता, ३६-लेश, ३७-भाविक, ३८ संकीर्ण तथा ३९-आशिष।

`शब्द रसायन` में देव ने अलंकारों के दो भेद शब्दालंकार तथा अर्थालंकार किए हैं, और फिर अर्थालंकार को दो वर्गों, मुख्य तथा गौण में विभक्त किया है। उन्होंने ४० मुख्य अलंकार और ३० गौण, इस प्रकार कुल मिलाकर ७० अर्थालंकार माने हैं, साथ ही यह भी संकेत कर दिया है कि मुख्य-गौण के मिश्र-अमिश्र भेद मिलाकर

१- अलंकार मुख्य उनतालीस हैं देव कहैं।
  येई पुरातनि मुनि मतनि में पाइये।
  आधुनिक कविन के संमत अनेक और।
  इनहीं के भेद और विविध बताइये॥ --- भाव विलास, पृ०-१४१.

मान ही जाते हैं।[1] देव ने मुख्यालंकार के अन्तर्गत स्वभावोक्ति, उपमा, रूपक, दीपक, आवृत्ति, परिवृत्ति, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, हेतु, सहोक्ति, सहोक्तिमाला, सूक्ष्म, लेश, प्रेय, रसवत, उदात्त, ऊर्जस्व, अपह्नुति, समाधि, निदर्शना, दृष्टान्त, निन्दास्तुति, स्तुतिनिन्दा, संशय, विरोध, विरोधाभास, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, असम्भव, असंगति, परिकर, तद्गुण आदि को रखा है। गौण मिश्रालंकार में देव ने अतद्गुण, अनुगुण, अनुज्ञा, अवज्ञा, गुणवत, प्रत्यनीक, लेश, सार, मिलित, कारणमाला, एकावली, मुद्रा, मालादीपक, समुच्चय, संभावना, प्रहर्षण, गूढ़ोक्ति, व्याजोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, विकल्प, संकीर्ण, भाविक, आशिष, स्मृति, भ्रांति, सन्देह, निश्चय, सम, विषम, अल्प, अधिक, अन्योन्य, सामान्य, विशेष, उन्मीलित, पिहित, 'शब्द रसायन' में भेदों को छोड़कर लगभग ८५-८६ अर्थालंकारों के लक्षण-उदाहरण दिये गये हैं। 'भाव विलास' के उपर्युक्त ३९ अलंकारों के अतिरिक्त इसमें जो अन्य अलंकार दिये गये हैं, वे ये हैं -- १-उल्लेख, २-समाधि, ३-विरोधाभास, ४-दृष्टान्त, ५-असम्भव, ६-असंगति, ७-परिकर, ८-तद्गुण, ९-अतद्गुण, १०-अनुगुण, ११-अनुज्ञा, १२-अवज्ञा, १३-गुणवत्, १४-प्रत्यनीक, १५-लेश, १६-सार, १७-मीलित, १८-कारणमाला, १९-एकावली, २०-मुद्रा, २१-मालादीपक, २२-समुच्चय, २३-सम्भावना, २४-प्रहर्षण, २५-गूढ़ोक्ति, २६-व्याजोक्ति, २७-विवृतोक्ति, २८-युक्ति, २९-विकल्प, ३०-अत्युक्ति, ३१-भ्रांति, ३२-स्मृति, ३३-अधिक, ३४-अन्योन्य, ३५-सामान्य, ३६-विशेष, ३७-उन्मीलित, ३८-पिहित, ३९-अर्थापत्ति, ४०-विधि, ४१-निषेध, ४२-प्रत्युक्ति, तथा ४३-अन्योक्ति।

शब्दालंकारों में देव ने अनुप्रास, यमक और चित्र का वर्णन किया है। इनमें भी एक प्रकार से 'चित्र' का ही प्रधान रूप गृहण है, क्योंकि 'अनुप्रास' तथा 'यमक' को तो देव ने 'चित्र' का आधार स्वरूप माना है।[2] यमक के अन्तर्गत उन्होंने

१- मुख्य, गौन, मिश्रित भेद करि, है अर्थालंकार।
मुख्य कही चालीस विधि, गौन सु तीस प्रकार।
मुख्य गौन के भेद मिलि, मिश्रित होत अनन्त।
गप्य प्रगट सब काव्य में, समुझत हैं मतिमन्त ।। ---शब्द रसायन, पृ०-६४.

२- अनुप्रास अरु यमक ये, चित्र काव्य के मूल।
इनहीं के अनुसार सो सकल चित्र अनुकूल ।। --- शब्द रसायन, पृ०-८४.

'सिंहावलोकन' का भी वर्णन किया है, किन्तु उसका लक्षण नहीं दिया है। 'चित्र' के गूढ़ार्थ, चित्र, प्रगटार्थ-चित्र, कामधेनु, सर्वतोभद्र, पर्वत, हार, कपाट, धनु, कमल आदि अनेक भेदों का उल्लेख किया गया है, जिसमें स्काक्षर अनुलोम-विलोम, गतागत, अन्तर्लापिका, प्रहेलिका आदि का चमत्कार दिखाया गया है।

करन ने देव द्वारा किए गए अलंकारों के दो भेद, अर्थालंकार और शब्दालंकार और फिर अर्थालंकारों के भी मुख्य तथा गौणमिश्र नामक उपभेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है।

देव तथा करन ने जिन अर्थालंकारों का समानरूप से वर्णन किया है, वे इस प्रकार हैं-- रूपक, वक्रोक्ति, पर्यायोक्ति, विशेषोक्ति, व्यतिरेक, विभावना, उत्प्रेक्षा, दीपक, श्लेष, व्याजस्तुति, विरोधाभास, समाधि, विभ्रम, लेश, अप्रस्तुत प्रशंसा,। 'भाव विलास' और 'शब्द रसायन' में वर्णित इनसे इतर अलंकारों का देव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। करन के पूर्वरूप, अमकालंकार, अत्युक्त, ललित, असंगति, प्रजायोक्ति, तथा विषाद अलंकारों का देव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। जिन अर्थालंकारों का समानरूप से वर्णन है उनमें दोनों आचार्यों द्वारा किये कुछ अलंकारों के लक्षण का भाव एक ही है और कुछ लक्षणों में अन्तर है।

देव का 'संशय' उनके अपने ही 'सन्देह' से भिन्न है। केवल उपमा देने में ही जब अनिश्चय होता है वहां देव ने 'संशय' अलंकार माना है।[1] करन का सन्देह अन्य आचार्यों के द्वारा निरूपित 'सन्देह' अलंकार से मिलता है --

सन्देह का लक्षण --

एक वस्तु निरधार बिन संदिग्ध किय ।।
कवि की भासवत ईश्वर विर्णवति ।।[2]

बिन निश्चय सन्देह।[3]

1- जहां उपमा उपमेय की, वस्तु मे सन्देह।
ताही सो संसै उकति -कुमति धानि सबै लेहु। ---भाव विलास, पृ0-१४४.

2- ह0प्र0 साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ0-३.

3- शब्द रसायन, कवि देव, पृ0-१२७.

दोनों आचार्यों के `रूपक` के सामान्य लक्षण का भाव समान है। देव ने `रूपक` के तीन भेद, समस्त, असमस्त तथा समस्त-व्यस्त बतलाए हैं। करन ने `रूपक` के भेदों का उल्लेख नहीं किया है।

देव ने `भाव विलास` में `विशेषोक्ति` का लक्षण इस प्रकार दिया है--

जाति कर्म गुन भेद की, विकलता करि जाहि।
वस्तुहि बरनि दिखाइये, विशेषोक्ति कहि ताहि।।[1]

करन ने `बिहारी सतसई की टीका` में विशेषोक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है --

विद्यमान कारन जहा कारज होत न सिद्ध।
ताहि कहत विशेषोक्ति कवि बरनत करन प्रसिद्ध।।[2]

करन और देव के `विशेषोक्ति` अलंकार में भिन्नता है। यह लक्षण देव द्वारा `शब्द रसायन` में दिए हुए `विशेषोक्ति` के लक्षण से साम्य रखता है। देव ने इस अलंकार का लक्षण इस प्रकार लिखा है --

कारनहु कारज न जहं विशेषोक्ति कहि सोइ।[3]

देव के `प्रथम विभावना` के लक्षण का भाव करन की `विभावना` से मिलता है। `उत्प्रेक्षा` और अपह्नुति के भेदों का उल्लेख दोनों ही आचार्यों ने नहीं किया। करन और देव के `व्यतिरेक` अलंकार के सामान्य लक्षणों में परस्पर भाव-साम्य है। करन और देव ने दीपक के भेदों को स्वीकार नहीं किया।

`दीपक` का सामान्य लक्षण दोनों आचार्यों ने सामान्य दिया है --

अर्थ जहां इकै क्रिया, जहां आदि मधि अन्त।
कहवा जहं प्रतिपद क्रिया, दीपक कहत सुसंत।।[4]

वर्नत मतौ दीपक एक क्रिया जहं द्रव्य बहु द्रव्य एक क्रिया जात।।
दीपक तासौं करन है पंडित बुद्धि विख्यात।।[5]

१- भाव विलास, पृ०-११०.
२- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-८.
३- शब्द रसायन, पृ०-१०९.
४- भाव विलास, पृ०-११५.
५- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-१.

देव ने `व्याजस्तुति` तथा `व्याजनिन्दा` को अलग अलंकार माना है। करन ने केवल `व्याजस्तुति` को ही स्वीकार किया है।

दोनों आचार्यों ने `विरोध` का लक्षण भिन्न-भिन्न दिया है। देव का `विरोध` का लक्षण है --

जहां विरोधी पदारथ, मिलि एक ही ठौर।
अलंकार सु विरोध बिनु, बिन पियूष बिन कौर।।[१]

अथवा-

जहां विरोध पदार्थ कहि, कहिये विरोध तासु।[२]

करन का लक्षण इस प्रकार है --

बरन लगै विसेष सौं अर्थ जहां अवरोध।
ताहि विरोधाभास जिनकै करन प्रबोध।।[३]

दोनों ही आचार्यों ने `विरोध` के भेदों का वर्णन नहीं किया।

<u>दास (भिखारीदास) तथा करन :--</u>

दास रीतिकाल के उन आचार्यों में से हैं जिन्होंने काव्य के रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष, शब्द-शक्ति, छन्द आदि सभी अंगों का विवेचन किया है। रस-सारांश, छन्दोर्णव-पिंगल, काव्य-निर्णय, शृंगार-निर्णय, नाम-प्रकाश (कोश), विष्णुपुराण भाषा (दोहे-चौपाइयों में) छन्द-प्रकाश, शतरंज-शतिका, तथा अमर-प्रकाश (संस्कृत अमर कोश भाषा पद्य में) नामक ग्रन्थ इनके रचे कहे जाते हैं। इनका कविताकाल संवत् १८०७ तक माना गया है।[४] `काव्य-निर्णय` और `शृंगार-निर्णय` इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। `काव्य-निर्णय` में काव्य-प्रयोजन, काव्य की आत्मा, काव्य की भाषा, लक्षणा, व्यंजना, रस, भाव, अनुभाव, ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य, अपरांग, अलंकार आदि सभी काव्यांगों का वर्णन है। यहां रस तथा उसके अवयवों का निरूपण बड़े ही संक्षेप में किया गया है। रस का वर्णन उनके `शृंगार-निर्णय` तथा

१- भाव विलास, पृ०-११०.

२- शब्द रसायन, पृ०-१०२.

३- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-८.

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०-२०७.

`रस सारांश` नामक ग्रन्थों में हुआ है। `काव्य-निर्णय` प्रधानतया अलंकारों का ग्रन्थ है। इसमें अलंकारों का सांगोपांग एवं विस्तृत विवरण दिया गया है।

दास ने वर्ग के प्रथम अलंकार के नाम से एक वर्ग बनाकर जैसे उपमादि, उत्प्रेक्षादि, उससे सम्बन्धित अलंकारों को उस वर्ग में सम्मिलित किया है। उपमादि वर्ग के अन्तर्गत उन्होंने बारह अलंकारों, पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, श्रौती उपमा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, विकस्वर, निदर्शना, तुल्ययोगिता तथा प्रतिवस्तूपमा को रखा है और उनको उपमान-उपमेय के ही विभिन्न विकार बतलाया है। दासजी ने इस वर्ग के अन्तर्गत जिन बारह अलंकारों को गिनाया है उनमें `यद्यपि` `मालोपमा` का उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु फिर भी उन्होंने इस अलंकार का विवेचन उपमादि वर्ग के अन्तर्गत ही किया है और उसे स्वतंत्र अलंकार नहीं माना । `लुप्तोपमा` के धर्म-लुप्तोपमा, उपमान-लुप्तोपमा, वाचक-लुप्तोपमा, उपमेय-लुप्तोपमा, वाचक धर्म-लुप्तोपमा, उपमेय-धर्म-लुप्तोपमा, तथा उपमेय वाचक धर्म-लुप्तोपमा, इन सात भेदों का वर्णन किया गया है। `प्रतीप` के पांच भेद प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम् बतलाए गए हैं। दृष्टान्त, अर्थान्तर न्यास, निदर्शना तथा तुल्ययोगिता नामक अलंकारों का भी इस वर्ग में सविस्तार विवेचन किया गया है। करन ने उपमा के भेदों का उल्लेख नहीं किया है। करन तथा दास दोनों आचार्यों द्वारा दिये उत्प्रेक्षा के सामान्य लक्षणों में भाव साम्य नहीं मिलता ।

<u>देव का उत्प्रेक्षा का लक्षण :-</u>

जहां कछू कछु सौं लगै,संभुकत देखत उकत । [1]

<u>करन का उत्प्रेक्षा का लक्षण :-</u>

इव जहा चित्त मे चितवति व्याकुल होइ ।
सुमिर सु निर्गुन कहत गुन कमन कहा वे सोइ ।। [2]

देव ने `व्यतिरेक` अलंकार के चार भेद बतलाए हैं। [3] करन ने व्यतिरेक के कोई भेद नहीं किये। दोनों आचार्यों का `व्यतिरेक` का लक्षण भी आपस में —

1- काव्य-निर्णय, छं०-१०, पृ०-२४.
2- हस्त० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-२.
3- पोषन करि उपमेय को, दूषन है उपमान । नहिं समान कहिये तहां है व्यतिरेक सुजान। कहुं पोषन कहुं दूषनै कहि कहूं नहिं दोउ ।चारि भांति व्यतिरेक है यह जानत सबकोउ ।।
----काव्य-निर्णय,छं०-२-३,पृ०-६७.

नहीं मिलता --

दास का व्यतिरेक का लक्षण :-

पोषन करि उपमेय को, दूषन है उपमान ।
नहिं समान कहिये तहां, है व्यतिरेक सुजान ।।[1]

करन का व्यतिरेक का लक्षण :-

उपमा नो उपमेय में कछु कवि सेष जुहोइ ।।
वितरेक करन तासों कहत कवि को विश्वास कोइ ।।[2]

अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रस्तुतांकुर, समासोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप, पर्यायोक्ति तथा अन्योक्ति को पांचवें अन्योक्त्यादि वर्ग में रखा है । दास ने 'अप्रस्तुत प्रशंसा' के पांच भेद माने हैं, १-कारज मिस कारण कथन, २-कारण मिस कारज कथन, ३-सामान्य मिस विशेष कथन, ४-विशेष मिस सामान्य कथन तथा ५-तुल्य प्रस्ताव कथन [3] करन ने 'अप्रस्तुत प्रशंसा' का लक्षण निरूपित किया है । 'व्याजस्तुति' को करन और दास दोनों ही ने माना है ।

'पर्यायोक्ति' का लक्षण दोनों आचार्यों का समान है । करन की 'पर्यायोक्ति' दास का 'प्रथम प्रहर्षण' (बिना यत्न के चितचाही बात का होना)[4] है ।

करन का 'पर्यायोक्ति' का लक्षण :-

मिस करकारज सधिये जो होय सुहोत ।।
पर्यायोक्ति तासों कहत करन सुमति अवदात ।।[5]

करन ने प्रस्तुतांकुर, समासोक्ति, आक्षेप तथा अन्योक्ति अलंकारों को नहीं माना ।

१- काव्य-निर्णय, छं०-२-३, पृ०-१७.
२- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन' पृ०-२.
३- काव्य-निर्णय, छं०-३-४, पृ०-१९८.
४- काव्य-निर्णय, छं०-११.
५- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-४.

छठा वर्ग विरुद्ध, विभावना, व्याघात, विशेषोक्ति, असंगति, तथा विषम अलंकारों का है। 'विरुद्ध' अलंकार के नौ भेद -- १-जाति से जाति का विरोध, २- जाति से क्रिया का विरोध, ३-जाति से द्रव्य का विरोध, ४-गुण से गुण का-विरोध, ५-क्रिया से क्रिया विरोध, ६-गुण से क्रिया का विरोध, ७-गुण से द्रव्य का-विरोध, ८-क्रिया से द्रव्य का विरोध , ९-द्रव्य से द्रव्य का विरोध, का उल्लेख किया गया है। 'विभावना' के 'प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम् तथा षष्ठ भेद बतलाए गए हैं। 'व्याघात' तथा 'विषम' दोनों के प्रथम और तृतीय नामक तीन भेदों का उल्लेख हुआ है। 'असंगति' के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय नामक तीन भेदों का उल्लेख हुआ है। दासजी का 'विरुद्ध' अलंकार करन का 'विरोधाभास' है, किन्तु दोनों आचार्यों द्वारा दिए लक्षण भिन्न हैं --

देव का 'विरुद्ध' का लक्षण :-

कहत सुनत देखत जहां, है कछु अनमिल बात।
चमत्कारजुत अर्थजुत, सो विरुद्ध अवदात ।।[१]

करन का 'विरोधाभास' का लक्षण :-

बरन लगै विरोध सौ अर्थ कथा अरोध।
ताहि विरोधाभास कहि करन प्रबोध ।।[२]

दास ने 'विभावना' के छ:भेद माने हैं, करन ने 'विभावना' के भेदों का उल्लेख नहीं किया। करन तथा दास दोनों के 'विभावना' के लक्षण समान हैं --

देव का 'विभावना' लक्षण :-

बिनु के लघु कारनन्हते, कारज प्रगट होइ।[३]

करन का 'विभावना' लक्षण :-

प्रतिबंधक के होत ही, कारज पूरन होइ।
ताहि विभावना कहत हैं, करन सुकवि सबकोइ ।।[४]

१- काव्य-निर्णय, छं०-२, पृ०-१२८.
२- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-८.
३- काव्य-निर्णय, छं०-१६, पृ०-१३०.
४- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-८.

दोनों ही आचार्यों के `विशेषोक्ति` के उदाहरणों का भाव प्राय: मिलता है। करन ने व्याघात का वर्णन नहीं किया है।

उल्लास, अवज्ञा, अनुज्ञा, लेश, विचित्र, तद्गुण, अतद्गुण, पूर्वरूप, अनुगुण, मीलित, सामान्य, उन्मीलित तथा विशेषक आदि अलंकारों का सातवां वर्ग बनाया गया है। `उल्लास` तथा `अवज्ञा` अलंकारों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ नामक चार-चार भेदों का वर्णन किया गया है। `लेश` के दो भेद -- १-दोष को गुण मानना, तथा २-गुण को दोष मानना बतलाए गए हैं। करन ने लेश तथा पूर्वरूप को छोड़, शेष अलंकारों का विवेचन नहीं किया। `लेश` अलंकारों के दोनों आचार्यों के उदाहरणों में अन्तर नहीं है, करन ने भी लेश के दो भेद किये हैं --

गुन ते दूषन न होत जह दूषन ते गुन जानि।
लेश करन ताको कहत कवि का विबुध बखान।।[१]

सम समाधि, परिवृत्त, भाविक, प्रहर्षण, विषादन, असम्भव, सम्भावना, समुच्चय, अन्योन्य, विकल्प, सहोक्ति, विनोक्ति, प्रतिषेध, विधि तथा काव्यार्थापत्ति नामक सोलह अलंकारों का आठवां वर्ग है। करन ने केवल समाधि का ही वर्णन किया है।

नवें वर्ग में सूक्ष्म, पिहित, युक्ति, गूढ़ोत्तर, गूढ़ोक्ति, मिथ्या, अध्यवसित व्यवसित, ललित, विवृतोक्ति, व्याजोक्ति, परिकर तथा परिकरांकुर अलंकार हैं। दास ने इस वर्ग के अलंकारों में से किसी के भी भेद नहीं किए हैं। करन ने केवल `ललित` का ही वर्णन किया है।

स्वभावोक्ति, हेतु, प्रमाण, काव्यलिंग, निरुक्ति, छेकोक्ति, प्रत्यनीक, परिसंख्या, तथा प्रश्नोत्तर अलंकारों का दसवां वर्ग माना गया है। करन ने उपर्युक्त वर्ग में से किसी का भी विवेचन नहीं किया है।

यथासंख्या, एकावली, कारणमाला, उत्तरोत्तर, रसनोपमा, रत्नावली, पर्याय तथा दीपक आदि अर्थालंकारों का अन्तिम वर्ग है। करन ने केवल दीपक तथा पर्याय को ही माना है। दोनों आचार्यों के `दीपक` के सामान्य उदाहरणों में अन्तर है।

१- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-३.

करन का लक्षण :-

एक क्रिया बहु द्रव्य बहु द्रव्य एक क्रिया जाल ।
दीपक तासों करन है पंडित बुद्धि विसाल ।।[1]

तथा दासजी ने इसके लक्षण में लिखा है :--

एक शब्द बहु में लगै, दीपक जानै सोइ ।[2]

करन द्वारा वर्णित अनेकालंकार, तद्गुन, अत्युक्ति, दृष्टान्त, पर्यायोक्ति, तथा विषाद आदि अलंकारों का दास ने कोई उल्लेख नहीं किया है। 'अलंकार-मूल-वर्णन' के अन्तर्गत दास द्वारा निर्दिष्ट संसृष्टि और संकर[3] का करन ने कोई उल्लेख नहीं किया।

दास ने 'उन्नीसवें उल्लास में 'गुण-निर्णय'-वर्णन के अन्तर्गत अनुप्रास का निरूपण किया है। बीसवें में दास ने 'श्लेषालंकार' को विरोधाभास, मुद्रा, वक्रोक्ति, एवं पुनरुक्तवदाभास के साथ लेकर शब्दालंकार स्वीकार किया है और साथ ही यह भी कहा है कि इसे कोई भी अर्थालंकार नहीं बतलाता।[4] इक्कीसवें उल्लास में चित्रालंकारों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। बाईसवें उल्लास में 'तुक' का वर्णन है। करन ने इन सभी का वर्णन नहीं किया है।

शब्दालंकारों में दास ने 'अनुप्रास' के छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास तथा लाटानुप्रास भेदों का विवेचन किया है।[5] करन ने छेकानुप्रास का लक्षण किया है।[6] वक्रोक्ति का वर्णन दोनों आचार्यों ने किया है --

करन का वक्रोक्ति का लक्षण :-

सुश्लेष अरु काकु करि बरन जु बाचक सोइ ।
वक्रोक्ति तासों कहत करन सुकवि सबकोइ ।।[7]

१- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-१.

२- काव्य-निर्णय, पृ०-१८८.

३- काव्य-निर्णय, पृ०-२८-३०.

४- श्लेष विरोधाभास है, शब्दालंकृत वास । मुद्रा अरु वक्रोक्ति पुनि, पुनरुक्तवदाभास ।।
इन पांचहु को अर्थ सों, भूषन कहि न कोइ । जदपि अर्थ भूषन सकल सब्दशक्ति में होइ ।।
---काव्य-निर्णय, छं०-१-२, पृ०-२०५.

५- काव्य-निर्णय, उल्लास-१९, पृ०-१९७-२००.

६- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-३.

७- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-७.

दास का वक्रोक्ति का लक्षण :

व्यर्थ काकु ते अर्थ कौ फेरि लगावै तर्क ।
वक्र उक्ति तासों कहैं, सही सबै कविराय ।। [१]

दास के भावोदय, [२] भाव-सन्धि, भावशबल आदि भावालंकारों का कहन मे कोई वर्णन नहीं किया है।

पद्माकर तथा करन :-

पद्माकर परम्परा की ज्योति रूप थे। इनका जन्म १८१० में सागर में हुआ और मृत्यु अस्सी वर्ष की आयु में (संवत् १८९०) में कानपुर में हुई। ये विभिन्न राजाओं की छत्रछाया में रहे और इनके अधिकांश ग्रन्थों का निर्माण भी आश्रयदाताओं के लिये ही हुआ। 'हिम्मत बहादुर-विरुदावली' नामक वीर रसात्मक ग्रन्थ की रचना इन्होंने रजधान के गोसाई अनूपगिरि उपनाम हिम्मत बहादुर (अवध-नरेश के सेनापति) के लिए की।

हिन्दी-संसार में प्रसिद्ध इनके ग्रन्थ 'जगद्विनोद' का निर्माण जयपुर-नरेश प्रतापसिंह, जिन्होंने इन्हें 'कविराज शिरोमणि' की उपाधि प्रदान की थी, के पुत्र जगतसिंह के लिये हुआ था। सम्भवतः यहीं रह कर इन्होंने 'पद्माभरण' नामक ग्रन्थ भी बनाया था। आयु अवसान के पूर्व इन्हें श्वेत-कुष्ठ हो गया था। उसी समय इन्होंने 'प्रबोध पचासा' नामक विराग और भक्तिरस से पूर्ण ग्रन्थ लिखा। अपने वार्धक्य में ये कानपुर आ गये और वहीं गंगा-तट पर बैठकर 'गंगालहरी' नामक ग्रन्थ बनाया, जिसकी यथेष्ट प्रसिद्धि हुई, इनके अतिरिक्त इन्होंने 'रामरसायन' [३] दोहा-चौपाइयों, राम-कथा-सम्बन्धी काव्य रचा। इनके रीति ग्रन्थ 'जगद्विनोद' में नायिका-भेद तथा विभिन्न रसों का और 'पद्माभरण' में अलंकारों का वर्णन है। यहाँ 'पद्माभरण' के आधार पर करन और पद्माकर की तुलना की जा रही है।

'पद्माभरण' कुल तीन प्रकरणों में समाप्त हुआ है, अर्थालंकार प्रकरण, शब्दालंकार प्रकरण तथा संसृष्टि-संकर प्रकरण। अर्थालंकार प्रकरण में 'पद्माकर' ने

१- काव्य-निर्णय, पृ०-२०८.
२- काव्य-निर्णय, छं०-४, पृ०-४१-४३.
३- इसमें पद्माकरजी को काव्य सम्बन्धी सफलता नहीं मिली, सम्भव है यह इनका न हो। ----हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०-[illegible], रामचन्द्र शुक्ल.

काव्यलिंग और विशेषक नामक दो अलंकारों का मतिराम से अधिक विवेचन किया है। इस प्रकार इन्होंने कुल मिलाकर ११४ अलंकार माने हैं। इन्होंने मतिराम का ही क्रम रखा है, केवल अन्तर इतना है कि मतिराम ने `तद्गुण` के उपरान्त `अतद्गुण` और फिर `पूर्वरूप` को गिनाया है और पद्माकर ने तद्गुण के बाद पहले पूर्वरूप को और फिर `अतद्गुण` को रखा है।

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दीपक, व्यतिरेक, श्लेष, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, लेश, तथा वक्रोक्ति अलंकारों का वर्णन पद्माकर तथा करन दोनों ही आचार्यों ने किया है। परन्तु विभिन्न अलंकारों के भेदों तथा लक्षणों में प्राय: अन्तर है, और कुछ सामान्य-लक्षण समान भी है।

करन ने पर्यायोक्ति का कोई भेद नहीं बतलाया है, पद्माकर ने इसके दो भेद[1] किए हैं। करन की पर्यायोक्ति का लक्षण पद्माकर से साम्य नहीं रखता। पद्माकर ने `व्याजस्तुति` के तीन भेद किये हैं। करन ने उदाहरण दिया है, लक्षण तथा भेदों का वर्णन नहीं किया।

पद्माकर का व्याजस्तुति लक्षण :-

निन्दा में स्तुति है जहां, स्तुति में निन्दा जत्र।
अन्य स्तुति में अन्य की, स्तुति भाषत है तत्र।।
या विधि तीन प्रकार की व्याजस्तुति पहचान।।[2]

करन का व्याजस्तुति का उदाहरण :-

धूरि लगावत सकल तन बिषस न सुनी बखान।
काशी बस कर करिहौ कहां कूछी शीव निदान।।[3]

करन का `असंगति` का लक्षण पद्माकर के प्रथम असंगति से मिलता है--

१- पर्यायोक्ति सुगम्य कहं, फेरि बचन रचनान।
साधन मिसि करि, काज को, यों द्वै बिधि उर आन।।
--- पद्माभरण, छं०-~~xxxxxxxx~~ १२३, पृ०-५४.

२- पद्माभरण, छं०-१२५-१२६ (प्रथमार्द्ध), पृ०-५४.

३- ह०प्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०-२५.

करन का असंगति लक्षण :-

और ठौर मै कीजिये और ठौर के काम ।
ताहि असंगति कहत हैं करन सुकवि गुनग्राम ।। [१]

पद्माकर का असंगति का लक्षण :-

सु असंगति कारन कहूं, कारज औरै ठांहि ।
विय उरजनि नख-छत लगे, बिथा सौति-उर माहि ।। [२]

करन का 'पर्यायोक्ति' अलंकार पद्माकर का 'प्रथम प्रहर्षणी' है । करन ने पर्यायोक्ति का लक्षण निम्न प्रकार किया है --

मिसकर कारज साधिये जो होय सुहोत ।
पर्यायोक्ति तासौ कहत करन सुमति उदयोत ।। [३]

पद्माकर के 'प्रथम प्रहर्षणी' के लक्षण का भी यही भाव है --

वांछित-फल सिद्धि-जतन बिन, प्रथम प्रहर्षन होई ।। [४]

मिश्रालंकार-प्रकरण के अन्तर्गत पद्माकर ने रसवत, प्रेय, ऊर्जस्वित, समाहित, भावोदय, भावसंधि, और भावशबलता आदि सात रस एवं भावालंकारों तथा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, ऐतिह्य तथा संभव आदि आठ प्रमाणालंकारों का विवेचन किया है । पद्माकर द्वारा वर्णित संसृष्टि-संकर प्रकरण का करन ने कोई उल्लेख नहीं किया है ।

केशव तथा करन :-

केशवदास का नाम हिन्दी साहित्याकाश के जगमगाते हुए ज्योति-पुन्ज सूर तथा तुलसी के साथ बड़े आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है । केशव के अलंकार-योजना पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि कवि के कतिपय ग्रन्थों में तो कुछ प्रमुख अलंकार ही प्रयुक्त हैं और कुछ में कवि का अलंकार-वैविध्य के प्रति विशेष मोह देखनेमें आता है । 'रामचन्द्रिका' तथा 'वीरसिंहदेव-चरित' प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत हैं तथा 'विज्ञानगीता', 'रतनबावनी' और 'जहांगीर'-जस-चन्द्रिका' द्वितीय श्रेणी में आती हैं ।

१- ह0प्र0 साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ0-७.
२- पद्माभरण, छं0-१९६, पृ0-५६.
३- ह0प्र0 साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ0-४.
४- पद्माभरण, छं0-२१८, पृ0-६६.

इन प्रबन्ध-काव्यों के आधार पर करन का केशव से मिलान किया गया है --

केशव ने अलंकार के साधारण अथवा सामान्य तथा विशिष्ट दो प्रकार माने हैं, किन्तु वे इन दोनों की न तो परिभाषा देते हैं और न व्याख्या ही करते हैं, केवल इसे परम्परागत मान्यता के रूप में ही ग्रहण कर लेते हैं।[1] फिर 'सामान्य' अलंकार के चार भेद किए गये हैं --- १-वर्ण, २-वर्ण्य, ३-भू-श्री, ४-राज-श्री[2]।

<u>वर्णालंकार :-</u>

'कविप्रिया' का पांचवां प्रभाव-वर्णालंकार वर्णन को अर्पित है। वर्णालंकार के अन्तर्गत केशव ने श्वेत, पीला, काला, अरुण (लाल), धूम्र, नीला तथा मिश्रित - इन सात प्रकार के रंगों को लिया है।[3] करन ने किन्हीं रंगों का उल्लेख नहीं किया है।

<u>वर्ण्यालंकार :-</u>

छठे प्रभाव में केशव ने वर्ण्यालंकार का निरूपण किया है। जिन वस्तुओं की आकृति अथवा गुण लेकर कोई उक्ति कही जाती है, उन्हें केशव वर्ण्य मानते हैं, ये वर्ण्य अनेक हैं पर केशव ने अट्ठाईस को ही प्रमुख माना है।[4]

करन ने ऐसे किसी वर्ण्यालंकार का उल्लेख नहीं किया है।

<u>विशिष्टालंकार :-</u>

'कविप्रिया' के नवें प्रभाव से लेकर सोलहवें प्रभाव तक केशव ने विशिष्टालंकारों या विशेषालंकारों का विवेचन किया है जिसमें शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों ही सम्मिलित हैं। परन्तु उन्होंने इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया। केशव ने विशेषालंकारों की संख्या ३७ मानी है। इनके नाम इस प्रकार हैं ---

---

१- कविन कहे कविजान के अलंकार द्वै रूप।
एक कहै साधारणी, एक विशिष्ट सरूप ।। --कविप्रिया, पृ०-५, छं०-२.

२- सामान्यालंकार को चारि प्रकार प्रकाश।
वर्ण वर्ण्य, भू-राज-श्री, भूषण केशवदास ।। --कविप्रिया, पृ०-५, छं०-३.

३- सेत पीत कारे अरुण, धूमर नीले वर्ण।
मिश्रित केशवदास कहि, सात भांति शुभकर्ण ।। --कविप्रिया, पृ०-५, छं०-४.

४- कविप्रिया, पृ०-६, छं०-१-३.

१-स्वभाव (स्वभावोक्ति), २-विभावना, ३-हेतु, ४-विरोध, ५-विशेष, ६-उत्प्रेक्षा, ७-आक्षेप, ८-क्रम, ९-गणना, १०-आशिष, ११-प्रेमा, १२-श्लेष, [illegible] (नियम और विरोधी), १३-सूक्ष्म, १४-लेश, १५-निदर्शना, १६-ऊर्जस्व, १७-रसवत, १८-अर्थान्तरन्यास, १९-व्यतिरेक, २०-अपहुति, २१-उक्ति (वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्याधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति, और सहोक्ति), २२-व्याजस्तुति, २३-निन्दास्तुति, २४-अमित, २५-पर्यायोक्ति, २६-युक्त, २७-समाहित, २८-सुप्रसिद्ध, २९-प्रसिद्ध, ३०-विपरीत, ३१-रूपक, ३२-दीपक, ३३-प्रहेलिका, ३४-परवृत्त, ३५-उपमा, ३६-यमक तथा ३७-चित्रालंकार।[1]

केशव ने विभावना के दो भेद माने हैं[2] करन का `विभावना` का लक्षण केशव के लक्षण से साम्य रखता है --

> प्रतिबंधक दोऊ तहू कारज पूरन होइ।
> ताहि विभावना कहत हैं, करन सुकवि सब कोइ।।[3]

करन और केशव के `लेश` के लक्षण में भिन्नता है --

<u>करन का `लेश` का लक्षण :-</u>

> गुन में दूषण न होत जह दूषणन में गुन जानि।
> लेश कहत तासो कहत कवि जन विबुध बखान।।[4]

<u>केशव का `लेश` का लक्षण :-</u>

> चतुराई के लेश ते, चतुर न समुझें लेश।
> बरनत कवि कोविद सबै ताको केशव लेश।।[5]

`व्यतिरेक` के लक्षण में करन और केशव दोनों में अन्तर है।

केशव वक्रोक्ति अलंकार वहां मानते हैं, जहां सीधी-सादी बात में टेढ़ा अथवा गूढ़ भाव प्रकट किया गया हो --

> केशव सूधी बात में, बरणत टेढ़ो भाव।
> वक्रोक्ति तासों कहैं, सदा सबै केशवदास।।[6]

१- कविप्रिया, पृ०-९.
२- कारज को बिनु कारणहि, उदो होत जेहि ठौर। तासों कहत विभावना, केशव कवि सिरमौर
कारण कौनहु आनते, कारज होय जु सिद्ध। जानो अन्य विभावना, कारण छांडि प्रसिद्ध॥
--कविप्रिया, पृ०-९, छं०-११ तथा १३.
३- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-६.
४- " " " " पृ०-३.
५- कविप्रिया, पृ०-११, छं०-१७.
६- " पृ०-१२, छं०-३.

करन का 'वक्रोक्ति' का लक्षण :-

सुरश्लेष बल काकु करि बरन न जायत होइ ।
वक्रोक्ति तासों कहत करन सुकवि सब कोइ ।।[१]

केशव 'विशेषोक्ति' अलंकार वहां मानते हैं, जहां कारण के रहने पर भी कार्य सिद्ध न हो —

विद्यमान कारण सकल, कारज होय न सिद्ध ।
सोइ उक्ति विशेषमय, केशव परम प्रसिद्ध ।।[२]

करन का 'विशेषोक्ति' का लक्षण :-

विद्यमान कारन जहां कारज होत न सिद्धि ।
ताहि कहत विशेषोक्ति कहि बरनत करन प्रसिद्ध ।।[३]

केशव और करन के 'विशेषोक्ति' अलंकार में समानता है ।
केशव का 'पर्यायोक्ति' का लक्षण 'पर्यायोक्ति' का न रह कर 'प्रहर्षण' का-सा बन गया है —

कौनहु एक अदृष्ट ते, अनही किये जु होय ।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोक्ति सोय ।।[४]

करन का 'पर्यायोक्ति' का लक्षण :-

मिस कर कारज साधिये जो होय सुहोत ।
पर्यायोक्ति तासों कहत करन सुमति उद्योत ।।[५]

१- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-७.
२- कविप्रिया, पृ०-१२ , छं०-१४.
३- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-८.
४- कविप्रिया, पृ०-१२, छं०-२६.
५- ह०प्र० साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ०-४.

केशव ने 'रूपक' के तीन भेदों का वर्णन किया है। करन ने भेदों का उल्लेख न कर केवल रूपक का लक्षण निरूपित किया है --

विषाई जहां अमेद है विषय रंजित हीत ।।
कौतुक अमेद मिलि रूपक है विधि सोइ ।।[१]

केशव का 'दीपक' का लक्षण :-

वाच्य क्रिया गुण द्रव्य को, बरनहु करि इक ठौर ।
दीपक दीपति कहत हैं, केशव कवि सिरमौर ।।[२]

करन का 'दीपक' का लक्षण :-

दीपक इक क्रिया जह द्रव्य बहु द्रव्य इक क्रिया जाल ।।
दीपक तासौं करन है पंडित बुद्धि विशाल ।।[३]

केशव ने कुछ नये अलंकारों की भी सृष्टि की है, जैसे -- अमित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत और अन्योक्ति। केशव द्वारा निरूपित दीपक के मणि तथा 'माला-दीपक' भेदों का उल्लेख करन ने नहीं किया। यमक का अव्ययेत तथा सव्ययेत, सुकर तथा दुष्कर आदि भेदों में वर्गीकरण का करन ने कहीं उल्लेख नहीं किया है।

-----:0:-----

१- ह0प्र0 साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ0-१.

२- कविप्रिया, पृ0-१३, छं0-२१.

३- ह0प्र0 साहित्य-चन्द्रिका, कवि करन, पृ0-१.

ध्वनि विवेचन के क्षेत्र में --

दास (भिखारीदास) तथा करन :-

दास ने 'शृंगार-निर्णय' (रचना काल संवत् १८०७)[१] में ध्वनि-भेदों का सविस्तार वर्णन किया है। दास ने 'जहां वाच्यार्थ शब्द-जनित अर्थ से व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार हो, उसे 'ध्वनि' कहा है।[२] जब कि कवि करन के मतानुसार 'जो-सुनायी देता है वह शब्द है और जिसके अर्थ को हृदय से जाना जाय, वही 'ध्वनि' है।[३] ध्वनि के विवक्षित अन्य परवाच्य एवं अविवक्षितवाच्य भेद दास तथा करन दोनों को ही मान्य है।[४] करन को ध्वनि के तीन अन्य भेद रुढ़, जोगक तथा जोग-रुढ़ भी मान्य है, किन्तु दास ने इस प्रकार के भेदों का वर्णन कहीं नहीं किया है। करन ने तीनों भेदों को लक्षण सहित अभिव्यक्त कर, रुढ़ के तीन भेद - मृ, मृदा तथा मंडप का निरूपण किया है, जोगक के तीन भेदों को गिनाकर, 'जोग रुढ़' के भी प्रथम तीन भेद पंकज, मुरुह, नीर, निधि बतलाये हैं तथा क्षीर नीर निधि, दुग्धनिधि, सागर को जोग रुढ़ के तीन अन्य भेद बतलाये हैं। दास ने इस प्रकार के भेदों को नहीं माना है। 'जहां प्रयुक्त शब्दों का वाच्यार्थ वक्ता की इच्छा न होने पर भी लक्षणा के द्वारा शब्द-स्वभाव के कारण कुछ और ही हो, वहां दास अविवक्षित-

---

१- संवत् विक्रम भूप को अट्ठारह से सात।
माधव सुदि तेरस गुरौ अरवर थल विख्यात।। ---शृंगार निर्णय, पृ०-२,छं०-४.

२- वाच्य-अरथ ते व्यंग में चमत्कार अधिकार।
धुनि ताही को कहत हैं,उत्तम काव्यविचार। --शृंगार निर्णय,षष्ठ उल्लास,पृ०-११३.

३- जो सुनियत सो शब्द है अर्थ हिये पहचान।
कुल अनुबरन विभाग कर शब्द ज्ञान किय बान ।।२३८।।
-----रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१८.

४- धुनि को भेद दु भांति है, कै भारती-धाम।
'अविवच्छित' औ विवच्छित-वाच्य दुहुन के नाम।।
-----शृंगार निर्णय,षष्ठ उल्लास, पृ०सं०-११५.

अविवक्षित है एक पुन एक विवक्षित होइ।
दोउ है द्वै भांति है जानि लीजिये सोइ ।।२३९।।
-----रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२२.

वाच्य ध्वनि मानते हैं।[१] करन ने अविवक्षित वाच्य ध्वनि का लक्षण निरूपित न कर इसके दो भेद अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि तथा अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि किये हैं।[२] ये भेद दास को भी मान्य हैं।[३] कवि करन ने विवक्षितवाच्य ध्वनि के दो भेद असंलक्ष्यक्रम और संलक्ष्यक्रम व्यंग्य माने हैं, ये भेद दास को भी मान्य हैं।[४] दास ने अर्थान्तर संक्रमित ध्वनि उसे कहा है, जहां वाच्यार्थ अर्थांतर में संक्रमण करे,- बदले, अर्थात् जहां शब्द का अर्थ-प्रकरण के अनुसार अपने अभिधेयार्थ को त्यागकर अपने विशेष स्वरूप अर्थांतर में चला जाय।[५] कवि करन का अर्थान्तर तिरस्कृति ध्वनि का लक्षण दास के लक्षण से साम्य रखता है। दास ने अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि उसे कहा है, जहां वाच्यार्थ का सब प्रकार से तिरस्कार किया जाय।[६] जब कि कवि-

---

१- वक्ता की इच्छा नहीं वचन-हिं को जु सुभाव।
व्यंग करै तिहिं वाच्य सों, अविवच्छित ठहराव।।
---श्रृंगार निर्णय, षष्ठ उल्लास, पृ०सं०-११५.

२- अविवक्षित द्वै को इक अर्थ संक्रमित होत।
वाच्य तिरस्कृत दूसरी कवि कुल करत उदोत।।२४०।।
---रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२२.

३- अरथांतर संक्रमित इक है अविवच्छित वाच्य।
पुनि: "अरथांतरतिरस्कृत" दूजो भेद पराच्य।।
---श्रृंगार निर्णय, षष्ठ उल्लास, पृ०सं०-११५.

४- कहँ विवच्छितवाच्य धुनि, चांह करैं कवि जाह।
असंलच्छक्रम लच्छक्रम होत भेद द्वै ताह।।
---श्रृंगार निर्णय, षष्ठ उल्लास, पृ०सं०-११८.

दूजो विवक्षित वाच्य के असंलक्ष्यक्रम भिन एक,।
संलक्ष्यक्रम होइ विध शब्द अर्थ को टेक।।२४३।।
---रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२३.

५- अर्थ अनत रैसे हिं कहं, नाहि व्यंग की चाह।
व्यंग निकार दोहू करैं चमत्कार कवि नाह।।
---श्रृंगार निर्णय, षष्ठ उल्लास, पृ०सं०-११६.

६-है अरथांतर तिरस्कृति निपट तजि धुनि सोइ।
सबै लच्छ ते पाइये, मुख्य-अरथ को गोइ।।
---श्रृंगार निर्णय, षष्ठ उल्लास, पृ०सं०-११६.

करन अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य ध्वनि वहां मानते हैं, जहां मुख्यार्थ अपने स्वरूप का सर्वथा परित्याग करके, अपने से भिन्न किसी अर्थ-स्वरूप में परिणत हो जाता है। दास ने असंलक्ष्यक्रम व्यंग वहां कहा है, जहां वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का पौर्वापर्य क्रम भलीभांति प्रतीत न हो।[1] जबकि कवि करन ने असंलक्ष्यक्रम व्यंजन में रसाभास, भावाभास, ~~भावाभास~~ रस और अनुभाव को स्थान दिया है।[2]

'असंलक्ष्यक्रम व्यंग' के दास ने आठ प्रकार स्वीकार किये हैं -- रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भाव शांति, भावोदय, भाव संधि और भाव शबलता, जबकि कवि-करन ने चार भेद माने हैं -- रस प्रधान, भाव प्रधान, रसाभास तथा भावाभास। करनने चारों भेदों को लक्षण सहित समझाया है, जबकि दास ने इनके लक्षणों का निरूपण नहीं किया है। दास ने 'संलक्ष्यक्रम व्यंग' के शब्द शक्ति से, अर्थ शक्ति से और शब्द-अर्थ-शक्ति से तीन भेद किये हैं,[3] कवि करन ने ध्वनि वर्ग के शब्द शक्ति और अर्थ शक्ति दो ही प्रकार स्वीकार किये हैं।[4] कवि करन ने शब्द-शक्ति मूलक ध्वनि को दो भागों में विभक्त किया है -- १-अलंकार ध्वनि, २-वस्तु ध्वनि। दास को भी शब्द शक्ति मूलक ध्वनि के ये दोनों भेद मान्य हैं।

कवि करन ने अर्थ शक्ति मूलक ध्वनि के मुख्य तीन भेद --स्वत:संभवी, कवि-प्रौढ़ी तथा कवि निबद्ध, स्वीकार किये हैं।

दास ने स्वत:संभवी तथा कवि प्रौढ़ी को स्वीकार किया है, पर कवि निबद्ध को छोड़ दिया है। उपर्युक्त तीनों भेदों में भी कवि करन ने प्रत्येक के चार-चार भेद --

---

१- असंलक्ष्यक्रम व्यंग जहं, रस-पूरनता धार।
लखि न परै क्रम जहं छबि, सज्जन-चित्त-उदार।।

---श्रृंगार निर्णय, षष्ठ उल्लास, पृ०सं०-११८.

२- रस अनुभाव दुहो जहां पुनि तिनके आभास।
असंलक्ष्यक्रम होत तहं बरनत बुद्धि विलास।।२४६।।

---रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२३.

३- होत लक्ष्यक्रम व्यंग में, तीन-भांति की व्यक्ति।
सब्द अर्थ की सक्ति है, औ सब्दारथ-सक्ति।।

---श्रृंगार निर्णय, षष्ठ उल्लास, पृ०सं०-११६.

४- नीरज कानन कामलतनत विलोकति चित्त।
ठाठ अलीकन मध्यगत दुत गुनारमा वित्त।।२७४।।

--------शेष आगे पृष्ठपर--

क- अलंकार ते अलंकार व्यंग, ख- वस्तु ते वस्तु व्यंग, ग- अलंकार ते वस्तु तथा घ-वस्तु ते अलंकार को माना है। दास ने स्वतः संमती के ही केवल वस्तु से वस्तु, वस्तु से अलंकार अलंकार से वस्तु और अलंकार से अलंकार व्यंग्य रूप चार भेद किये हैं। कवि करन तथा दास दोनों ने ही प्रत्येक का पृथक-पृथक उदाहरण निरूपित किया है। दास ने 'काव्य-निर्णय' की विविध हस्तलिखित व मुद्रित प्रतियों में -- अप्रबंध ध्वनि, अप्रसंग ध्वनि, प्रबंध ध्वनि और प्रसंग ध्वनि आदि विविध शीर्षक दिये हैं। कवि करन ने इस प्रकार के शीर्षकों का कहीं पर भी उल्लेख नहीं किया है। 'दास' ने 'स्वयं--लक्षित व्यंग्य' के शास्त्रीत्यानुसार -'पद, वाक्य, प्रबंध, वर्ण और रचनागत भेदों को शब्द, वाक्य, पद, एक देशी और वर्ण रूप से पांच प्रकार का कहा है, कवि करन 'स्वयंलक्षित व्यंग्य' का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। दासजी ने 'शृंगार-निर्णय' के षष्ठ उल्लास में ध्वनि के मुख्य 'तेतिस' भेद मानते हुये आर्थी व्यंजना के विधान से प्रस्फुटित दस ध्वनियों का उल्लेख कर कुल तेंतालीस (४३) मुख्य मान कर इन्हें 'अलंकार' और 'संकर' के भेदोपभेद द्वारा अनंत कहा है।[१] कवि करन ने 'ध्वनि काव्य' को १८ भागों में विभक्त किया है --

अविवक्षितवाच्य ध्वनि काव्य के दो भेद --
(अर्थान्तरसंक्रमित वाच्य ध्वनि' काव्य और 'अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य ध्वनि' काव्य)।

१- है अविवक्षित वाच्य और रसै व्यंग इक लेखि।
सब्द-सक्ति है आठ पुनि, अर्थ-जुक्त अवरेखि ।।
उभै-सक्ति इक औरि पुनि तेरह सब्द-प्रकास।
इक प्रबंध- धुनि पांच पुनि, संयलच्छ गुनि 'दास' ।।
ए सब तेतीस औरि दस, व्यक्त-आदि धुनि ल्याइ।
तेतालीस प्रकास धुनि, दीनों मुख्य गिनाइ ।।
सब आलंन, सब भूषनंन, सब संकरंन मिलाइ।
गुनि, गुनि गननो कीजिये, तौ अनंत बढ़ि जाइ ।।

--- शृंगार निर्णय, षष्ठ उल्लास, पृ०सं०-१४४.

'विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि' काव्य का एक भेद --
'असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि काव्य'
और अविवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि काव्य के दो भेद--
'संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि, काव्य, शब्द शक्त्युद्भव ध्वनि काव्य -|
अर्थ शक्त्युद्भव ध्वनि काव्य के भेद के १२ भेद |पन्द्रह
और शब्दार्थोभय शक्त्युद्भव ध्वनि काव्य का १ भेद -|
करन कृत ध्वनि काव्य के भेद = अट्ठारह

दोनों आचार्यों द्वारा दिये अधिकांश लक्षणों में कुछ अन्तर अवश्य परिलक्षित होता है, फिर भी प्राय: भाव एक ही है। कुछ इस प्रकार के लक्षण नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं।

दुजो विवक्षितवाच्य के असंलक्ष्यक्रम बिन एक।
संलक्ष्य क्रम होइ बिध शब्द-अर्थ की टेक ।।२४३।।
--- रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२३.

कहें विवच्छितवाच्य धुनि, जांह करें कवि चाह।
असंलक्ष्यक्रम 'लक्ष्यक्रम' होत भेद द्वै ताह ।।
---श्रृंगार निर्णय, षाष्ठ उल्लास, पृ०सं०-११८.

ध्वनि भेद दोहा :-

अविवक्षित है एक पुन एक विवक्षित होइ।
दोउ द्वै द्वै भांति है जानि लीजियै सोइ ।।२३६।।
----रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२२.

धुनि को भेद दु भांति है, भनि भारती-धाम।
'अविवच्छित' औ विवच्छित-वाच्य दु धुन के नांम ।।
----श्रृंगार निर्णय, षाष्ठ उल्लास,पृ०सं०-११५.

अविवक्षितवाच्य ध्वनि लक्षण :-

अविवक्षित द्वै अर्थ इक अर्थ संक्रमित होत।
वाच्य तिरस्कृत दूसरी कवि कुल करत उदोत ।।२४०।।
----रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-२२.

'अर्थांतर संक्रमित' इक है अविवच्छित वाच्य।
पुनि: 'अर्थांतरतिरस्कृत' दूजो भेद पराच्य ।।
----श्रृंगार निर्णय,षाष्ठ उल्लास,पृ०सं०-११५.

।२। आचार्य करन का विशिष्ट प्रदेय :-

रस विवेचन के क्षेत्र में :--

केशव जैसे आचार्यों ने भावों के पांच प्रकार स्वीकार किये हैं --- विभाव, अनुभाव, स्थायी भाव, सात्विक तथा व्यभिचारी ।[1] भरतादि सभी आचार्य 'सात्विक' को 'अनुभाव' के अन्तर्गत मानते हैं। आचार्य करन ने भाव की व्याख्या भिन्न ढंग से प्रस्तुत की है। उनका कथन है कि जो रस के अनुकूल है वही भाव है। विभाव, अनुभाव, स्थायी भाव तथा व्यभिचारी भावों ~~[illegible]~~ को भाव के विभिन्न भेद अस्वीकार कर भाव के प्रकार का मौलिक उद्घाटन प्रस्तुत किया है। उन्होंने भाव के दो प्रकार स्वीकार किये हैं ---
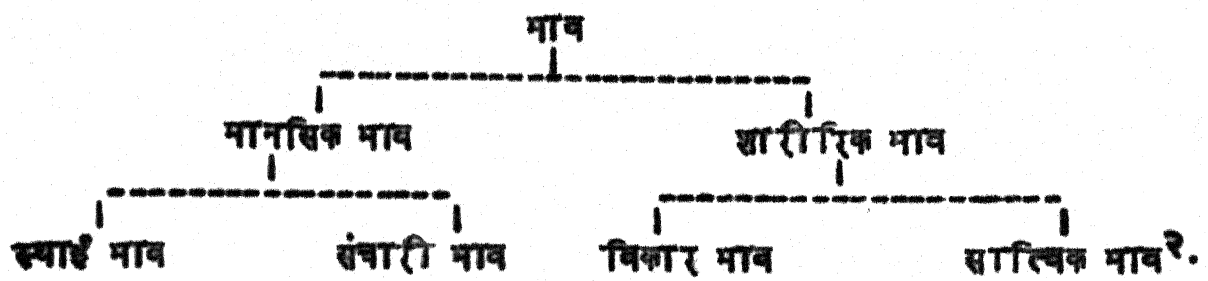
भरत और भोज ने आठ स्थायी भावों का उल्लेख किया है। करन ने 'निर्वेद' स्थायी भाव को भी स्वीकार किया है --

---

१- भाव सु पांच प्रकार के सुनु विभाव अनुभाव।
अस्थाई सात्विक कहे, व्यभिचारी कविराय ।।

----रसिक प्रिया, पृ०-६, छं०-६.

२- रस अनुकूल विकार को भाव कहत कवि गोत।
इक मानस सारीर इक है विध होत उदोत ।।८।।
स्थाई औ संचारिया दुविधि मानसिक मान।
कहि विकार शरीर सब सात्वक भाव बखान ।।९।।

----ह०प्र० रस-कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१.

रति हासी अरु सोक पुन क्रोध मोघ भय ग्लान ।
अचरज अरु निर्वेद ए स्थाई भाव बखान ।।११।।[1]

करन ने स्थायी भावों के भेदों का लक्षण निरूपण करते हुये उन्हें सोदाहरण समझाया है। करन ने रति का अत्यन्त मौलिक लक्षण निरूपित किया है --

दृस्ट वस्तु हीरा जनित मन विकार जहं होइ ।
कहु दरसन सुमिरन श्रवन अपरत पूरत सोइ ।।१२।।[2]

यथा --

सुरत सरित तरवर विटप विरह भार की भीत ।
क्यो सु केसि राध हो अंकुरित प्रजित ।।१३।।[3]

करन ने क्रोध स्थायी भाव का लक्षण निरूपण अत्यन्त अनूठे ढंग से किया है -- जहां आज्ञा का उल्लंघन होने से अप्रसन्नता, हृदय में अपमान जागृत हो, वहां क्रोध समझना चाहिये --

कहत अवज्ञादिक जनिक जहं प्रमोद प्रतकूल ।
उठत जाग परमित हिये क्रोध कहत मतकूल ।।१८।।[4]

यथा --

देखत क्षत्रिन की छटा समर समध्य मुवाल ।
ताणिम लोचन क्रोध कि पहीचाद लोचन लाल ।।१६।।[5]

करन का 'उत्साह' स्थायी भाव का लक्षण भी अपने में अनूठापन लिये हुये है --

---

१- ह०ग्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- १.
२- ,, ,, ,, पृ०सं०- १.
३- ,, ,, ,, पृ०सं०- २.
४- ,, ,, ,, पृ०सं०- २.
५- ,, ,, ,, पृ०सं०- २.

आवित सुर- तारन सुभट जनिक सन्ध्या भाव ।
कहत असुरन संकल कवि सो उत्साहर भाव ।।२।।[1]

करन 'भयानक' का लक्षण अन्य पूर्ववर्ती आचार्यों से भिन्नता लिये हुये है--

दीर्घा विकृतर वसत बृंत अपर पुर जह होह ।
जहां अन्यथा भाव है कहत सकल भय सोह ।।२२।।[2]

विश्वनाथ एवं मम्मटाचार्य ने 'निर्वेद' को स्थायी भाव का भेद न मानकर व्यभिचारी भाव का भेद माना है। स्थायी भाव का नवां भेद 'शम' को मानते हैं।

करन ने 'निर्वेद' को स्थायी भाव का नवां प्रकार स्वीकार किया है -- सन्तों की संगति से सांसारिक विषयों में वैराग्य मनोविकार को 'निर्वेद' कहते हैं--

सत संगादिक विषय ते उपजाति परमित जन ।
मन विकार निर्वेद सो जान लीजयो तन ।।२८।।[3]

काव्य-दर्पणकार का 'निर्वेद' लक्षण निरूपण करन के 'निर्वेद' लक्षण से कतिपय सीमा तक कुछ साम्य रखता है, मिश्र ने तत्व-ज्ञान होने से किन्तु करन ने सन्तों की संगति से सांसारिक विषयों में वैराग्य मनोविकार को निर्देश कहा है।

करन ने आलम्बनों के अन्तर्गत नवल वधू का उल्लेख किया है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

'उद्दीपन' के अन्तर्गत करन ने उपवन, सुक, सनि, चन्दन तथा जल का उल्लेख किया है, करन द्वारा बतलाई चन्दन वस्तु ही भानुदत्त से साम्य रखता है। करन ने 'श्रृंगार रस' का लक्षण इस प्रकार किया है --

जहां पर रति स्थायी भाव का प्रकटीकरण होता है, वहां 'विभाव' होता है। भावों की सूचना देने वाला विकार अनुभाव है 'मोह' आदि को संचारी-भाव समझना चाहिये, इन्हीं ही 'श्रृंगार रस' उत्पन्न होता है --

---

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- २.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ३.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ३.

रति स्थाई प्रगटे जहां तिय पिय मिलत विभाव ।
तथा विलोकन आद दे ते सब है अनुभाव ।।३७।।

मोहादिक जे होत है ते संचारी जान ।
इनते होत सिंगार रस कविजन करत बखान ।।३८।।[1]

करन का यह 'श्रृंगार' लक्षण मौलिक होने के कारण किसी भी संस्कृत आचार्यों से साम्य नहीं रखता ।

पूर्ववर्ती आचार्यों के श्रृंगार रस के भेदों के क्रम में अन्तर है, करन ने पहले विप्रलम्भ-श्रृंगार को स्थान दिया, तत्पश्चात् संभोग-श्रृंगार को स्वीकार किया है ।

करन ने 'विप्रलम्भ-श्रृंगार' के पांच प्रकार दिये हैं -- १-विरह, २-ईर्ष्या, ३-शाप, ४-मानिक, ५-विरह विचार --

विप्रलम्भ श्रृंगार को कहत सो पांच प्रकार ।
विरह ईरखा शाप पुन मानिक विरह विचार ।।४०।।[2]

करन ने 'काव्य दर्पणाकार' तथा 'साहित्य दर्पणाकार' द्वारा बताये 'पूर्वराग' को माना है, अन्य भेदों को छोड़ दिया है । करन के विरह, ईर्ष्या, शाप तथा पूर्वानुराग काव्य प्रकाश के विप्रलम्भ-श्रृंगार के भेदों से साम्य रखते हैं, किन्तु उन्होंने 'प्रवास' के स्थान पर 'मानिक विप्रलम्भ श्रृंगार' भेद को अपनाया है । करन ने प्रत्येक 'विप्रलम्भ-श्रृंगार' के भेदों का लक्षण निरूपित किया है जो सभी आचार्यों की दृष्टि से ओझल ही हो गये थे ।

विरह -- देख दुरावरी तत्पुष्ट बतावै तजी अदेह ।
किधौ किधौ वारी मद भर भर सरस सनेह ।।४२।।[3]

ईर्ष्या -- देखी ते उठ बैठये जो कहु करनी चाहि ।
हमैं तुम्हें अबहे कहा कहो मनावत काहि ।।४३।।[4]

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-४.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-४.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-४.
४- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-४.

जाप -- छिलत मिलत क्वरस पात मन वच सतसंजौग ।
बिच बस की रन कर सकल दिन दिन दहत वियोग ।।४३।।[१]

मात्विक लक्षण:-

पीरी सीरी वन परी धीरी की तज्या न जात ।
सुन प्रिय जात विदेश की सासे हौत उजात ।।४६।।[२]

करन का 'हास्य रस' लक्षण विश्वनाथ के 'हास्य रस' लक्षण से कुछ साम्य रखता है, करन ने विश्वनाथ के सम्पूर्ण लक्षण को न लेकर एक-एक बात को लेकर अपने लक्षण का स्पष्टीकरण किया है --

कहत विभा छवि स्पता क्रम ते इनकौ जान ।
पुलकि कपोलन आदि दे ते अनुभाव बखान ।।४८।।
श्रम हिल्लादिक हौत है ते संचारी जान ।
जाकौ स्थाई हास्य है सोई हास्य बखान ।।४९।।[३]

'करन' ने 'करुण रस' का विवेचन विभिन्न आचार्यों से भिन्न क्रम में प्रस्तुत किया है । विश्वनाथ के 'इष्टनाश' तथा भरत के 'इष्टवध' को उन्होंने स्वीकार किया है --

बिछुरन जो प्रिय वस्त को कहत विभाव सुजान ।
अश्रुपात बार मोह धौ ते अनुभाव प्रमान ।।५१।।
उक्क नादिक संचारियौ मिलि आन जहं कोइ ।
जाकौ स्थाई सोक पुन कह करुना रस सोइ ।।५२।।[४]

करन ने १०वां रस 'माया' को स्वीकार किया है, इसके बाद 'वात्सल्य' और 'भक्ति-रस' की भी मान्यता है ।

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-५.
२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-५.
३- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-६.
४- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-५.

भरत, धनन्जय, भोज, शिंगभूपाल और विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने सात्त्विक भाव तो करन की भांति माने हैं, परन्तु उन्होंने करन के `पंमाविर्क` के स्थान पर `स्तम्भ` का उल्लेख किया है।

करन ने संस्कृत आचार्यों द्वारा दिए मोह, मति तथा `मरन` को छोड़ दिया है तथा "शान्त" का उल्लेख किया है। यह करन की निजी कल्पना है।

करन का `मद` लक्षण किसी भी आचार्य से साम्य नहीं रखता है --

बढ़त हर्ष उत्कर्ष जहं कहत सुमद कविराइ।
बचन पहान मे चल विचल और अंग सुभाइ ।।६१।।[1]

करन का "श्रम" लक्षण विश्वनाथ, मम्मट, हर्षवर्धन तथा महाकवि भवभूति के `श्रम` लक्षण से साम्य नहीं रखता है तथा अपने में पूर्ण है।

करन ने स्वभावज अलंकारों तथा हेला को हाव का ही भेद माना है और अयत्नज अलंकारों को छोड़ दिया है। करन के विभ्रुत, तपन, विच्छेप तथा मोद भूपाल में नहीं मिलते। `विभ्रुत` तथा `मोद` को छोड़ कर हाव के शेष भेद करन ने भरत तथा धनन्जय के आधार पर ही लिखे हैं। इसको करन ने कौन-से ग्रन्थ के आधार पर लिखा है, कहा नहीं जा सकता।

करन का `विच्छेप` हाव लक्षण विश्वनाथ के `विच्छेप` हाव लक्षण से भिन्न है। यह हाव लक्षण कवि की निजी सम्पत्ति है -- प्रिय के प्रेम में जब प्रियतमा अपनी सुध-बुध भूल जाती है वहां विच्छेप भाव होता है --

पति सनेह रस रीत तिय सुधन कछू तन मांह।
वाही सो विच्छेप कह बरनत है कवि नाह ।।१७५।।[2]

करन का `विभ्रुत` हाव भरत, धनन्जय, शिंगभूपाल तथा विश्वनाथ आदि किसी आचार्य ने नहीं माना है।

1- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०- ६.

2- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृ०सं०-१८.

ध्वनि विवेचन के क्षेत्र में :-

आचार्य करन ने ध्वनि लक्षण के अत्यन्त नवीन रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है --

जो सुनिअ सो शब्द है अर्थ हिये पहचान ।
पुन अनुवरन विमान कर शब्द जुगत विध जान ।।
पुन स्वरूप मरजाद है जान लीजिये चित्त ।
आगम उक्त विभक्त रुव परमात्म गुन मित्त ।।
सो पुन तीन प्रकार को वरन रूप जो आह ।
रूढ़ि जौगिक तीसरो जौग रूढ़ मन चाह ।।[1]
मूल लक्षणा है जहां गूढ़ व्यंग पर जान ।
अर्थ न काहू को सो पुन जानहु जान ।।२३८।।[2]

करन ने ध्वनि के तीन भेदों का निरूपण किया है जो स्वयं में मौलिकता लिये हुये है -- १-रूढ़, २-यौगिक, ३-योगरूढ़ । करन ने इन भेदों के भी उपभेदों का वर्णन किया है जो उनके आचार्यत्व को प्रस्तुत करता है । करन ने `रूढ़` के भेदों को स्पष्ट करते हुये लिखा है -- १-जौग, २-मुखो जौग, ३-जौगाभ्यास ।

तत्पश्चात् रूढ़ के तीन भेद और निरूपित किये हैं-- १-भू, २- बूढ़ा तथा ३-मंडप । करन `रस-कल्लोल` नामक ग्रन्थ में कहते हैं कि इसी प्रकार जौगिक के भी तीन प्रकार होते हैं, किन्तु उन्होंने उनका नाम निर्देश नहीं किया है ।

`जौग रूढ़` के भेदों को करन ने अत्यन्त मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है । करन का कथन है -- पंकज, भूरुह, नीर, निधि - इसे प्रथम भेद समझना चाहिये । क्षीर नीर निधि, दुग्धनिधि, सागर को `जौगरूढ़` के तीन भेद समझना चाहिये ।

करन कवि ने वृत्ति की परिभाषा का निरूपण न करके उनके भेदों के नाम निर्देशित करके सोदाहरण प्रस्तुत किया है । उनका कहना है कि वृत्ति के तीन भेद होते हैं -- १-वाचक, २-लक्षक, ३-अर्थ ।

१- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०-१८.

२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०-२२.

आचार्य करन ने अभिधा के छ: भेद बताये हैं -- जाति, क्रिया, गुण, वस्तु, संज्ञा तथा निर्देश।

'अर्थ संगति' को करन ने अत्यन्त मार्मिक एवं मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है --

करत कहा भटकत कहा सरजत कहा पुकार।
चाहत हो मन मुक्त जो हरि पद भजो उदार ।।२११।।[१]

'करन' ने लक्षणा के दो भेद बताये हैं -- १-रूढ़ि, २-प्रयोजन। तत्पश्चात् रूढ़ के छ: प्रकार निर्देशित किये हैं --

रूढ़ प्रयोजन भेद कर दुविधि लक्षणा रूप।
रूढ़ कोठी जानिये षट् विधि अपर अनूप ।।२२०।।[२]

साहित्य दर्पण कार ने असंलक्ष्य क्रम व्यंजन के अन्तर्गत रस भाव और आभास आदि ध्वनि को स्वीकार किया है, जबकि करन ने असंलक्ष्य क्रम व्यंजन में रसाभास और भावाभास, रस और अनुभाव को स्थान दिया है।

'करन' ने विवक्षितान्य परवाच्य के अट्ठारह भेद बताये हैं। करन ने रस को सिर कहा है और 'भाव' उसके अंग हैं।

'करन' ने असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य का केवल एक भेद ही स्वीकार करते हैं।

कवि करन ने अर्थ शक्ति मूलक ध्वनि के मुख्य तीन भेद किये हैं -- १-स्वत: संभवी, २-कवि प्रौढ़ी, ३-कवि निबद्ध। इन तीनों भेदों में भी प्रत्येक के चार-चार भेद हैं --

स्वत:संभवी -- क- अलंकार ते अलंकार व्यंग।
ख- वस्तु तें वस्तु व्यंग।
ग- अलंकार ते वस्तु।
घ- वस्तु ते अलंकार।

१- श्री ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०-२०.

२- ह०प्र० रस कल्लोल, कवि करन, पृष्ठां०- २.।

२- कवि प्रौढ़ी-- क- अलंकार से अलंकार

ख- वस्तु से वस्तु

ग- अलंकार से वस्तु

घ- वस्तु से अलंकार

३- कवि निबद्ध- क- अलंकार से अलंकार

ख- अलंकार से वस्तु

ग- वस्तु से वस्तु

घ- वस्तु से अलंकार

`करन` ने विश्वनाथ की भांति ध्वनि काव्य के १८ भेद निर्देशित किये हैं, परन्तु वह भी हमारे सामने अपने मौलिक रूप में आये हैं --

अविवक्षितवाच्य ध्वनि काव्य के

(अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि काव्य और अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि-काव्य रूप) भेद = २

`विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि` काव्य का--

`असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि` काव्य रूप भेद = १

और (विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि काव्य के) संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि` काव्य रूप --

शब्द शक्त्युद्भव ध्वनि काव्य के भेद = २ -|
अर्थ शक्त्युद्भव ध्वनि काव्य के भेद =१२ | १५
और शब्दार्थोभय शक्त्युद्भव ध्वनि काव्य के भेद= १ -|

इस प्रकार कुल मिलाकर करन ने ध्वनि काव्य के १८ भेदों का निरूपण किया है।

-----:0:-----

अलंकार विवेचन के क्षेत्र :-

करन ने रूपक अलंकार के क्षेत्र में प्राचीन आचार्यों की परम्परा का ही अनुसरण न कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है, जो वास्तव ही उनके आचार्यत्व को प्रदर्शित करता है --

> बिनाई जहां अभेद है -
>
> बिषय रंजियतु होत ।
>
> ओतद्रूप अभेद मिलि रूपक-
>
> है बिधि सोइ ।। [१]

करन के व्यतिरेक लक्षण का वही भाव है जो दण्डी और भामह के व्यतिरेक लक्षण का है। इससे विदित है कि करन को अलंकार विधान का उत्तम ज्ञान था। करन ने इसका लक्षण व उदाहरण भी प्रस्तुत किया है--

> उपमा भी उपमेय मे कछु कवि बेष्ठ जुहोइ ।।
>
> बितरेक करन वासो कहत कवि को विख्यात कोइ ।। [२]

उदाहरण--

> नायका को उपमानोपमेयता तामें विशेष सुगध ।
>
> कहीं कहीं, इहां छेकानुप्रास अं है ।। [३]

करन ने तद्गुणालंकार की उद्भावना की है जिसका लक्षण निरूपित करते हुये लिखा है --

> तद्गुन गुनत बिताय जी संगति को गुन लेह ।। [४]

१- स०ग्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-१.
२- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-२.
३- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-३.
४- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-४.

अत्युक्त लक्षण :-

करन ने एक और नवीन अत्युक्त अलंकार की उद्भावना कर हिन्दी साहित्य को विशिष्ट सम्पत्ति प्रदान की है --

मेद सहित जो बरनिये सो मेदक अत्युक्त ।।[१]

प्रत्यायोक्ति अलंकार :-

प्रत्यायोक्ति अलंकार भी करन की अपनी निजी कल्पना शक्ति का प्रतिफल है --

मिसिक कि कारज साधिये जो है चित लिखुहात ।।
प्रत्यायोक्ति ताही कहत करन सुमति अवदात ।।[२]

विषाद अलंकार :-

विषाद अलंकार का निरूपण किसी भी पूर्ववर्ती आचार्य के लक्षण ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता है। करन ने विषाद अलंकार का लक्षण इस प्रकार निरूपित किया है --

सो विषाद चित चाहते उलटी कछु है जान ।।[३]

अत:कवि करन ने विभिन्न नवीन अलंकारों की उद्भावना कर हिन्दी साहित्य को अपार साहित्यिक सम्पत्ति प्रदान की है जो उनके आचार्यत्व को दर्शाती है।

१- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-५.
२- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-७.
३- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-८.

नायक-नायिका विवेचन के क्षेत्र में :-

कवि करन ने अपने ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) में क्रमानुसार नायक-नायिका भेदोपभेदों का निरूपण न कर बिहारी के दोहों पर टीका प्रस्तुत करते हुये उनके प्रकारों को उन दोहों में निर्देशित किया है, किन्तु उनके द्वारा निर्देशित उन भेदों पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने से नायक-नायिका के भेदोपभेदों को अति उत्तम रीति से समझा जा सकता है।

करन ने प्रेम गर्विता [1] तथा रूप गर्विता [2] नायिका के दो नवीन भेद किये हैं जो अन्य आचार्यों ने किये।

करन ने मानिनी नायिका [3] तथा विदग्धा नायिका [4] को भी स्वीकार किया है।

'धैर्य गुण' के आधार पर करन ने प्रौढ़ा के भी धनंजय, शिंगभूपाल, विश्वनाथ, भानुदत्त आदि आचार्यों के समान ही तीन भेद किये हैं -- धीरा [5]; अधीरा और धीरा धीरा। इसके अतिरिक्त करन को प्रौढ़ा संहिता नायिका [6] भेद भी मान्य है।

-----:0:-----

१- ह०प्र० बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) कवि करन, पृ०सं०-१३३.
२- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१३२.
३- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-११६.
४- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-१२३.
५- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-७.
६- ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ०सं०-८.

रस कल्लोल (पाठ)

श्रीगणेशायनमः श्री सरस्वतीदेवीजी श्रीराधाकृष्णाज्ञ । श्री आदित्यनमः

अथ रसकलोल लिख्यते

सुमनवंत सोभा सदन वारन वदन विचार ।
चारी फल वितरत सुरत सुरवर नर करचार ॥ १ ॥
जगरानी बानी चरन दीपत सुरवर पूर ।
सुरपुर नरपुर नाग पुर पूरत गरब[1] गरूर ॥ २ ॥
कलकित्य सोभित चरन संग बिहारै मंग ।
पाइ तिन्ह निज चित्त ही प्रफुलत ही कल फंच ॥ ३ ॥
कुटकुल पाडे विखित्रा[2] भारद्वाजी बंस ।
गुर निज पावन ठाम के बरनी जगत प्रसंस ॥ ४ ॥
रस गुन गुन अनुष्टुपीय[3] कवित भेद मति दीस ।
बाल बोध हितकर सदा कीन्ही रस कलोल ॥ ५ ॥

अथ रसा भव्याख्यते

भाव विभावनुभाव है संचारी सुकदाइ ।
भरत सुव मत कहत ही रस के सदा सहाइ ॥ ६ ॥
नामादिक ये होत हैं नौं हू रस के हेत ।
याही ते पढिति इन्हें पर घट ही कवित[4] ॥ ७ ॥

अथ भाव लच्छन दोहा

रस अनुकूल विभावर की भाव कहत कवि गोत ।
इक मानस शारीर इक है विध होत उमोत ॥ ८ ॥
थाई औ संचारियो दुविधि मानसिक भाव ।
कहि विकार शारीर सब सात्विक भाव बखान ॥ ९ ॥

अथ नवरस नामां

शृंगार हास्य अरु करुन पुन रौद्र वीर है जान ।
कहि भयान बीभत्स अरु अद्भुत शांत बखान ॥ १० ॥

१- गरब गरूर , कि० गर्व गरूर
२- विखित्रा , कि० विखितीया
३- अनुष्टुप्प्रिय कि० अनुष्टुप्पतीय

अथ स्थायी लच्छन --

रस हासी अरु सोक पुन क्रोध मोध भय ग्लान ।
अचरज अरु निर्वेद ए थ्याईं भाव बखान ॥ ११ ॥

रत लच्छन--

इस्ट वस्त होता वनित मन विकार जह सोइ ।
कहुँ दरसन सुमिरन श्रवन अरत पुरत सोइ ॥ १२ ॥

जथा--

कुरव वरित वरवर विटप विरह कतार की भीत ।
कही सु कैसे राख हों अंकुरित[1] प्रतीत ॥ १३ ॥

हास्य लछन--

थ्याठ बचन अरु भेष कृत मन विकार जह होरन[2] ।
अमर पूर विकसत उचित हास्य कहत कवि गोत ॥ १४ ॥

जथा--

उठे तुरन्त मुकचित[3] चित ओठ चुनरी बेस ।
की निरख नंदलाल के हिय में हांसी लेस ॥ १५ ॥

सोक लछण --

रवबिन इस्ट वियोग कृत मन विकार जिहि ठौर ।
अमर पूर विलसत जहाँ सोक कहत सिर मौर ॥ १६ ॥

जथा --

देखत बनता कंथ की रोवत विमत उछाह ।
उपजी कृम पुष्न हीये कलकली उर माह ॥ १७ ॥

क्रोध लछण --अमान स्थाई

कहत अनआदिक बनित बह प्रमोद प्रवृत ।
उठत भाग परमित हिये क्रोध कहत मत सूत ॥ १८ ॥

जथा --

देखत हाथिन की घटा समर समथ्य भुवाल ।
वाणिम लोचन क्रोध कि पहीनाद लोचन लाल ॥ १९ ॥

१- पु० अंकुरत, लि० अंकुरित
२- पु० होत लि० होइ
३- पु० सपकित लि० संकुचित

उत्साहि लछण --

थापित सुर वारन सुमट जनित अन्यथा भाव ।
कहत अनूरन संकल कवि सो उत्सा हर भाव ।। २० ।।

जथा --

दैन सकल सापे किये क्रोध किये वस भाव ।
बाडव रघुबर निरख मन विक्षय लियो धन हाथ ।। २१ ।।

भयानक लछण --

दीरघ विकृत कहत अंत अपर पूर वह होइ ।
जहाँ अन्यथा भाव है कहत सकल भय सोइ ।। २२ ।।

जथा --

सुन गरजत दुंदुभि न नव बरसत गज समदाइ ।
मैंड मंदि रन सुमट सचारिगगी मनौ डराइ ।। २३ ।।

जुगुप्सा लछण --

कह रज वसन विलोक सुन उपजत जहाँ गिलान ।
तहाँ जुगुप्सा कहत है पूरन ताकी ठान ।। २४ ।।

जथा --

धाविपठ नर सीन पंच लौ पठ करम की ध्यान ।
उभर विकारी सुकव की न वैसीलान ।। २५ ।।

विस्मय लच्छन --

चकित कार दरसन सवन जन सु अन्यथा भाव ।
अमर पूर विस्मय कहत कवि जन सुमत सुभाव ।। २६ ।।

जथा --

दीपत विपत संकुलता ठगि विस्मित जन भूप ।
मानो बहुत सुरत नदि दमयन्ती के रूप ।। २७ ।।

निर्वेद लच्छन --

संत संगादिक विपत ते उपजति परमित जान ।
मन विकार निर्वेद सो थान ठीकीयो बान ।। २८ ।।

माणिक जथा --

पीरी सीरी तन परी बीरी को तजहा न भात ।
सुन पिय जात विदेश को सासि हौत उसास ।। ४६ ।।

पूर्व अनुराग जथा --

प्रीतिवंत नंदलाल को जब ते मिली उदार ।
विरह भरति तब ते तहां पकर गही विकार ।। ४७ ।।

हास्य रस को लछण --

कहत किया छवि हसता भ्रम ते इनको जान ।
पुलकि कपोलन आदि दै ते अनुभाव बखान ।। ४८ ।।

जब हिल्लादिक हौत है ते संचारी जान ।
जाको स्थाही हास्य है सोही हास्य बखान ।। ४९ ।।

जथा--

सब घर ही जग कर निकर मिल भ्रम कुछो फाँस ।
कुल कुजात भभरे निरख विहँस गौर नहिंस ।। ५० ।।

करुना लछन --

बिछुरन जो पिय वस्त्र को कहत विभाव सुजान ।
अंसुपात वार मीड वो ते अनुभाव प्रमान ।। ५१ ।।

उठ नादिक संचारियो मिलि आन जेह कोह ।
जाको थायी सोक पुन कह करुना रस सोह ।। ५२ ।।

विप्रलंभ कह करुन पुन पिय वियोग तें होत ।
के वियोग करुने करो है विधि को उदोत ।। ५३ ।।

तहं वियोग है भांत को सकुवन कवी बखान ।
इक विदेश गवना दहे मरन ऐक पुन जान ।। ५४ ।।

जहं आसा है मिलन की रहत थाहे तब होय ।
जहं आसा नहि मिलन की कहत सोक सब कोय ।। ५५ ।।

जथा--

मारन की कुंजराज हंसन की मानसर चंद्रमा चकोरन कवर चिते गयो ।
मिदुक की कायवर कान क्रम कुडिलकी जलधि पपीहनकी कालुने रिवे लयो ।
दीपन की दीप हीरहार दृग पालनकी कोकनकी वासरेस देखत जैं गयो ।
छवा छिनपाल छिव मंडल उदार धीर धराकी अधार सो सुमेर घो किते--
गयो ।। ५६ ।।

रौद्र उदान --

जाकी थाई क्रोध है मत्सर जहां विभाव ।
हाथ मीडने आदि दे ते सब है अनभाव ।। ५७ ।।
मोहादिक जे होत हैं ते संचारी मान ।
तहाँ रौद्र रस कहत हैं जान लीजियो जान ।।५८।।
मूकच पिंगल पताल थल जान मारी छितवंत ।
भेर जंड जांडी गगन की पारथ बलवंत ।। ५६ ।।
गगन गरद चार कर अवन जान मेटी सुपवाल ।
जोध जोध कारी चिरच मचे न छत्री वाल ।।६० ।।

वीर रस उदान --

थाई गोद विभाव जह कहत विभाव विचार ।
दानोधिक अनुभाव जह धैनादिक संचार ।। ६१ ।।
कहत वीरता की सुकवि सो पुन पांच प्रकार ।
जुध्य दया कह धर्म पुन दान सुजुध्य विचार ।। ६२ ।।

रौद्र वीर उदान को भेद --

सगता की सुध है जहां वीर जानीयो सोह ।
जहं मति सुध सम अक्षम कहत रौद्र सब कोह ।। ६३ ।।

जुध्यवीर जथा --

समद देर कक जन हनी महमद प्रगट प्रभाव ।
दल दंगल उमिटव लखत चढत चौगनी चाव ।। ६४ ।।

दयावीर जथा --

वचन कलीपत की हवे करी पेन मत जुध्य ।
माथ देह दे राणा की सी सन भेरी जुध्य ।। ६५ ।।

जथा --

सब ही छिव कृष लाड़ से पिछिराई डर माल ।
प्रेम छाक छाकी फिरत मुकत फिरत कृष बाल ।। ९२ ।।

श्रम लक्षन --

अधिक उतावल काज ते जहां सिथलता होइ ।
स्वेद स्वैद तन प्रगट ही श्रम कहियत पुन सोइ ।। ९३ ।।

जथा --

रहत कहूं जौवत कहूं कहूं कहत कहूं जात ।
कुंजन स्वैद तन सिथलता आवत भीजी रात ।। ९४ ।।

आलस्य लक्षन --

मदन बिथादि करति जो जहां उठी नहीं जाइ ।
ताही सौ सब कहत है आलस पंडित राइ ।। ९५ ।।

जथा --

म्यौ कहा अनुभाव अब दृग मूदत अराइ ।
उठत न छिन बार ललन मिलत न लियो लगाइ ।। ९६ ।।

जथा --

कुंज भूषन बठ भेक हूं जात कहूं तन गेह ।
विकल चित कृष बाल की सीत भूर छिव देह ।। ९८

चिन्ता लक्षन --

वस्तु भावती मिलन की सौ मन फिकर जो होइ ।
ताही सौ चिंत कहत है कवि कोविद सब कोइ ।। ९९ ।।

जथा --

रीती निधि बीती अवध बिरत चंद लघु जोत ।
तन तरती बरती जतन रही जान चित होत ।। १०० ।।

दीनता लक्षन --

सरन दुख कछु जात जब कहत दीनता सोइ ।
कष्ट कलेवर में प्रगट विरहादिक ते होइ ।। १०१ ।।

गर्व लक्षन--

प्रेम सनेह गुन रूप को जहां गर्व सो गर्व ।
बेन चलन जग निदरौ कहत सियाने सर्व ।। १११ ।।

यथा--

अडि मरी मन चलत मुंहुं मोरत इतरात ।
त्यों न किन निदरत सखन तन फूली न समात ।। ११२ ।।

विषाद लक्षन--

इस्ट वस्तु को चित्त में जहां होत संदेह ।
चलन चलि तव दुख बढ़े कहत विषाद सुनेह ।। ११३ ।।

यथा--

कहा करों कर कर चलन अब लौं ज्याई बाल ।
पान त्रिविधि की ओष[1] ते जारत औन्ह जुबाल ।। ११४ ।।

औत्सुक्य लक्षन--

पिय मिलबे की ढील यह नेक सही नहि जात ।
ताहि कहत औत्सुक्य सब करन सुकवि अवदात ।। ११५ ।।

यथा--

बासर बितवत कौन विध मिलत कौन विध रात ।
दिन उर लागे नाह के कैसे रात्रि जात ।। ११६ ।।

आवेग लक्षन--

अनहित शब्द[2] सुने जहां बढ़त आन संदेह ।
ताहि कहत आवेग यह सुकवि जान सो लेहु ।। ११७ ।।

यथा--

समर संभ्रमनु नाद सुन कंपत हिये सखाव ।
मुख फीरे हीरे परत तन व्याकुल सो स्याव ।। ११८ ।।

अरंच--

नेह नाव झूठी परत चलत न उमगत नीव ।
पंथ परत बीचहि भयी रूपमी अमित अनीत ।। ११९ ।।

१- पु० में मांच, द्वि० औष
२- पु० स्वर, द्वि० शब्द

निद्रा लक्षण--

मानस मिलन कौ कहत निद्रा सोक विनाह ।
अंग ग्रस जमाँ बसत चिंतादिक उत्साह ।। १२० ।।

यथा--

दृग झपकत उघरत मुंदत छिन छिन झपत जम्हात ।
अलसी पति रति रीत सों-निसि जगी सब रात ।। १२१ ।।

अपस्मार लक्षण--

चिंतादिक गह मुरछा मरम विकलता ढीठ ।
अपस मार तासो कहत कवि कोविंद मतधीठ ।। १२२ ।।

यथा--

परत कहूं नन्दलाल को करन अचानक बैन ।
अपत अवत ही मुरछित गिरत कढ़त मुख फेन ।। १२३ ।।

अमर्ष लक्षण--

मेटि चाहे और की अहंकार जो कोई ।
अमरस नाम तासो कहत क्रोध अधिक थिर होय ।। १२४ ।।

यथा--

जालंधर अन्धक त्रिपुर महाबाहु बलवान ।
वरत हरन सेना नपे हैक रुद्रक बान ।। १२५ ।।

अपरंच--

अन पारी सीसी लखत पनयारी अध पान ।
दाव दवी सावी सचन सौतन की छवि सान ।। १२६ ।।

सुप्ति लक्षण--

निद्रा अति आनंद मन सुप्त कहत कविताई ।
निपट मगनता चित्त मैं रहत न कछु परवाह ।। १२७ ।।
सोये सुख सो दम्पति तन संतये एक संग ।
हरि गिरजा ली मिलि रहे अंग अंग रस रंग ।। १२८ ।।

विबोध लक्षण--

निद्रा के पृथि छेद मैं इन्द्री प्रथम विकाश ।
तासो कहत विबोध कवि जन मन परम हुलास ।। १२९ ।।

यथा--

जग जगरायी उठे दुरे दरमीलित जुग नैन ।

ज्यों ज्यों तन परसत मिलत बढ़त चौगुनी चैन ।। १३० ।।

त्रास लक्षण--

पै ताड़ि़कर[1] घन गरजतें डर उपजत जहं होय ।

ताही सों सब कहत है त्रास कविन के गोत ।। १३१ ।।

यथा--

झपत जलधि[2] बहुभांति तड़ित डरपत जसु पति नंद ।

कांप ग्वाल ब्रज बाल लखि चकति भये ब्रज चंद ।। १३२ ।।

अवहित्था--

कीनो मिसि कर आपनी यह दुरावत होय ।

अवहित्था ताको कहत कवि कोविद सब कोय ।। १३३ ।।

यथा--

निरखति जसुमति नंद तन कंपन लगी सब गात ।

कनत कियो हठ निर्दयी शिशिर शीतली बात ।। १३४ ।।

उग्रता लक्षण--

निर्दयता सों कीजिए काज उग्रता आय ।

भरतादिक सब कहत है करन सों कवि समुदाय ।। १३५ ।।

यथा--

कै हरि सोच्य प्रथम ही सुघरब दया निवास ।

केंधी त्रिभुवन एक सर छिन में करत बिनास ।। १३६ ।।

अमर्ष--

ऊपर ही गुलक्य लखि बालक परम सुजान ।

रसिक रसीले लखि लीये निर्दय कुलय निधान ।। १३७ ।।

व्याधि लक्षण--

रोग वियोगन ते जहं कृशता तन में होय ।

ताही सों सब व्याध कहि बरनत कविजन लोग ।। १३८ ।।

१- पु० प्रवाहिक, द्वि० पैताड़िक.   २- जलद, द्वि० जलधि .

यथा--

शीतल मंद सुगंध सन विमल बहती पार ।
जिन हर हरि लीन्हों कियो कियौ मदन तन जार ।। १३९ ।।

धृति धैर्य लक्षण--

ज्ञान सबल की रीत जहाँ करन लिये संतोष ।
ताही सो धृत कहत है कवि कोविद निर्दोष ।। १४० ।।

यथा--

भई जगत आधीनता संपत कहा सुधे ।
गौरि चरन पंकज बरन भरी प्रमोद सनेह ।। १४१ ।।

मति लक्षण--

आगम निगम पुरान मत यहं चित चारु विचार ।
सत्य ताहि सो कहत है करन सुबुद्धि उदार ।। १४२ ।।

यथा--

गौरी पति के चरन छू है बहु परम सुजान ।
जग मैं शील संकोच सत संतत वेद प्रमान ।। १४३ ।।

तर्क लक्षण--

जहं संसय ते तरजनी भृकुटी शीस नवार ।
कुछ विचार विविध देव मह कहत सुबुद्धि उदार ।। १४४ ।।

यथा--

फूलत कुंजन रैन दिन मुदित चीत चंद ।
उदित रहत यह रैन दिन जिय मुख पान अमंद ।। १४५ ।।

उन्माद लक्षण--

वृथा वचन कुवायी-सी बिन विचार आचार ।
सो उनमाद बखानिय करन सुबुद्धि उदार ।। १४६ ।।

यथा वस छंद--

व्याकुल भई विरहिनी अति अकुलाय ।
बानत स्याम कलाउहि भेटत धाविय ।। १४७ ।।

ललित हाव--

जह अंग ही सुकुमारता उपजत अंगन चाह ।
ताही सों सब कहत है ललित कबिन केरा र ।। १६५ ।।

जथा--

छबीली तन सुकुमारता भूषन पिहरत कौन ।
उरज भार लचकी परत ललित लंक लौं पौन ।। १६६ ।।

बिधुत लक्षन--

पतिहु सौं अब सकल मिल संकुच न पीतन नाह ।
ताही सो बिधुत कहत जो बिदग्ध कबि आह ।। १६७ ।।

जथा--

सिवै सिवै पच पच मरत कर कर मरत इलाज ।
पति गुनगन गुन हीन ही करत बिगुन इह लाज ।। १६८ ।।

तपन लक्षन--

जहं संताप कछु सकल पति बियोग तैं आह ।
ताही सों सब कहत है तपन कबनि के राह ।। १६९ ।।

जथा--

चारे छारत चांदिनी सोधे लेत समीर ।
कहा नीर कुनीर ने कवी सुरति दे पीर ।। १७० ।।

बिलोक लक्षन--

करत अनादर कपट मय जहां नेह के नार ।
ताह कहत बिलोक सब कबि कोबिद निरधार ।। १७१ ।।

जथा--

कहत कहा उनही रही कहीव कहा सु बीर ।
हमें पैहै मेरी कहूं हुलत स्याम तन गौर ।। १७२ ।।

मद लक्षन--

जहं मतवारी सी सकल जीवन के मद होह ।
मद ताही सौं कहत है कबि कोबिद सब कोह ।। १७३ ।।

इति सान अथ कृत्य भेद निरूप्यते । दोहा---

कवित्त करै कवि होत है कवि पुर करै कवित्त ।
सब्द सुद्ध अरु अर्थ को कवित्त जानिये मित्र ।। ९८३ ।।

मृदु विमल अभ्यास जल सकल बीज संग होइ ।
समय पाइ निपजत लखि कवित्त सरोवर सोइ ।। ९८४ ।।

ज्ञान परख बेवहार जग अरु संपति सुभ साज ।
ज्ञान मुकत लहि कवित्त को विलसत सोम समाज ।। ९८५ ।।

दोष रहित उदान सहित अलंकार गुन युत ।
रीति युकत मुद्रा सहित रस पुत वाक प्रयुत ।। ९८६ ।।

जो सुनिये सो सब्द है अर्थ लिये पहचान ।
पुन अनुबरन विभाग कर सब्द युगल जिय जान ।। ९८७ ।।

पुन लक्ष मरजाद है जान लीजिये चित्त ।
आगम उकत विमलत हत परमातम[1] पुन मित्त ।। ९८८ ।।

सो पुन तीन प्रकार को बरन क्रम जो आइ ।
रूढ़ यौगक तीसरी जोग रूढ़ मन आइ ।। ९८९ ।।

अनथाव उदान--

केवल समवाहि करि जहां अर्थ बोध बहु हेक ।
रूढ़ नाम तासो कवि जन करन अनेक ।। ९९० ।।

अथ रूढ उदान--

अखंड संबवाहि कर जहां अर्थ बोध बहु भेद।
रूढ़ नाम तासो कहत कविजन करन अनेक ।। ९९१ ।।

यथा--

जग में दीन दयाल प्रभु गावत निगम निदान ।
खल प्रयोग पग राखरे सेवत करन सुजान ।। ९९२ ।।

१- पु० टि मुक्तमनात्माक गुन मित्त

देखो जगत निहार पो करके बुध विवेक ।
धरा धीस जानो करन कालिदास कवि टेक ।। १९३ ।।

यौगक लक्षन--

अवयव शक्ति संपदा जहं एक अर्थ को बोध ।
यौगिक तासो कहत है जिनके करन प्रबोध ।। १९४ ।।

योग रूढ़ लक्षण--

अवयव शक्ति समुदाय है शक्त अभिदित जत्र ।
यौगरूढ़ तासो कहत करन सुकवि जनतत्र ।। १९५ ।।

रूढ़ यथा--

एकोन योग शक्ति दूसरी युवा योग लख लेहु ।
तीजो योगाभास है प्रथम भेद चित देहु ।। १९६ ।।

तीन भेद यह रूढ़ के भू शक्ति वृक्ष बखान ।
मंडप है पुनि तीसरो उदाहरण जिय जान ।। १९७ ।।

यों ही यौगक तीन विधि यौगरूढ़ पुनि तीन ।
नव प्रकार जानो सुमति जिनकी बुद्धि नवीन ।। १९८ ।।

शुद्ध कहत धन मूल एक इसके भिन्न प्रकार ।
यौगिक तीन प्रकार को जाने सुमत उदार ।। १९९ ।।

प्राप्त कोव धन दूसरी दास रथी पुनि वीर ।
तीनों यौगि न जानिये उदाहरण थिर धीर ।। २०० ।।

पंकज मुक्त नीर निधि प्रथम भेद यह जान ।
प्रिय सामान्य विशेष के वरनन उर में आन ।। २०१ ।।

क्षीर नीर निधि दुग्धनिधि सागर समता एक ।
यौगरूढ़ के तीन यह जानो सुमत विवेक ।। २०२ ।।

वृत भेद ये तीन यह सुनहु सकल कवि नाथ ।
वाचक लक्षक अर्थ को समुझव सकल सनाथ ।। २०३ ।।

वाचक सो जो सहाय बिनु आपु अरथ कहि देत ।
जैसे चन्दा को कहत सुधा करहिं गहि लेत ।। २०४ ।।

जात क्रिया गुन वस्तु जुत संज्ञा अरुन निदेश ।
कवि कुल छत्र मानव सकल भांटविधि अभिधावेश ।। २०५ ।।

शास्त्री पाठक पीठ पर डीगर ठाकुर चंद ।
उदाहरण यह जानिये कवि कुल आनंदकंद ।। २०६ ।।

अभिधा मूल व्यंग--

बहुत अरथ के शब्द को जोगादिक अनुकूल ।
अरथ नियम जहं कीजिये व्यंग सो अभिधामूल ।। २०७ ।।

समय देश अरु अर्थ संग कहुं संजोग वियोग ।
प्रकरनि अरु इक ठौर ते चिन्ह सो अर्थ प्रयोग ।। २०८ ।।

संपती--

आयो मधु फूली विपिन कह विधि धरी पति धीर ।
शीतल मंद सुगन्ध सन विमलत सरस समीर ।। २०९ ।।

देश जथा--

सीव: देखत दुसह दुख बांढ़त हिये अपार ।
चित्रकूट के विपिन में फल दल मूल अहार ।। २१० ।।

अर्थ संगति जथा --

करत कहा भटकत कहा सरवत कहा पुकार ।
चाखत की मन मुकत जो हरि पद भजो उदार ।। २११ ।।

संजोग जथा--

बान संग की बरनिये पूरन परमा मित्र ।
कर कंगन जुत कामना पमत विलोकत चित्र ।। २१२ ।।

वियोग जथा--

पर चक्रन ते चोर ते जाके पेट समात ।
बिना चरन चीर चरन[१] यह कैसी राखी बात ।। २१३ ।।

१- प्र० बिना चरन चर चरन यह हि० बिना चरन पर चरन इह

प्रकरन तेजथा--

अर्जुन कर्ण बिलोकिये व्यापि सुभट अनूप ।
कौन भांति कौ कह सके आचारज[1] के रूप ।। २१४ ।।

विरोध तेजथा--

कौक कलानिधि के डरन छप्यौ वदन के बीच ।
काय विपत यह देखिये करे कहा वौ नीच ।। २१५ ।।

चिन्ह तेजथा--

जगमग जगमग जगमगत कला कुंडल सिर मैंद ।
देखौ हरि आवत गगन जनु किरन छवि देत ।। २१६ ।।

समुद्र तेजथा--

सुन्दर सरस सुहावनी बिलसत मत अवदात ।
रामा लक्ष्मन लक्षनलखत छन छियौ बिलात ।। २१७ ।।

इति अभया मूल व्यंग अथ लक्षक लक्षणा--

अर्थ न लक्षक रे को तब समीप ते लेह ।
छियौ जौ अर्थ समीप कौ लक्षारथ छवि देह ।। २१८ ।।

लक्षणा लक्षणा--

मुख्य अर्थ के बाद ते पुन ताही के पास ।
औरे अर्थ जाते बने कहत लक्षणा दास ।। २१९ ।।

रूढ प्रयोजन भेद कर दुविधि लक्षणा रूप ।
रूढ़ कौठी जानिये भट विधि अमर अनूप ।। २२० ।।

जाहि स्वारथा यह कहै अवहद स्वारथा एक ।
गौरी सुधा यह दौ है है कहत अनेक ।। २२१ ।।

गौरी पुन संबंध ते जानि लीजिये जान ।
सुध्या कारन काज ते कविजन कहत बखान ।। २२२ ।।

१- प्र० आचारज के रूप द्वि० आचारज के रूप

रूढ़ यथा--

गाढ़ी उतरी बीर यह परी[1] हिये पहचान ।
उपादान यह रूढ़ि के जानि लीजिये जान ।। २२३ ।।

आप अर्थ तजि और को अर्थ बतावत होइ ।
जहत स्वारथा जानिये कवि कोविद सब कोइ ।। २२४ ।।

नाहिं आवत मेरी कही बरसत आवत अंब ।
उड़ी पिरिया जात बलि की जति कहा विलम्ब ।। २२५ ।।

अब अजहत्स्वार्था लक्षणा--

आपुँ अर्थ राखै सही आन अर्थ कह देह ।
अजहत स्वारथ जानिये सुनत लियो हरि लेह ।। २२६ ।।

यथा--

अंग मगनि के जन मगत करवर कामत कुंज ।
चल चल छवि छावत छहुत आवत पर्वत पुंज ।। २२७ ।।

गौरिसारोप यथा--

बचन सुधा पर की प्रभा पूरत परमानन्द ।
लियो कुसुम बरसत सरस बरसतु छव मंद मंद ।। २२८ ।।

गौरी साध्यवसाना लक्षणा यथा--

अलबेली लतिका ललित प्रफुलित ललित विलास ।
कुंज भवन वन भवन करि बलिमन[2] प्रेम प्रकास ।। २२९ ।।

शुद्धा सारोपा यथा--

कला कुशल पूरन कला हरन सकल भू भार ।
राजा दशरथ के भये रामचन्द्र सुकुमार ।। २३० ।।

१- प्र० परी हिये, द्वि० परवि हिये
२- प्र० बन, द्वि० मन

सुधा साध्यावसाना लक्षणा जथा--

चन्द्र सुधा बरषत हरष करषत हियो हिलोर ।
यदि कौतिक पुनि देखिये बिलसत कला कलोर ।। २३१ ।।

व्यंजना लक्षणा--

सन्मुख दीनो अर्थ को अर्थान्तर जहं होइ ।
चमत्कार अतिशय जहां कहत व्यंजना सोइ ।। २३२ ।।

वाच्य विवंक जथा--

रसिक रसीलि भंवर के सुख रस लीन्हों रूप ।
देखत हियो सिहात अति मति कूप भूप ।। २३३ ।।

लक्षणा मूल व्यंग--

शील सुधा सागर भरी लीन्ही बिहान बीर ।
भैर हिय मन सदन के सहै लाह गुन गीर ।। २३४ ।।

ललित लता लपटी सकल प्रफुल्लित बलित सुगन्ध ।
मन्जुल मधु कर मधुकरी गुंजत मधुर मकंध ।। २३५ ।।

चेष्टा व्यंग जथा--

काहू हरि के हाथ में दयो केतकी फूल ।
लियो भ्रमर सुन्दर सरस वासु का दल फूल ।। २३६ ।।

सो धुनि भेद मिली रहत त्यों बन भेद प्रकाश ।
कुछुक भेद ये समवै बरनत बुद्धि बिलास ।। २३७ ।।

ध्वनि लक्षणा--

मूल लक्षणा है जहां गूढ़ व्यंग पर बान ।
अर्थ न काहू को सो धुन जानहु जान ।। २३८ ।।

बिधि वदित है एक पुन एक बिवदित होइ ।
होइ है है भांति है जानि लीजिये सोइ ।। २३९ ।।

अविवक्षित द्वै अर्थ इक अर्थ संक्रमित होत ।
वाच्यतिरस्कृत दूसरो कवि कुल करत उदोत ।। २४० ।।

अर्थान्तर संक्रमित वाच्यता यथा--

धन संपत लक्ष्मी जुवा रहित न जाने कोय ।
कर लीजे ऐसी घरी जो कुछ करनी होय ।। २४१ ।।

अर्थान्तर सकृति वाच्य ध्वनि यथा--

छोड़ दियो एक बार ही चुंबत रहे गुन गौर ।
रहत कहा चितवत हिय मधुप मालती और ।। २४२ ।।

दूजो विवक्षित वाच्य के लक्ष्य क्रम बिन एक ।
संलक्ष्या क्रम दोऊ मिथ शब्द अर्थ की टेक ।। २४३ ।।
संलक्ष्या क्रम चार विधि शब्द मूल द्वै होत ।
अर्थ मूल के चारि विधि कहत सकल कवि गोत ।। २४४ ।।

उभय सकल को एक है कहे अठारह भेद ।
उदाहरण ये क्रमहि ते जानि लेउ वाचि वेद ।। २४५ ।।

असंलक्ष्य क्रम के चारी यथा--

रस अनुभाव दुहों जहां पुनि तिनके आभास ।
असंलक्ष्य क्रम होत तहं बरनत बुद्धि विलास ।। २४६ ।।

रस प्रधानो यथा--

ललित लता दोऊं कर गहे किये लाल तन पीठ ।
राव बदन मुंख मूल पर लखत विरिही डीठ ।। २४७ ।।

भाव प्रधानो यथा--

गौरी करुणा शीव की महिमा बरनत जात ।
ज्यों ज्यों पहलव पंक सिर त्यों त्यों छवि सरसात ।। २४८ ।।

रस को सिरे बखानिये भाव अंग ही होत ।
ऐसे भाव प्रधानता कवि कुल करत उदोत ।। २४९ ।।

उक्त भेद के तीन यह सूत संभवी दौर ।
कवि प्रौढ़ो क्त दूसरी कहत सकल सिर मौर ।। २५७ ।।

कविनि कहू वक्ता कहूँ सोहू लेहू विचार ।
अर्थ दुहुन के चार यह एक एक प्रतिचार ।। २५८ ।।

उभय शक्ति के एक है कहैं अठारह भेद ।
उदाहरण क्रम ते सकल जानि लेहु तजि खेद ।। २५९ ।।

वस्तु संभवी में अलंकार ते अलंकार व्यंग जथा--

सब सौरभ भुँवर सरस मधु पीवत लहि मोद ।
मधुप कुंज निरखौ पगी चूत मंजरी मोद ।। २६० ।।

शोभा सौकव ते कामचिन वचनीयकता व्यंगा वस्तुते वस्तु जथा--

सघन कुंज मधुकर मधुर गुंजत जानि छवि छाइ ।
ललित लता तरवर ललित रहे सरस लपटाइ ।। २६१ ।।

इहाँ सघन पद तें अधिक अंधेरी वस्तु तातें रह सुरत लाइ जागा है यह वस्तु व्यंग ।

अलंकार ते वस्तु जथा--

तनी सनी के साथ में मिलवत रस की खान ।
गोलत संचित मन चिति फंसावत -सी मुसकान ।। २६२ ।।

इहाँ अब चित्र दीपक अब मिलाइबेता इक भई इह वस्तु व्यंग ।

वस्तु ते अलंकार जथा--

मन मंदिर सुन्दर द्वारी आये जब नंदनंद ।
मुंद नाडी ताकी गवत मन माहि आनंद ।। २६३ ।।

इहाँ नाडी अधिक चोप । इह वस्तु विचित्र अलंकार व्यंग । व्यंग प्रौनोति अलंकार ते अलंकार व्यंग --

दलन गयावल दलन ज्यौं दीरघ बलन अमंद ।

मद फर बौरत मरत पर करवर परसत चंद ।। २६४ ।।

इहां संभवात सयौक्ति ते अनुकूल व्यंग । वस्तते वस्तु यथा--

जब आन दल दिस परत विजय पीठि डार ।

करत कनैरी हारत हवि भैरुक देव पहार ।। २६५ ।।

इहां इग पहार दिसनाकि परी इह वस्तु तासों सरद ते उपयत है इन वस्तु व्यंग । अलंकार ते वस्तु यथा--

सच्चासीह अमान सुर त्याक्ष के हेत ।

मच्चासीपान ते मरवि दत्या भूपन देत ।। २६६ ।।

इहां हिमअनुप्रासा ते पसमत और नाहीं पहनाही यह वस्तु व्यंग ।

सत्वा पाकी समुंद लौ वत्था देव दिनेस ।

वाहत्था नर नाह के प्रगटो गुपाविर देस ।। २६७ ।।

इहां कारन निविधना अप्रस्तुत प्रसंसात ते भाड के भंडेरी होत है इवस्तु व्यंग--

वस्तुते अलंकार यथा--

पेता दिल्ली दलन की भेता कुलकुंबिवान ।

इता[1] नंदनंदन नमत सवा सिंह सुभमान ।। २६८ ।।

इहां पेता कही समर्थ केती और नाहीं इवस्तुते अनुन्वह व्यंग ।

अथ कवित व्यंग नवत अलंकार ते अलंकार व्यंग--

इक सागर इक गरज नी इक जल जाय गम्भीर ।

जहां पथिक पूछत फिरत करन कूप कौ नीर ।। २६९ ।।

इहां प्रस्तुतां सुर ते अन्य निंदा व्याज वस्तु व्यंग ।।

१- इत्ता, द्वि० इता

वस्तुतें वस्तु जथा--

तुम रसाल तरवर सरस हम हैं निरस करील ।
समता पूजत नाहि पै परमर मुकाक पील ।। २७० ।।

बराबर नाही तुम बड़े हम कछू नाही इह वस्तु पै वस्तु व्यंग ।

वस्तुते अलंकार जथा--

तरवर कह फूले रहत हीत सरस रजबंत ।
सम बिहार की दरद कछू नही व्यापी मतवंत ।। २७१ ।।

इह बड़े पे दरद ही इह वस्तु हम दरदवंत इह त्याग स्तुति व्यंग ।

अलंकार वस्तु ते जथा--

जदिप न सकल प्रवाहि छिन तदिप रहत चित चाह ।
नदी तिहारी संग लहि तरियत जलध प्रवाह ।। २७२ ।।

इहां नदी सामर्थ वस्तु हमारी जदिप प्रवाह नाही रुकत तदिप समुद्र
को नाही पहुंचीयत नदी यह विशेषोक्त व्यंग ।

अलंकार ते वस्तु जथा--

चंदन तरवर धंन तुम चढत सुरन के सीस ।
हम सैमर फल फूल दल वृथा करे जगदीश ।। २७३ ।।

इहां अन्यस्तुत ते कारन निंदा बाज निंदाहुन पड़े काहू नाही इह वस्तु
व्यंग ।

इति अर्थ पुन अथ उभय सकता--

नीरज कानन जगमगत पगत बिलोकति चित ।
लाल अमोलक मध्यगत हुंत गुनगरमा मित ।। २७४ ।।

इह नीरज की परमाह जलन कर मुक्ता लाल के पहनाह । मानिक सो
नाहक कारक के परमाह श्रुति अलंकन शब्द शक्ति अर्थ सकत दोऊ तातै
उभयसकता ।

अथगुनातालिका---

वधे पिकत असदेन अरु फाँत सु माघ[१] उदार ।
ओजे मधुर्ज प्रसाद पुन समता अरु सुकुमार ।। २७५ ।।

जाहिप ये गुन गन सदा कीनौ अंतरभूत ।
जानत ओज प्रसाद अरु मधुर सुबुद्ध बहूत ।। २७६ ।।

प्रौज यथा--

खल खंडन मंडन धरन उद्धत बलन प्रचंड ।
कल वंदन दारुन दमन सिंधुराज भुजदंड ।। २७७ ।।

प्रसाद यथा--

सरद चंद सारद कमल सारद हीर बिसेष ।
छवि उज्जल चक्रवाक दसन उज्जल गुन देखा ।। २७८ ।।

माधुर्य यथा--

नही सुजन की सरसही वाही कहँ पिन नाह ।
कहँ नही पय निरमई महँ कान रस मौह ।। २७९ ।।

याहि पराभा कोमला उपनागर का होइ ।
उदाहरन की भेन मैं क्रम ते जानहु सोइ ।। २८० ।।

गौडी लाटी होवा अरु पंचाली सुभ दाह ।
वैदर्भी है जानवी चारी रीति समाह ।। २८१ ।।

रीति चारहू देस की सो समास आधीन ।
भाषा मैं पावै नही बरनी सुमत नवीन ।। २८२ ।।

१-

संस्कृत भाषा के ग्रन्थ

१	अलंकार सूत्र	-- राजानक रुय्यक, ट्रावनकोर गवर्नमेन्ट प्रेस, सन् १६१५ ई०.
२	अलंकार शेखर (प्रथम रत्न, प्रथम मरीचि)	-- केशव मिश्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई. सन् १८६५ ई०.
३	अग्निपुराण	-- व्यास, गुरु मण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता. सन् १६५७.
४	अभिनव गुप्त	-- चौखम्बा संस्कृत ग्रंथमाला, वाराणसी.
५	अभिनव भारती (१-४ भाग)	-- अभिनवगुप्त, प्रकाशक ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा.
६	काव्यादर्श	-- दण्डी, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर . सन् १६२५ ई०.
७	काव्यादर्पण	-- विद्यावाचस्पति पं० रामदहिन मिश्र.
८	काव्य-प्रकाश	--- मम्मटाचार्य, विद्याविलास प्रेस, बनारस . सं० २००८ वि०.
६	काव्यानुशासन	-- हेमचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १६३४ ई०.
१०	काव्यानुशासन	-- वाग्भट (द्वितीय), निर्णय सागर प्रेस, बम्बई. सन् १६१५ ई०.
११	काव्यालंकार	-- रुद्रट, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई सन् १६०६ ई०.
१२	काव्यालंकार	-- भामह, विद्याविलास प्रेस, बनारस, सन् १६२८ ई०.
१३	काव्यालंकार सूत्रवृत्ति	-- वामन, सम्पा० नारायणनाथ कुलकर्णी, ओरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना , सन् १६२७ ई०.
१४	काव्य-मीमांसा	-- राजशेखर, प्रकाशक, ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा.
१५	काव्यालंकार संग्रह	-- उद्भट.
१६	चन्द्रालोक	-- जयदेव, सम्पा० महादेव गंगाधर बाकरे, गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस, बम्बई, सन् १६३४ ई०.
१७	तैत्तिरीयोपनिषद	-- गीता प्रेस, गोरखपुर.
१८	दशरूपक	-- धनंजय, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १६४१ ई०.
१६	ध्वन्याकार	-- आनन्दवर्धन.
२०	ध्वन्यालोचन	-- आनन्दवर्धन.

२१ ध्वन्यालोक -- आनन्दवर्धन, प्रकाशक--चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थ माला चौखम, वाराणसी, वि०सं० १९९७.

२२ ध्वन्यालोक -- चौखम्बा संस्कृत माला दीधिति, वाराणसी.

२३ ध्वन्यालोक -- गौतम बुक-डिपो (विश्वेश्वर, दिल्ली).

२४ ध्वन्यालोक -- के०एल०मुखोपाध्याय, वाराणसी.

२५ ध्वन्यालोक -- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी.

२६ ध्वन्यालोक -- निर्णय सागर प्रेस, बम्बई.

२७ ध्वन्यालोक -- कुप्पू स्वामी शोध संस्थान, मद्रास.

२८ नाट्य शास्त्र -- भरतमुनि, सम्पा०केदारनाथ साहित्य भूषण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९४३ ई०.

२९ न्याय-दर्शन -- न्याय दर्शनकार महर्षि गौतम.

३० नाट्य दर्पण -- भरतमुनि.

३१ बाल-रामायण -- आचार्य विश्वनाथ.

३२ भाव प्रकाशन -- आचार्य शारदातनय.

३३ रस मंजरी -- भानुदत्त,श्रीहरिकृष्ण निबन्ध भवन, काशी, सं० २००८ वि०.

३४ रसार्णव सुधाकर -- शिंगभूपाल,ट्रावनकोर गवर्नमेन्ट प्रेस, त्रिवेन्द्रम्, अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावली नं० ५,सन् १९१६ ई०.

३५ रस तरंगिणी (भाषा टीका) -- भानुदत्त, टीकाकार पं०जीवनाथ झा, वेंकटेश्वर प्रेस,बम्बई, सं० १९७१ वि०.

३६ रस गंगाधर -- निर्णय सागर प्रेस, संस्करण-६, बम्बई.

३७ ऋग्वेद -- सातवलेकर संस्थान, पारडी.

३८ वक्रोक्ति जीवित -- कुन्तक, प्रकाशक-चौखम्बा संस्कृत ग्रंथ माला वाराणसी.

३९ वाक्य प्रदीप -- महाराज भर्तृहरि,प्रकाशक-म०प्रा०वि०प्र०,पूना. ई० सन् ५५० से ५०० माना जाता है.

४० श्रृंगार प्रकाश -- भोजदेव,सम्पादक -ए०रंगास्वामी सरस्वती, ला प्रिन्टिंग हाउस,माउन्ट रोड, मद्रास, सन् १९२६ ई० मैसूर.

४१ सरस्वती कंठाभरण -- भोजदेव, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३४ ई०.

४२ साहित्य दर्पण -- विश्वनाथ, सम्पा० जीवानन्द, वाचस्पत्य यन्त्रालय, कलकत्ता, सन् १९१६ ई०.

४३ हर्ष-चरित -- बाण भट्ट.

हस्तलिखित ग्रन्थ

१ रस कल्लोल -- कवि करन.

२ बिहारी सतसई की टीका (साहित्य-चन्द्रिका) -- कवि करन.

शोध-रिपोर्ट

१ नागरी प्रचारिणी सभा शोध रिपोर्ट - सन् १९०४.

२ रिपोर्ट आफ द आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, भाग-२१.

३ बिहारी सतसई की टीका, हस्त प्रति -वृन्दावन साहित्य शोध संस्थान, बांदा. -- आचार्य करन कवि.

-----:o:-----

सहायक ग्रन्थ

हिन्दी भाषा के ग्रन्थ

क्रमांक	ग्रन्थ	विशेष विवरण
१	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (प्रथम भाग)	-- डा० दीनदयाल गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् २००४ वि० ।
२	अलंकार शेखर	-- केशव मिश्र ।
३	अलंकार विधान	-- गोस्वामी तुलसीदास ।
४	आनन्द वर्धन	-- डा० रेवा प्रसाद द्विवेदी
५	कविकुल कल्पतरु	-- चिन्तामणि त्रिपाठी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९७५ (पाषाण यंत्रालय)
६	कविप्रिया (मूल)	-- केशवदास, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९२४ ई०.
७	कविप्रिया (सटीक)	-- टीकाकार हरिचरण दास, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, संवत् १९९० ई०,
८	कविप्रिया (सटीक)	-- टीकाकार लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, मातृ-भाषा मन्दिर, दारागंज, प्रयाग, सन् १९५२ ई०.
९	कविप्रिया (सटीक)	-- टीकाकार डा० भगवानदीन, नेशनल प्रेस, लखनऊ कैन्ट, संवत् १९८२ ई०,
१०	कविप्रिया (सटीक)	-- टीकाकार सरदार कवि, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ.
११	कविता क्या है ?	-- आ० रामचन्द्र शुक्ल
१२	काव्य-विवेक	-- चिन्तामणि त्रिपाठी
१३	काव्य-निर्णय	-- भिखारीदास, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९३७ ई०. टीकाकार पं० महावीर प्रसाद मालवीय "वी

१४ काव्य शास्त्र युग और प्रवृत्तियां -- कैलाश नारायण अवस्थी.

१५ काव्य-शास्त्र -- डा०भगीरथ मिश्र.

१६ काव्य-प्रदीप -- श्री गोविन्द प्रणीत.

१७ चिन्तामणि -- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,
निर्णय सागर प्रेस, बम्बई.

१८ जगद्विनोद (सं० १९६१ वि०) -- ले०पद्माकर, सम्पा०विश्वनाथप्रसाद मिश्र
काशी, सं० १९९२.

१९ पद्माभरण (पद्माकर पंचामृत) -- सम्पा०विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,
श्रीराम पुस्तक भवन, काशी, सं० १९९२.

२० ब्रज भाषा साहित्य का नायिका-भेद - श्री प्रभुदयाल मित्तल.

२१ ब्रज साहित्य का इतिहास -- डा०सत्येन्द्र.

२२ बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास-भूगोल -- बाल मुकुन्द शास्त्री, पन्ना गजेटियर.

२३ बुन्देलखण्ड के कवि -- कृष्णदास, विरक्त प्रेस,
श्री अयोध्या जी.

२४ भवानी विलास -- देव, सम्पा० रामकृष्ण वर्मा,
भारत जीवन प्रेस, काशी, सन् १९९३ ई०.

२५ भाव-विलास -- देव,सम्पा०लक्ष्मी निधि चतुर्वेदी,
तरुण भारत ग्रन्थावली कार्यालय,
दारागंज, प्रयाग, सं० १९५१.वि०.

२६ भारत का इतिहास -- ईश्वरी प्रसाद, इण्डियन प्रेस लिमिटेड,
प्रयाग, सन् १९४९ ई०.

२७ मतिराम ग्रन्थावली (भूमिका) -- कृष्ण बिहारी मिश्र, गंगा ग्रंथागार,
लखनऊ, सं० १९९६ वि०.

२८ मुगल कालीन भारत -- डा०आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव.

२९ मध्यकालीन भारतकी सामाजिक अवस्था- अल्लामा अब्दुल्ला यूसुफअली,
हिन्दुस्तानी एकेडेमी,इलाहाबाद,
सन् १९२९ ई०.

३० रस-रहस्य -- कुलपति मिश्र, सम्पा०पं०बलदेव मिश्र,
इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, सं० १९९४.

३१ रस-राज -- मतिराम.

३२ रस-विलास -- देव,सम्पा०रामकृष्ण वर्मा,
भारत जीवन प्रेस,काशी ,सन् १९०० ई०

३३ रसिकप्रिया (सटीक) -- केशवदास, टीकाकार सरदार कवि नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९११ ई०.

३४ रसिकप्रिया (सटीक) -- केशवदास,टीकाकार,सरदार कवि वेंकटेश्वर, प्रेस, बम्बई, सं० १९७१ ई०.

३५ रसिकप्रिया (सटीक) -- केशवदास,टीकाकार,लक्ष्मी निधि चतुर्वेदी, मातृ भाषा मन्दिर,प्रयाग,सन् १९५४ ई०.

३६ रस-सारांश -- भिखारीदास, र०सं० १७९१ वि०.

३७ रहीम रत्नावली -- सं०पं० मयाशंकर याज्ञिक.

३८ रीतिकाव्य की भूमिका -- डा०नगेन्द्र.

३९ रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता (पूर्वार्द्ध) -- डा०नगेन्द्र.

४० ललित ललाम -- मतिराम.

४१ शब्द रसायन -- देव,सम्पा० डा०जानकीनाथ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग, सं०२००४ वि.

४२ शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (प्रथम भाग) -- डा०गोविन्द त्रिगुणायत.

४३ शृंगार निर्णय -- भिखारीदास,सम्पा०जवाहरलाल चतुर्वेदी, गोविन्ददास माहेश्वरी सन्मार्ग प्रेस, वाराणसी-१, सन् १९५६.

४४ हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास - डा०ग्राहम जार्ज ग्रियर्सन.

४५ हिन्दी साहित्यका इतिहास तथा कवि-कीर्तन. -- मिश्रबन्धु विनोद.

४६ हिन्दी साहित्य का इतिहास -- डा०नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.

४७ हिन्दी साहित्य का इतिहास (भाग-१) -- शिवसिंह सरोज, मिश्रबन्धु विनोद.

४८ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास -- डा०भगीरथ मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००५ वि०.

४९ हिन्दी साहित्य का इतिहास -- रामचन्द्र शुक्ल,नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० १९९९ वि०.

-----:o:-----

अंग्रेजी भाषा के ग्रंथ

क्रमांक	ग्रंथ	ग्रंथकार, प्रकाशक और संस्करण
1.	Introduction Vol. I.	H. Van Laun, London 1871 A.D.
2.	History of Medieval India.	Ishwari Prasad, Indian Press-Limited, Allahabad. 1948 A.D.
3.	Akber, The Great Mogul.	Vincent A. Swith Clarendon Press, Oxford, 1919 A.D.
4.	A short History of Muslim Rule in India.	Ishwari Prasad, Indian Press Limited, Allahabad. 1939 A.D.
5.	History of Jahangir, Vol. I.	Beni Prasad, Allahabad University studies in History 1922. A.D.
6.	Medieval Mysticism of India.	Kashiti Mohan Sen, Luzac & Co., 46, Great Russell Street, London. 1935 A.D.